निराला और

राग विराग

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

निराला और 'राग-विराग'

[विस्तृत व्याख्या और आलोचना]

लेखक

साहित्यवारिधि

डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.,

वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग

राजा बलवन्तसिंह कॉलेज, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

विषय-सूची

आलोचना-भाग

व्याख्या-भाग

प्रथम चरण

द्वितीय चरण

निराला

और

'राग-विराग'

आलोचनात्मक अध्ययन

(१) जीवन और व्यक्तित्व

प्रश्न १—महाकवि निराला के जीवन-चरित का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर : पूरा नाम—महाकवि 'निराला' का पूरा नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' था।

जन्म—निराला का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल नामक रियासत में सन् १८९६ में बसंत पंचमी के दिन हुआ था।

पिता-माता—निराला जी के पिता का नाम पं० रामसहाय त्रिपाठी था। [illegible] उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में गढ़ाकोला नामक गाँव के निवासी थे। उनका परिवार भरापूरा था। वह अपना गाँव छोड़कर महिषादल नामक रियासत (बंगाल) में बस गये थे और वहीं राजा के यहाँ नौकरी कर ली थी। वहाँ उन्नति करते-करते वह १०० सिपाहियों के ऊपर 'जमादार' हो गये थे। प्रथम पत्नी के देहावसान के बाद श्री रामसहाय त्रिपाठी ने दूसरा विवाह किया। इन्हीं की कोख से निराला जी का जन्म हुआ।

बाल्यकाल—निराला जी के जन्म के तीन वर्ष पश्चात् ही इनकी माता की मृत्यु हो गई। पत्नी की मृत्यु के कारण श्री रामसहाय जी बहुत उद्विग्न रहने लगे और उनके स्वभाव में असामान्य कठोरता आ गई।

माता की मृत्यु के कारण निराला जी मातृ-स्नेह से तो वंचित हो ही गए, पिता के कठोर स्वभाव के कारण यह प्रायः पितृ-स्नेह से भी वंचित ही रहे। इसका कारण पिता के स्वभाव का रूखापन तो था ही, साथ ही स्वयं निराला का उद्धत स्वभाव भी था। इन्हें बचपन से ही बन्धनों से चिढ़ थी और स्व-च्छन्दता से प्रेम था। परिणाम यह हुआ कि इन्हें अपने पिता से प्रायः पिटना पड़ता था; और वह भी बुरी तरह से। पिता के द्वारा की जाने वाली पिटाई के

बारे में निराला जी ने स्वयं भी लिखा है। डा० रामविलास शर्मा निराला जी के बहुत निकट रहे हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में निराला जी के कथन को उद्धृत किया है; यथा—"मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाए हुए इकलौते पुत्र को मार रहे थे। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था और प्रहार की हद मालूम हो गई थी।"

शिक्षा—पाँच वर्ष की अवस्था में सूर्यकान्त को एक बंगाली स्कूल में दाखिल करा दिया गया। वहाँ तीन-चार साल पढ़ने के बाद वह एक अँगरेजी हाई-स्कूल में आ गए।

एण्ट्रेन्स तक आते-आते सूर्यकान्त कविता करने लगे थे। उनका स्वभाव अध्ययनशील था, परन्तु यह पाठयक्रम की पुस्तकें नहीं पढ़ते थे। काव्य के प्रति उनका स्वाभाविक आकर्षण था। एन्ट्रेन्स तक पहुँचते-पहुँचते सूर्यकान्त ने राजकीय पुस्तकालय से अँगरेजी, बँगला एवं संस्कृत के अनेक काव्यग्रन्थ पढ़ डाले। गीता और रामायण का भी अध्ययन किया। दर्शन-सम्बन्धी भी अनेक पुस्तकें पढ़ डालीं।

सूर्यकान्त गणित में बहुत कमजोर थे। आगे पढ़ना इनके लिए दूभर हो गया। साथ ही इन्होंने कई मित्रों से यह सुन लिया था कि कवीन्द्र रवीन्द्र नवें दर्जे से आगे नहीं पढ़ सके थे। इन्होंने रवीन्द्र को अपना आदर्श मान लिया और बिना एन्ट्रेन्स पास किए ही इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। हिन्दी के अनेक साहित्य-कारों की परिपाटीबद्ध स्कूली शिक्षा बहुत ही सीमित रही है। इस दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद, सियारामशरण गुप्त, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल तथा डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय हैं।

निरालाजी का शरीर लम्बा-चौड़ा, स्वस्थ एव बलिष्ठ था। वह खेल-कूद में विशेष रुचि लेते थे और खूब अच्छा खेलते थे। वह क्रिकेट, फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी थे, घोड़े की सवारी करते थे, तैरते थे, बन्दूक चलाते थे। इनके अलावा वह हारमोनियम बजाते थे और उस पर संगीत की आलापें लेते थे। अपने लम्बे-चौड़े आकर्षक व्यक्तित्व एवं उपयुक्त गुणों के कारण सूर्यकान्त बचपन से ही साधारण जनों से लेकर राजकुमारों तक में समान रूप से लोक-प्रिय हो गये थे।

महिषादल के राजा के छोटे भाई इन्हें बहुत प्यार करते थे। निस्सन्तान

होने के कारण वह इनको गोद लेना चाहते थे। परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु हो गई।

हिन्दी-प्रेम—सूर्यकान्त जिस स्कूल में पढ़ते थे, वहाँ अँगरेजी, बंगला तथा संस्कृत की तो नियमित शिक्षा दी जाती थी, परन्तु हिन्दी के अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं थी। हिन्दी के प्रति इनमें सहज-स्वाभाविक आकर्षण था। इसकी पूर्ति इन्होंने अपने पिताजी के साथियों के साथ की। यह सिपाहियों के साथ बैठकर श्रीरामचरितमानस और ब्रजविलास पढ़ा करते थे और अपने सुरीले कण्ठ से गाकर सबको मुग्ध किया करते थे। इस तरह इनका हिन्दी का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता गया। विदुषी पत्नी के सम्पर्क के पश्चात् इनका हिन्दी-ज्ञान प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि निराला जी के मन में बंग देश और बंगला भाषा के प्रति संस्कारवश विशेष प्रेम था। इस विषय में उन्होंने स्वयं अपनी कृतियों में उल्लेख किया है—

(क) "बंगाल मेरी जन्मभूमि है; इसलिए बहुत प्रेम है।" (प्रबन्ध पद्म)

(ख) "बंगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है, जैसी हिन्दी।" (प्रबन्ध प्रतिमा)

कविता का आरम्भ—निराला जी ने अपने स्कूली जीवन में ही कविता करना आरम्भ कर दिया था। नवीं कक्षा में आते-आते वह अवधी और ब्रज-भाषा में पद लिखने लगे थे। चौदह वर्ष की अवस्था तक निराला जी संस्कृत में भी पद लिखने लगे थे। कविता के प्रति निराला का यह सम्मोहन क्रमशः बढ़ता ही गया और वह कालान्तर में महाकवि निराला, महाप्राण निराला आदि के रूप में प्रसिद्ध हुए।

उनकी प्रारम्भिक काव्य-शैली तथा प्रतिभा-चातुर्य का उदाहरण द्रष्टव्य है—

करि अंग भंग ब्रजभाषा के समस्त छन्द।
ब्रज अवधी में अब कवित्त हमें लिखनौ है॥

निरालाजी ने इस विषय में स्वयं अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—

"मैं कवि हो चला था। फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा देखता था। कभी-कभी लड़कों को समझाता भी था कि इतनी बड़ी किताब सामने पड़ी है, लड़के अवाक् दृष्टि से मुझे देखते रहते थे, मेरी बात का

लोहा मानते थे। किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जाने की चिन्ता। फलतः कल्पना में पृथ्वी अन्तरिक्ष पार करने लगी। कल्पना की वैसी उड़ान आज तक नहीं उड़ी।" —सुकुल की बीवी, निराला

इस कल्पनात्मक उड़ान का ही यह परिणाम हुआ कि वह काव्य के प्रति अधिकाधिक आकर्षित होते गये और स्कूल की पढ़ाई के साथ उनका नाता सदा-सर्वदा के लिए टूट गया।

विवाह—युगीन एव वंशीय परम्परा के अनुसार केवल चौदह वर्ष की ही अवस्था में निराला (सूर्यकान्त त्रिपाठी) का विवाह हुआ था। इनका विवाह चाँदपुर जिला फतेहपुर की एक सुन्दरी कन्या मनोहरा देवी के साथ हुआ। श्रीमती मनोहरा देवी अत्यन्त सुन्दर और गुणवती महिला थीं। वह स्वभाव से सौम्य, रुचियों से सुसंस्कृत, प्रवृत्ति से धर्मपरायण और साहित्यानुरागिणी थीं। हिन्दी कविता को 'निराला' उन्हीं की देन माननी चाहिए। पत्नी के सम्पर्क ने हिन्दी काव्य के प्रति उनकी सोई हुई आसक्ति को उभार दिया। 'तुलसीदास' नामक कथा-काव्य में निराला जी ने प्रकारान्तर से इस तथ्य को प्रस्तुत करते हुए लिखा है—"वामा वह पथ में हुई वाम सरितोपम।" निराला जी का कहना था कि उन्होंने अपने जीवन में उनसे अधिक सुन्दर अन्य कोई स्त्री नहीं देखी थी। अपने दाम्पत्य जीवन में निराला को जो सुख प्राप्त हुआ, वह स्वर्गिक था। किन्तु खान-पान के नाम पर पति-पत्नी में कुछ अनबन हो गई। निराला मांसाहारी थे। मनोहरा देवी को यह रुचिकर नहीं था। उन्होंने सत्याग्रह कर दिया और वह अपने मातृगृह चली गईं। वहीं इन्फ्लुऐन्जा के रोग में उनकी मृत्यु हो गई। उस समय निराला जी महिषादल में थे। इस अनभ्र वज्रपात ने निराला को झकझोर दिया। वह स्वदेश वापस लौट आए। उनकी पत्नी अपने पीछे पुत्र रामकृष्ण और पुत्री सरोज को छोड़ गई थीं।

पत्नी की मृत्यु से निराला विक्षिप्त-से हो गये। वह घण्टों श्मशान में बैठे सोचते थे। कहीं चूड़ी का टुकड़ा, हड्डी या राख मिल जाती, तो उसे घण्टों तक हृदय से लगाए घूमते रहते थे। 'जुही की कली' की प्रेरणा यहीं प्राप्त हुई थी। "माता का देहान्त निराला की जीवन-भित्ति की पहली दरार थी और वह दरार स्त्री के देहान्त से और भी स्फीत हो गई।"[१]

---

१. **निराला काव्य पर बँगला प्रभाव, डा० इन्द्रनाथ चौधरी।**

नौकरी-चाकरी—पत्नी की मृत्यु के कुछ समय बाद ही निराला जी के पिता जी का भी स्वर्गवास हो गया। पिता जी के बाद चाचा का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार इनके ऊपर गृहस्थी के भार को ढोने का उत्तरदायित्व आ गया। इस समय इनकी अवस्था इक्कीस वर्ष की थी और इनके कंधों पर दो अपने बच्चे तथा चार भतीजों के पालन-पोषण का भार आ पड़ा। परन्तु इन विषम परिस्थितियों में निराला जी घबड़ाए नहीं और इन्होंने दृढ़तापूर्वक इनका सामना करने का निश्चय किया। नौकरी की खोज में वह पुनः महिषादल जाने को विवश हुए। वहाँ इन्हें राजा के यहाँ नौकरी मिल गई। इन दिनों इनकी काव्य-साधना भी चल रही थी और कवि रूप में निराला को पर्याप्त प्रसिद्धि भी प्राप्त हो चुकी थी। बँगला कविताओं के कारण इनकी प्रसिद्धि बंग प्रदेश में फैल गई थी और सन् १९१६ में 'जुही की कली' के प्रकाशन के साथ हिन्दी-संसार भी निराला की ओर आकर्षित हो चुका था। उधर पारिवारिक संकटों के कारण निराला के जीवन में एक प्रकार की अन्यमनस्कता-सी भर गई थी। फलतः काम में कुछ शिथिलता होने लगी। अन्ततोगत्वा इन्हें नौकरी से त्यागपत्र देना पड़ा और सन् १९२० में यह वापस अपने घर लौट आए।

जीविका की समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रही। इन्होंने कलम की मजदूरी का रास्ता पकड़ा। जो भी लिखने को मिलता, वह लिखते और अपनी जीविका कमाते।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से इनका परिचय हुआ और उन्हीं के प्रयत्न से इन्हें रामकृष्ण मिशन के दार्शनिक पत्र 'समन्वय' के सम्पादन का कार्य मिल गया। 'समन्वय' में इन्होंने लगभग एक वर्ष तक नौकरी की। 'समन्वय' के सम्पादन का कार्य इन्होंने बहुत ही सफलता एवं तन्मयता के साथ किया। इस पत्र में इन्होंने दार्शनिक विषयों पर अनेक सुन्दर लेख लिखे, जिनके कारण इन्हें काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इन्हीं दिनों मुक्त छंद में लिखित इनकी लम्बी कविता 'पंचवटी-प्रसंग' प्रकाशित हुई। सन् १९२२ में इनका प्रथम कविता-संग्रह 'अनामिका' प्रकाशित हुआ। इन्हीं दिनों कलकत्ता के साहित्य-प्रेमी सेठ महादेव प्रसाद ने साहित्यिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागरण के विचार से 'मतवाला' नामक साहित्यिक पत्र निकालने की योजना बनाई। 'निराला' को इसका सम्पादक नियुक्त किया गया। बस यहीं सूर्यकांत त्रिपाठी ने 'मतवाला' की तुक पर अपना उपनाम 'निराला' रख लिया। 'मतवाला' के माध्यम से

निराला ने अपने विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त किया। 'मतवाला' द्वारा निराला की साहित्यिक प्रतिभा को प्रस्फुटित होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। छायावाद का जन्म हो चुका था। 'निराला' छायावाद के समर्थक थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे महारथी छायावाद का विरोध कर रहे थे। निराला ने 'मतवाला' के माध्यम से इन चुनौतियों को स्वीकार किया तथा विरोधियों को तर्कपूर्ण शैली एवं सशक्त भाषा में कठोर उत्तर दिए। एक प्रकार से यह समय निराला के जीवन का सुखद समय था। इन दिनों की इनकी दिनचर्या का वर्णन करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—"शाम को भाँग छानना, दिन-भर सुरती फाँकना, थियेटर देखना, साहित्यिकों से सरस वार्त्तालाप करना, मुक्त छन्द में कविता लिखना, छद्म नामों से आचार्यों की भाषा में व्याकरण और मुहावरों की भूलें दिखाना और समस्त हिन्दी संसार को चुनौती देना—उनके जीवन का कार्य-क्रम था। उस समय ऐसा लगता था कि मुंशी नवजादिक लाल, बाबू शिवपूजन सहाय और प० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ है।

'मतवाला' और 'निराला' के नामों ने हिन्दी-साहित्य-ससार में धूम मचा दी। 'मतवाला' के प्रत्येक अंक के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली 'निराला' की यह कविता दृष्टव्य है—

अमिय गरल शशि सीकर रविकर राग-विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।।

'प्रसाद' जी को इन पक्तियों ने बहुत प्रभावित किया था।

'मतवाला' में निराला जी ने एक वर्ष तक कार्य किया। त्यागपत्र देकर वह गाँव चले आये। आर्थिक संकट से विवश होकर वह लखनऊ चले गये और अपनी कलम के सहारे गुजर करने लगे। पैसे के लिए, इन्होंने सब कुछ लिखा।

सन् १६२८ में इनका सम्बन्ध 'सुधा' नामक मासिक पत्रिका से हो गया, जिसमें इनकी रचनाओं का स्वागत किया गया और वे नियमित रूप से छपने लगीं। सन् १६२६ में वे दुलारेलाल भार्गव द्वारा संचालित गंगा पुस्तक-माला से सम्बद्ध हो गये, और उसमें काम करने लगे। इसी के साथ इन्हें 'सुधा' का सम्पादन-भार भी मिल गया। इसी समय इनके दो उपन्यास—'अप्सरा' और 'अलका' प्रकाशित हुए तथा एक कहानी-संग्रह 'लिली' और 'परिमल' नामक

काव्य संग्रह का प्रकाशन हुआ। लखनऊ के इस प्रवास-काल में निराला जी का सम्पर्क विश्वविद्यालय के अनेक नवयुवक छात्रों के साथ हुआ। इनमें कई इनके भक्त एवं प्रशंसक थे तथा इनसे साहित्य-सृजन की प्रेरणा प्राप्त करते थे। इनमें डा० रामविलास शर्मा, डा० रामरतन भटनागर तथा 'अंचल' प्रमुख हैं।

सन् १९३२ में निराला 'रंगीला' नामक पत्र के सम्पादक होकर कलकत्ता गए। वहाँ उनका मन नहीं लगा और कुछ सप्ताह बाद ही वह पुनः लखनऊ लौटकर आ गए। इसके बाद दस वर्ष तक निराला लखनऊ में ही रहे। लखनऊ में ही उनका साहित्य-क्षेत्र बन गया यहाँ रह कर इन्होंने विपुल साहित्य की रचना की—उपन्यास, कहानी संग्रह, संस्मरणात्मक रेखाचित्र, प्रबन्ध, निबन्ध, खण्ड काव्य, कविता-संग्रह सभी कुछ लिखा।

दुलारे लाल भार्गव से खटपट होने के कारण निराला इलाहाबाद चले आए। यहाँ लीडर प्रेस से इनकी कई काव्य-रचनाएँ प्रकाशित हुईं। इन पुस्तकों में इनका मानसिक विक्षोभ प्रतिबिम्बित है।

आर्थिक संकट निराला को बराबर घेरे रहा। वह एक बार अपने एक किसान-मित्र के पास करबी चले गये। वहाँ से बीमार होकर लौटे। इलाज के लिए इनके पास पर्याप्त धन नहीं था। जीवन-व्यापी संघर्ष, आर्थिक विषमता, बीमारी, प्रतिकूल वातावरण आदि के कारण इनका मानसिक संतुलन कुछ गड़-बड़ हो गया। इनके अन्तिम दिन बहुत ही मुसीबत में व्यतीत हुए। निराला जी इलाहाबाद में दारागंज में रहते थे और वहाँ पं० श्री नारायण चतुर्वेदी इनकी पर्याप्त सहायता करते रहते थे। इन दिनों यह जिस विपन्नावस्था को प्राप्त हो गये थे, उसका चित्रण करते हुए श्री गंगाप्रसाद पांडेय ने लिखा है—"नंगे पैर और नंगे सिर, कन्धे पर फटा हुआ कुरता, टाँगों में गंदी लुंगी, जो कभी-कभी केवल घुटनों तक ही पहुँचती थी, पहने हुए निराला को प्रयाग की सड़कों पर घूमते हुए देखकर मन बैठ जाता था। कविताएँ लिये हुए वे प्रायः लीडर प्रेस और इण्डियन प्रेस तक दारागंज से पैदल ही आया-जाया करते थे। उनकी उस समय की आर्थिक विपन्नता इतनी भयानक थी कि अपरिचित व्यक्ति को सहज ही में विश्वास नहीं हो सकता।"

भीषण वज्रपात—सन् १९३० में निराला ने अपनी प्रिय पुत्री सरोज का विवाह एक होनहार युवक के साथ कर दिया था। विवाह करते समय उन्होंने दहेज आदि के समस्त सामाजिक बन्धन तोड़ दिए थे। सरोज को सुखी देखकर

निराला जी सुखी रहते थे। सन् १९३५ में एकाएक इनकी पुत्री सरोज का देहान्त हो गया। उस समय वह अपनी ननसाल में थी। इस अनभ्र वज्रपात ने भावुक कवि को झकझोर दिया और वह विक्षिप्त-से हो गए। इस अवसर पर उन्होंने एक शोक गीत—'सरोज-स्मृति' लिखा जो हिन्दी साहित्य की एक अक्षुण्ण निधि मानी जाती है।

अन्तिम समय और अन्त—महादेवी वर्मा ने प्रयाग में साहित्यकार संसद की स्थापना की थी। उन्होंने निराला जी को बुलाकर वहाँ रखा। परन्तु कुछ दिन रहने के उपरान्त वह वहाँ से भी चले आए और दारागंज में रहने लगे। इनका शरीर बीमारियों से जर्जर हो गया था। इनका रहने का कमरा साहित्यकारों के लिए तीर्थ-स्थान बन गया। शुभचिन्तकों एवं मित्रों का ताँता लगा रहता था। केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार ने इनके लिए मासिक वृत्ति बाँध दी, किन्तु वह उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं थी। एक विद्वान् के शब्दों में, "विक्षिप्तता, विख्याति और स्वाभिमान तीनों के बीच मानो होड़ चल रही थी।"

निराला का सुमेरु-सदृश शरीर क्रमशः क्षीण होता गया और १५ अगस्त सन् १९६१ को निराला का 'स्वर्गवास' हो गया। इनकी मृत्यु पर समस्त हिन्दी संसार शोकाभिभूत हो गया।

'सरोज-स्मृति' में लिखित ये पंक्तियाँ वस्तुतः निराला जी के जीवन का निष्कर्ष रही थीं—

दुःख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं।
कन्ये! गत कर्मों का अर्पण,
कर, करता मैं तेरा, तर्पण।

प्रश्न २—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के व्यक्तित्व पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्वस्थ, सुगठित एवं विशाल व्यक्तित्व—डा० बच्चन सिंह ने निरालाजी को 'कामायनी' की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा है और एक दम ठीक देखा है—

अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ
ऊर्ज्वसित था वीर्य अपार।

स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार।

निराला जी का शारीरिक गठन अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं आकर्षक था। उनका कद छह फुट से कुछ अधिक था, भरा हुआ शरीर था, रंग गेहुँआ था, आँखों में गांभीर्य था। लम्बे-लम्बे बाल इनको एक साधक ऋषि की भूमिका में प्रस्तुत करते थे। आँखों में एक दार्शनिक की पिपासा झाँकती हुई दिखाई देती थी। यही कारण है कि श्रीमती सरोजनी नायडू ने इन्हें देखा तो उन्हें ग्रीक दार्शनिक समझ बैठीं। इनके शरीर के सुव्यवस्थित विन्यास को देखकर एक ग्रीक महिला ने इन्हें ग्रीक देवता 'अपोलो' का अवतार बताया था। इनके नेत्रों में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण था। श्रीमती रामेश्वरी शर्मा का कथन द्रष्टव्य है—"उनके नेत्र विशाल हैं, स्वप्निल हैं और लाल रेखाओं से पूर्ण हैं, आज साठ वर्ष की आयु में भी उस कमल पुष्प से सादृश्य रखते हैं, जिसकी बावड़ी का जल सूख गया है, पर उनमें अभी तक स्नेह सौहार्द है जो किसी व्यक्ति-विशेष पर केन्द्रित न होकर समस्त मानव-समाज के लिए फैल गया है। आज भी उनके नेत्र क्षितिज के उस पार किसी महान और दिव्यलोक के स्वप्न से भरे उनींदे खुमारीयुक्त प्रतीत होते हैं।....उन्हें कोई कमजोर आँखों वाला सहज ही रहस्य-वादी कवि पुकार उठेगा। उनके नेत्रों से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव दर्शक पर एक साथ पड़ता है।"

निराला को खेल-कूद, कुश्ती का शौक था। हमारे विचार से उनके आकर्षक शारीरिक गठन का यही रहस्य था। डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—"बचपन मे ही खेल-कूद, कुश्ती लड़ना और पंजा लड़ाने का उन्हें शौक रहा। हिन्दी छन्दों की अपेक्षा उन्हें कुश्ती के दांव कहीं ज्यादा याद हैं। धोबीपाट, कलाजंग, सखी बहल्ली, घिस्सा, कुली बगैरह-बगैरह रियाज के साथ बरजवान हैं। थ्यौरी और प्रैक्टिस दोनों में फर्स्ट क्लास पा चुके हैं। × × उनकी कुश्ती की चर्चा करना खतरे से खाली भी नहीं है। थ्यौरी के साथ जब वह प्रैक्टिस समझाने लगते हैं, तब विद्यार्थी सावधान न हुआ तो पक्के फर्श पर उसे ऐसी शिक्षा मिल सकती है कि वह उसे जिंदगी भर याद रखे।"

खाने-खिलाने के शौकीन—निराला जी को अच्छा खाने और खिलाने का शौक था। जब भी उन्हें कहीं से धन की प्राप्ति होती थी, तभी वह अपने मित्रों को निमन्त्रण देते थे और स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलाते थे।

मांसरंधन में वह सिद्धहस्त थे। कभी-कभी मदिरा का भी सेवन करते थे। पान, तम्बाकू, सुरती हर समय खाते रहते थे।

इत्र, सुगन्धित तैल आदिक प्रसाधनों के प्रति भी उनका झुकाव था।

कहना न होगा कि उनके मित्र उनकी उक्त दुर्बलता का पूरा-पूरा फायदा उठाते थे। वे इस ताक में रहते थे कि कब निराला जी की हथेली गरम हो और कब वे चौके-चूल्हे के सामने जा धमकें। हमारी राय में उनके ये खाऊ दोस्त उनकी गरीबी के बहुत बड़े कारण रहे थे।

पैसा न होने पर प्रायः केवल चने चबा कर ही रह जाना पड़ता था। ठीक ही है—

कभी घी घना। कभी मुट्ठी भर चना।
और कभी वह भी मना।

कपड़ों के शौकीन—निराला जी अपनी वेश-भूषा के प्रति बहुत सजग रहते थे। पैसे पास में हों और किसी कवि-सम्मेलन में जाना हो। बस निराला जी को देखने वाले देखते ही रह जायँ। बढ़िया कुर्त्ता, महीन धोती, रेशमी चादर, बाल सुवासित और हाथ में घड़ी होती थी और यदि लौटते समय कोई अभाव-ग्रस्त मिल जाता तो फिर उनके पास कुछ भी नहीं रह जाता था। अभिजात्य और फक्कड़पन का यह संगम सचमुच स्पृहणीय था। एक उर्दू के शायर ने इन्हीं जैसों को लक्ष्य करके लिखा था।

अमीरी की तो ऐसी की, कि अपना घर लुटा बैठे।
फकीरी की तो ऐसी की, कि तेरे दर पै आ बैठे॥

संगीतज्ञ एवं संगीत-प्रेम—निराला जी को प्रकृति ने बड़ा ही मधुर कंठ दिया था। वह शुरू से ही बहुत अच्छा गाते थे। महिषादल में अपने पिता के सिपाहियों के बीच बैठकर वह श्रीरामचरितमानस का पाठ सस्वर करते थे, तो सब लोग झूम उठते थे।

निराला जी संगीत के पारखी और स्वयं अच्छे गायक थे। संगीत के सफल समावेश के द्वारा ही वह मुक्त छन्द को इतना लोकप्रिय बना सके थे।

कहा जाता है कि निराला जी की कविता उनके मुख से सुनने पर जितना प्रभावित करती थी, उतनी पढ़ी जाने पर नहीं। वह ताल देते हुए झूम उठते थे। उनकी मुक्त छन्द वाली दुरूह कविताएँ भी उनके मुख से गाई जाने पर सहज ही समझ में आ जाती थीं। निराला जी अपनी स्वर-लहरी से जनता में

आह्लाद, शोक, रोष, गर्जन, विलास आदि मनोभावों का सहज ही प्रसार कर दिया करते थे। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का यह कथन द्रष्टव्य है. "मुक्त छन्द का इतना विरोध होने पर न जाने कितनी सभाओं में उसे सुनाकर उन्होंने विरोध शान्त किया है। मुक्त छन्द की रचनाओं को नाटकीयता, स्वर का उत्थान-पतन और उसके सहज ही प्रवाह द्वारा भाव-प्रदर्शन करना उनके पाठ की विशेषताएँ हैं। × × जब वह मंच पर कम्पित जंगम, नीड़ विहंगम, ऐ न व्यथा पाने वाले' कहते हुए बादल को सम्बोधित करते हैं तो उनका स्वर ही क्रान्ति का भाव-चित्र बन जाता है।"

उदार हृदय – निराला जी का हृदय बहुत ही उदार था। वह भावावेश में आकर सर्वस्व तक दान कर दिया करते। जाड़े से ठिठुरते हुए किसी निर्धन व्यक्ति को अपना कोट, कम्बल, रजाई आदि दे देना और स्वयं ठिठुर-ठिठुर कर जाड़ा काटना निराला जी के लिए एक सामान्य-सी बात थी। इनकी दानशीलता से सम्बन्धित अनेक प्रकार की घटनाओं की चर्चा की जाती है।

सन् १९४५ में दिल्ली में ब्रज साहित्य-मण्डल की ओर से एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उसमें श्री बेधड़क की एक कविता सुनकर निराला जी इतने प्रसन्न हो गए थे कि अपनी जेब के सब रुपए निकाल कर उनको पुरस्कार स्वरूप दे दिए थे।

आतिथ्य करने वाले—निराला जी अपने पास आने वाले व्यक्तियों का खूब सत्कार करते थे। आतिथ्य को वह अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। वह अपने हाथ से बनाकर खाना खिलाते थे और इसमें आनन्द एवं संतोष का अनुभव करते थे! अतिथि के लिए यदि कोई चीज बाजार से लाने की आवश्यकता होती थी, तो दौड़कर स्वयं चले जाया करते थे; यहाँ तक कि अपने अतिथियों के जूठे बर्तन तक माँजने में उनको आनन्द का अनुभव होता था।

स्वाभिमानी—निराला जी में स्वाभिमान की मात्रा अत्यधिक थी, जो कभी-कभी मिथ्याभिमान एवं हीनत्व भाव-प्रदर्शन की सीमा तक पहुँच जाया करती थी।

निराला जी जन्म-भर यह समझते रहे कि वह जितने बड़े कलाकार थे, उनके अनुरूप समाज ने उनको आदर-सत्कार और सम्मान प्रदान नहीं किया। अपने आक्रोश को वह स्वाभिमान के नाम पर अभिव्यक्त करते रहे। सम्भवतः स्वाभिमान की अतिशयता के कारण ही इन्हें अमानवीय जीवन भोगने के लिए विवश होना पड़ा था। इनके स्वाभिमान से सम्बन्धित अनेक कथाएँ कहीं जाती हैं। अपने

स्वाभिमान की रक्षा के फेर में यह बड़े-से-बड़े व्यक्ति पर प्रहार कर बैठते थे और फिर भी आशा करते थे कि वे लोग इनके प्रति उदार बनें और इनकी सहायता करें। यही विरोधाभास इनके जीवन की विडम्बना बन कर रह गया।

विद्रोही एवं नवीनता के खोजी— निराला जी को रूढ़ियों से चिढ़-सी थी। उन्होंने समाज के समस्त बन्धनों को तोड़कर अपने लड़के, लड़की की शादी की थी। छद के बन्धन को तोड़कर उन्होंने मुक्त छंद की रचना की थी। वह सदैव नवीन की खोज करते रहते थे। इसी कारण वह किसी एक जगह जम कर नौकरी नहीं कर सके। उनके नवीन प्रयोगों के मार्ग में जो भी बाधक बना, उसकी इन्होंने खबर ली। आचार्य द्विवेदी, आचार्य शुक्ल, प्रसाद, पंत शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार रहा हो जो निराला के वाग्बाणों से बच सका हो। जरा-सी बात पर कई लोगों से निराला की झड़पें होते हुए तो स्वयं इन पंक्तियों के लेखक देखी हैं। प्रकृति का नियम है 'जो जस करइ सो तस फल चाखा'। निराला जी ने बहुत कम लोगों को कुछ समझा। इसी कारण बहुत कम लोगों ने इनको कुछ समझा। फलतः इनका समस्त जीवन कुण्ठा, असन्तोष, आत्म-प्रताड़ना एवं घुटन की सीमाओं में बंधकर रह गया था।

निराला जी को प्रकाशकों का बड़ा कटु अनुभव रहा था। इस कारण वह पूँजीपतियों के प्रबल विरोधी हो गए थे। उनका यह विरोध मार्क्सवादी साँचे का विरोध था। 'कुकुर मुत्ता' में उन्होंने पूँजीपतियों के लिए स्थूल एवं 'अपमान-जनक' शब्दों तक का प्रयोग किया था। परन्तु हमें फिर भी यह शिकायत है कि पूँजीपतियों ने इस महाकवि को भूखा ही रखा।

निराला विचार और आचरण—दोनों से क्रान्तिदर्शी थे। उन्हें सभी प्रकार की रूढ़ियों—साहित्यिक, धार्मिक या सामाजिक को तोड़ने में बड़ा निश्छल आनन्द आता था। महादेवी वर्मा ने लिखा है—"दूसरों की बद्धमूल धारणाओं पर आघात कर उनकी खिजलाहट पर वे वैसे ही प्रसन्न होते हैं, जैसे होली के दिन कोई नटखट लड़का, जिसने किसी की तीन पैर की कुर्सी के साथ किसी की सर्वांगपूर्ण चारपाई, किसी की टूटी तिपाई के साथ किसी की नई चौकी, होलिका में स्वाहा कर डाली हो।"

हिन्दी के उत्कट एवं निर्भीक प्रेमी—निराला जी स्वभाव से बड़े ही भावुक और निर्भीक थे। वह बंगाल में जन्मे थे और बंगाल में ही पले थे। अतएव उनके मन में बंग प्रदेश एव बंगला भाषा से बहुत प्रेम था। कवीन्द्र रवीन्द्र

उनके आदर्श थे। परन्तु इसके साथ ही उन्हें अपनी मातृभाषा हिन्दी के प्रति भी अगाध एवं सहज प्रेम था। हिन्दी के साहित्यकार का अपमान इनके लिए असह्य था। हिन्दी की उपेक्षा उनकी दृष्टि में अक्षम्य अपराध था।

हिन्दी के नाम पर वह महात्मा गांधी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू तक से भिड़ गये थे।

निराला जी पर न मालूम क्या प्रतिक्रिया हुई थी कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह प्राय: अँगरेजी में बातें करने लगे थे। सन् १९४३-४४ में लेखक को उनके पड़ोस में कई महीनों तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। लेखक से वह प्राय: अँगरेजी में ही बातचीत किया करते थे, परन्तु न मालूम क्या बात थी, पं० श्री नारायण चतुर्वेदी के सामने वह अँगरेजी में बहुत कम बोलते थे। सम्भव है कि निराला जी का भावुक कवि हृदय राजनीतिक खिलाड़ियों के हाथों द्वारा होने वाली हिन्दी की दुर्दशा देखकर खीज उठा हो। जो भी हो, उनके हृदय में हिन्दी के प्रति अपार अनुराग था और उसकी दुर्दशा को देखकर वह अत्यन्त खिन्न थे। अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व उन्होंने अपनी यह प्रतिक्रिया सनेही जी के प्रति इन शब्दों में व्यक्त की थी—"देखो, मैं मरना चाहता हूँ और लोग मुझे मरने देना भी नहीं चाहते। मैं किसके लिए जीऊँ? आज भाषा और साहित्य तो राजनीति के अस्त्र-शस्त्र बन गये हैं। हिन्दी की जो दुर्दशा हो रही है, उसे मैं अब और नहीं देख सकता, अँगरेजी ही आज सर्वप्रिय भाषा बनी हुई है। जनता समझे या न समझे, पर वही जन-कल्याणी समझी जाती है। मैंने तो हिन्दी इसलिए छोड़ दी, अँगरेजी ही बोलता हूँ।"

अध्ययनशील विद्वान—निराला जी एक अध्ययनप्रिय, विद्याव्यसनी साधक थे। अध्ययन-प्रियता ने निराला जी के व्यक्तित्व को दीप्ति एवं भावुकता प्रदान की है। वह सरस्वती के वरद पुत्र थे। बँगला, संस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजी के भाषा-साहित्य पर उनको पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उनके ज्ञान को देख कर बड़े-बड़े विद्वान् दाँतों तले अंगुली दबा जाते थे। कालिदास, शेक्सपियर, रवीन्द्रनाथ, तुलसीदास, ब्राउनिग, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि अनेक साहित्यकारों के उन्हें अनेक मार्मिक स्थल कण्ठस्थ थे। मूड में आने पर वे घन्टों तक रवीन्द्रनाथ आदि की लम्बी-लम्बी कविताएँ सुनाने लगते थे। सारांश यह है कि उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य भाषा एवं साहित्य का गहन गम्भीर अध्ययन किया था। परन्तु यदि कोई व्यक्ति बंगला या

अंगरेजी की श्रेष्ठता के नाम पर हिन्दी की उपेक्षा करने लगता था, तो उनका अपराजित दम्भ तत्काल उसको चुनौती देने को तत्पर रहता था।

प्रकृति के प्रेमी—निराला जी ने महिषादल और गढ़ाकोला—दोनों ही स्थानों पर प्रकृति का सुरम्य वातावरण देखा था। ग्राम्य वातावरण में पलने के कारण और इसके प्रति रुचि होने के कारण निराला जी में प्रकृति के प्रति भी स्वाभाविक आकर्षण था। उनके काव्य (कविता, कहानी, उपन्यास) में प्रकृति के नैसर्गिक चित्र उभर कर ऊपर आए हैं। वे काव्यगत अलंकार, विलास और छायावादी अभिव्यजना-पद्धति से प्रभावित हैं।

गृहस्थ की विवशता—साहित्य में निराला एकदम फक्कड़ दिखाई देते हैं, परन्तु गार्हस्थ्य में वह सर्वथा व्यवहारकुशल थे। उन्होंने २१ वर्ष की अवस्था से ही भरी-पूरी गृहस्थी का दुर्बल भार वहन किया। लड़की, लड़का तथा चार भतीजों की देख-भाल, परवरिश, विवाह-शादी सभी कुछ किए। वह अपनी आमदनी को प्रायः घर-गृहस्थी की आवश्यकताओं की जुगाड़ में ही व्यय करते थे। सन्तान के प्रति इतना महत्व एवं दायित्व था कि दूसरा विवाह करने की स्थिति होते हुए भी उन्होंने आजन्म एकाकी विधुर रहना स्वीकार किया। घर, खेत और बागों के विषय में वे सदैव पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। इस सम्बन्ध में वह अपने पुत्र रामकृष्ण से सदैव पत्र-व्यवहार करते थे। निराला जी के गार्हस्थिक जीवन और उनकी विवशताओं पर प्रकाश डालते हुए डा० रामबिलास शर्मा ने जो कुछ लिखा है, वह ध्यान देने योग्य कथन है; यथा—'निरालाजी ने अपने जीवन के भरण-पोषण के लिए कदापि नहीं सोचा। उन्हें सन्तान के भविष्य की बात सदैव सालती रहती थी, अतः उनकी सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इन्हें प्रकाशकों के लिए फरमायशी साहित्य भी लिखना पड़ता था। हमारे देश तथा समाज के लिए इससे अधिक आत्म-ग्लानि और संताप की क्या बात हो सकती है कि 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' जैसे पौरुष और वेग का काव्य लिखने वाले 'निराला' को घटिया साहित्य भी लिखना पड़ा तथा अपने से कम प्रतिभा वाले किन्तु लोकप्रिय लेखकों की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद भी करना पड़ा था।"

सन्तों की मस्ती और फक्कड़ता—निराला जी के काव्य में आद्यन्त गतानुगतिकता के प्रति विद्रोह का स्वर सुनाई देता है। पुराने सन्त कवियों के समान अपने व्यक्तित्व को पुरुष भाव में व्यक्त करने की तेजस्विता उनमें समाहित

थी। वही फक्कड़पन, वही मस्ती, अपने अन्तर की अनुभूतियों का अबाध वर्णन, अज्ञात प्रियतम के मर्म की व्याकुलता, रूढ़ियों के प्रति विप्लवी भाव, विरोध की उपेक्षा और अनन्त का सन्देश आदि सब कुछ वही।

पुरातन और नवीन का सामंजस्य—निराला जी पुरातन के प्रति श्रद्धा रखते थे और नवीन को आस्था की दृष्टि से देखते थे। वह मार्क्सवादी भी थे और अध्यात्मवादी भी थे। भौतिक यथार्थ और अलौकिक सत्य का उनमें सुखद संगम दृष्टिगोचर होता था।

"एक ओर यदि वे रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और औपनिषदिक रहस्य तथा वैष्णव एवं शैव-शाक्त सम्प्रदायों की विचारधारा से प्रभावित हैं तो दूसरी ओर शेक्सपीयर, ब्राउनिंग, कीट्स, शैले तथा अन्य पाश्चात्य रोमांटिक कवियों एवं दार्शनिकों से भी परिचित हैं। उनमें जितना प्रखर स्वर, आसक्ति एवं मांसलता का है, उतना ही करुण स्वर तितिक्षा और निवृत्ति का भी है। अनेक विरोधी तत्त्वों ने गढ़ा था उनके व्यक्तित्व को।"

निष्कर्ष : अमृत आनन्द एवं आत्मीयता की त्रिवेणी—गंगाप्रसाद पांडेय का निम्नलिखित कथन निराला जी के व्यक्तित्व का सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत करता है—

"आँखों में आन्तरिक प्रसन्नता का प्रकाश, चित्त में चैतन्य की आभा और सारे शरीर में पुलक-स्फुरण तथा मस्ती से भरा मन लेकर निराला आगे बढ़ता जाता है। उसकी बेफिक्री से बोझिल चाल में किसी के अनुशासन का कम्पन नहीं, वरन् उसके विचारों और आत्म-विश्वास की दृढ़ता ही परिलक्षित होती है। उसको बड़ी-बड़ी लाल आँखों की ज्योति को देखकर अनायास ही यह पता चल जाता है कि यह व्यक्ति विकट वीर, उत्कृष्ट आत्मचेता है। उसकी ओर कड़ी आँख से देखने का किसी को साहस नहीं हो सकता। × × उसका दूर-दर्शन भयोत्पादक और विकराल लगता है। किन्तु उसकी निकटता और आत्मीयता अकलुष आनन्द देती है। उसके साहित्य का मनन-अमृत को अथाह और चिर नूतन भेंट देने में समर्थ है।"

(२) काव्य-साधना

प्रश्न ३—निराला जी की काव्य-कृतियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

प्रश्न ४—निराला-साहित्य का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५—निराला की काव्य-साधना का क्रमिक विकास दिखाते हुए 'अपरा' में संगृहीत कवियों का परिचय दीजिए।

उत्तर : निराला का साहित्य बहुमुखी है—निराला का साहित्य बहुमुखी और विपुल है। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, रेखाचित्र, जीवनियाँ, आलोचनात्मक निबन्ध, अनुवाद तथा नाटक सभी कुछ लिखे हैं।

निराला का साहित्य युगानुरूप है—निराला का जीवन एक लम्बे संघर्ष की कहानी है। उनका समस्त साहित्य एक लम्बे जीवन-व्यापी संघर्ष की कहानी है। वह सदैव नवीन की खोज करते रहे हैं और प्राचीन के प्रति विद्रोह करते हुए दिखाई देते हैं। इसलिए निराला जी की काव्य-साधना के विभिन्न पग हिन्दी-काव्य की प्रगति के विभिन्न चरण हैं।

निराला के साहित्य-विभाजन के आधार—निराला को जीवन-भर आर्थिक संकट से संघर्ष करना पड़ा है। साथ ही वह एक भावुक एवं जागरूक कवि रहे। इस कारण इन्होंने बहुत कुछ साहित्य केवल पैसों के लिए लिखा। उनको जीवन-निर्वाह के लिए बहुत कुछ ऐसा भी लिखना पड़ा, जो केवल प्रकाशकों ने लिखवाया और जिसके प्रति इनकी रुचि नहीं थी। इस प्रकार निराला जी के साहित्य को हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) अन्तःप्रेरणा से सृजित रचनाएँ, (ख) केवल धन के लिए लिखी जाने वाली रचनाएँ, (ग) विधागत वर्गीकरण।

निराला जी की रचनाओं का वर्गीकरण

(क) अन्तःप्रेरणा द्वारा रचित रचनाएँ—अन्तःप्रेरणा से सृजित साहित्य के अन्तर्गत निराला जी के सभी कविता-संग्रह तथा कुछ रेखाचित्र आते हैं। निबन्ध भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। निबन्ध उनके विशाल अध्ययन, प्रखर प्रतिभा, सूक्ष्म कलात्मक अन्तर्दृष्टि एवं युग की सहज-सतर्क धारणा के परिचायक हैं।

(ख) धन के हेतु रचित रचनाएँ—इस वर्ग के अन्तर्गत उनके उपन्यास, अनुवाद तथा उनकी कहानियाँ एवं जीवनियाँ आती हैं। इनकी रचना निरालाजी ने आर्थिक अभाव दूर करने के लिए की थी।

(ग) निराला-साहित्य का विधागत वर्गीकरण—निरालाजी द्वारा विरचित सम्पूर्ण साहित्य (ग्रन्थ संख्या ६७) की तालिका अग्रलिखित प्रकार है—

(१) **कविता-संग्रह (संख्या १३)**—(१) अनामिका (भाग—१), (२) परिमल, (३) अनामिका (भाग—२), (४) गतिका, (५) कुक्कुरमुत्ता, (६) अणिमा, (७) बेला, (८) नये पत्ते, (९) अपरा, (१०) आराधना, (११) अर्चना, (१२) श्रीराम-चरितमानस का खड़ीबोली में रूपान्तर। ये पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त एक कविता-संग्रह 'वर्षागीत' अभी तक अप्रकाशित है।

(२) **खण्डकाव्य (संख्या १)**—तुलसीदास। इसमें गोस्वामी तुलसीदास के जीवन का अध्ययन सर्वथा एक नवीन बौद्धिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

(३) **उपन्यास (संख्या ८)**—(१) अप्सरा, (२) अलका, (३) प्रभावती, (४) निरुपमा, (५) चोटी की पकड़, (६) काले कारनामे, (७) उच्छृंखल तथा (८) चमेली।

(४) **कहानी-संग्रह (संख्या ४)**—(१) लिली, (२) सखी, (३) चतुरी चमार तथा (४) सुकुल की बीवी।

(५) **रेखाचित्र (संख्या १)**—(१) कुल्ली भाट और बिल्लेसुर बकरिहा।

(६) **निबंध-संग्रह (संख्या ४)**—(१) प्रबन्ध पद्म, (२) प्रबन्ध प्रतिमा, (३) चाबुक और (४) प्रबन्ध-परिचय। इनमें से अधिकांश निबन्ध आलोचनात्मक हैं।

(७) **आलोचनात्मक ग्रन्थ (संख्या १)**—रवीन्द्र-कविता-कानन। इस ग्रन्थ में निराला जी ने रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताओं का भावार्थ देते हुए उनका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

(८) **अनुवाद (संख्या १४)**—निराला जी ने दो प्रकार के अनुवाद किए हैं—कथा-साहित्य का अनुवाद (संख्या ११) तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य का अनुवाद (संख्या ३)। कथा-साहित्य के अनुवाद ये हैं—(१) आनन्दमठ, (२) कपालकुंडला, (३) चन्द्रशेखर, (४) दुर्गेशनन्दिनी, (५) कृष्णकांत का बिल, (६) युगलांगुलीय, (७) रजनी, (८) देवी चौधरानी, (९) राधारानी, (१०) विष-वृक्ष, (११) राजसिंह तथा महाभारत का हिन्दी अनुवाद।

(९) **जीवनियाँ (संख्या ३)**—(१) ध्रुव, (२) भीष्म और (२) राणा प्रताप।

(१०) **नाटक (संख्या ३)**—(१) समाज, (२) शकुन्तला और (३) उषा-अनिरुद्ध । तीनों नाटक अप्रकाशित हैं ।

(११) **स्फुट रचनाएँ (संख्या ४)**—(१) हिन्दी-बँगला शिक्षक, (२) रस अलंकार, (३) वात्स्यायन कामसूत्र, (४) तुलसीकृत रामायण की टीका ।

निराला जी के काव्य-संग्रहों का कालक्रम इस प्रकार है—

(१) **अनामिका**—सन् १९२३ (प्रथम भाग), (२) **परिमल**—सन् १९४०, (३) **गीतिका**—सन् १९३६, (४) **अनामिका** सन् १९३८ (द्वितीय भाग), (५) **तुलसीदास**—सन् १९३८, (६) **कुक्कुरमुत्ता**—सन् १९४२, (७) **अणिमा**—सन् १९४३, (८) **बेला**—सन् १९४६, (९) **नये पत्ते**—सन् १९४६, (१०) **अपरा**—सन् १९५०, (११) **अर्चना**—सन् १९५०, (१२) **आराधना**—सन् १९५३ ।

निराला के काव्य का प्रवृत्तिगत वर्गीकरण—काव्यगत प्रवृत्तियों के आधार पर निराला के काव्य को चार वर्गों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(१) **रहस्यवादी कविताएँ**—रहस्यवाद की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है । छायावादी कवियों की भाँति निराला के काव्य में भी रहस्य-वाद की प्रवृति पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होती है। इनके प्रत्येक काव्य-संग्रह में रहस्यवादी कविताओं की संख्या पर्याप्त है ।

निराला जी की रहस्य भावना पर शंकराचार्य और विवेकानन्द का गंभीर प्रभाव पाया जाता है । सिद्धान्ततः निराला जी अद्वैतवादी थे । 'तुम और मैं' कविता इस वर्ग की कविताओं का प्रतिनिधित्व करती है ।

(२) **छायावादी कविताएं**—हिन्दी में छायावाद लाने का श्रेय चार कवियों को है—जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' । इस प्रकार निराला छायावाद के प्रमुख प्रवर्त्तक कवि हैं । छायावाद की प्रमुख विशेषताएं हैं—अन्तर्जगत का चित्रण, वेदना का अतिरेक, प्रेम और शृंगार का प्राचुर्य, नितान्त वैयक्तिकता, प्रकृति के प्रति नूतन दृष्टिकोण, रहस्य-भावना, अभिनव अलंकार, नवीन छन्द-विधान, प्रतीक विधान, लाक्षणिकता, विशेषण विपर्यय, गीतात्मकता तथा कोमलकान्त पदावली ।

(३) **प्रगतिवादी कविताएँ**—जन-जीवन की विषमताओं एवं समाज के उपेक्षित मनुष्यों को विषय बनाकर जिन कवियों ने प्रगति के गीत गाए, उनमें

निराला जी प्रमुख थे। प्रगतिवाद वस्तुतः साम्यवाद का साहित्यिक उच्चार है। इसमें शोषित समाज के प्रति सहानुभूति एवं पूँजीपति वर्ग के प्रति आक्रोश एवं घृणा की अभिव्यक्ति की जाती है।

अनामिका द्वितीय भाग के पश्चात् निराला जी प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हुए थे। निराला जी ने इस वर्ग की कई कविताएँ लिखीं। 'भिक्षुक' और 'विधवा' इस वर्ग की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

(४) **प्रयोगवादी कविताएँ**—निराला जी की कुछ रचनाओं में प्रयोगवाद के अंकुर दृष्टिगोचर होते हैं। इनका प्रत्येक काव्य-संग्रह स्वयं में एक प्रयोग है।

निराला के काव्य में युग की अभिव्यक्ति पाई जाती है और उनका कवि सदैव युग-भावना को वाणी देता रहा है। कई आलोचकों ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'निराला' जो कुछ लिखा है, उसके अतिरिक्त कुछ भी ऐसा नहीं है जिसको 'नया' कहा जा सके।

निराला जी के काव्य-संग्रहों का संक्षिप्त परिचय—

(१) **अनामिका**—प्रकाशन-काल सन् १६२३ है। इस संगह में निराला जी की प्रारम्भिक रचनाएँ सगृहीत हैं। इनमें अधिकांश कविताओं का मूल्य ऐतिहासिक ही है। इस संग्रह की तीन कविताएँ उल्लेखनीय हैं—

'पंचवटी-प्रसंग,' 'जुही की कली' तथा 'तुम और मैं'।

इन कविताओं के दो प्रमुख विषय हैं—आध्यात्म और प्रेम। इस संग्रह की कविताओं में सर्वप्रथम नवीन कला-विधान और मुक्त छन्दों के दर्शन हुए थे। फलतः इस प्रयोग से हिन्दी-जगत में हलचल मच गई थी।

(२) **परिमल**—प्रकाशन-काल सन् १६३०। यह कविता-संग्रह निराला की प्रसिद्धि का मुख्य कारण है। निराला के कवि-जीवन में इस काव्य-कृति का वही स्थान है, जो प्रसाद के जीवन में 'आँसू' का तथा पन्त के जीवन में 'पल्लव' का।

'परिमल' की कविताओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) प्रार्थना-परक कविताएँ।
(२) प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ।
(३) प्रेम-विषयक कविताएँ।
(४) नारी-सौन्दर्य-विषयक कविताएँ।
(५) देश-प्रेम की कविताएँ।
(६) आध्यात्मिक कविताएँ।
(७) समाज-विषयक कविताएँ।

(३) **गीतिका**—प्रकाशन-काल सन् १९३६। गीतिका में अनेक नवीन प्रयोग हैं। इसमें रहस्यवादी गीतों की प्रमुखता है। 'गीतिका' का महत्त्व आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के इन शब्दों में निहित है, "असाधारण जीवन-परिस्थितियों और भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण नहीं है, उनमें व्यापक जीवन का प्रवाह व संगम है। गति के साथ आनन्द और विवेक के साथ भी आनन्द मिला हुआ है। दोनों के संयोग से बना हुआ यह गीति-काव्य विशेष स्वस्थ सृष्टि है।"

जयशंकर प्रसाद ने 'गीतिका' को हिन्दी के लिए सुन्दर उपहार कहा था।

(४) **अनामिका (द्वितीय भाग)**—प्रकाशन-काल सन् १९३८। यह संग्रह कवि निराला की प्रौढ़ता का परिचय है। इसकी कई कविताएँ हिन्दी-साहित्य के गौरव तथा उसकी प्रगति की मापदण्ड हैं; यथा—राम की शक्ति-पूजा, सरोज-स्मृति, सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति, वनबेला, दान, प्रेयसी, तोड़ती पत्थर, किसान की नई बहू की आँखें इत्यादि।

(५) **तुलसीदास**—प्रकाशन-काल सन् १९३८। यह निराला जी का एक मात्र खण्ड-काव्य है। इसमें छायावाद काव्य-कला का चरम परिष्कार दिखाई देता है। 'तुलसीदास' में व्यक्ति के अन्तर्मन का मनोवैज्ञानिक भूमि पर विश्लेषण और इतिहास के पार्श्व में संस्कृति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(६) **कुक्कुरमुत्ता**—इसका प्रकाशन-काल सन् १९४२ है। यह एक प्रगतिवादी कविता-संग्रह है। यह व्यंग्य-प्रधान कविताओं का संग्रह है। इसमें कुक्कुरमुत्ता दीन-हीन जन का प्रतीक बन कर आया है।

(७) **अणिमा**—प्रकाशन-काल सन् १९४३। इस संग्रह में दो प्रकार की कविताएँ हैं। (क) व्यक्ति विशेष पर; जैसे—सन्त कवि रैदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कविवर प्रसाद, विजयलक्ष्मी पण्डित, भगवान बुद्ध इत्यादि तथा (ख) अन्य विषयों पर; यथा—सहस्राब्धि, उद्‌बोधन आदि। इस कविता-संग्रह में कवि छायावाद की सीमा पार करके 'प्रगतिवाद' की सीमा पर खड़ा हुआ दिखाई देता है।

(८) **बेला**—प्रकाशन-काल सन् १९४६। इस संग्रह में भी कई नवीन प्रयोग हैं। इसकी अधिकांश कविताओं में उर्दू छन्दों का प्रयोग किया गया है। एक आलोचक के शब्दों में, "बेला का महत्त्व प्रयोग के रूप में ही है।"

इसकी कुछ गजलों में कवि ने रहस्यात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है और कुछ में समाज तथा देश के विभिन्न पक्ष प्रस्तुत किए हैं।

(९) **नये पत्ते**—प्रकाशन-काल सन् १९४६ है। 'कुक्कुरमुत्ता' में कवि के मन में जो तीखी व्यंग्य-शक्ति फूटी थी, वह 'नये पत्ते' में आकर काफी प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई है। एक आलोचक के शब्दों में, "यह काव्य-संग्रह कवि की व्यंग्य-शक्ति के परिष्कृत, सशक्त और कलात्मक रूप को सफलता से प्रस्तुत करता है।"

(१०) **अर्चना**—प्रकाशन-काल सन् १९५०। इस संग्रह में निराला-प्रणीत समस्त गीत संकलित हैं। इन गीतों को दो शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—(१) आत्मवादी गीत और (२) जनवादी गीत।

'अर्चना' के गीतों में कवि ने संगीतात्मकता तथा गेयता की ओर विशेष ध्यान रखा है।

(११) **आराधना**—प्रकाशन-काल सन् १९५३। इस कृति में कवि के सन् ५१ और ५२ में लिखे हुए गीत संगृहीत हैं। इन गीतों में गेयता एवं सुन्दरम् तत्त्व की प्रधानता है। इनमें विषाद और निराशा के स्थान पर आस्था का स्वर अधिक मुखरित हुआ है।

(१२) **अपरा**—प्रकाशन-काल सन् १९५० है। अपरा में कोई नई कविता नहीं है। पूर्ववर्ती काव्य-संग्रहों में से ही सुन्दर-सुन्दर कविताओं को चुनकर इसमें संकलित कर दिया गया है। इस संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें हमें निराला के काव्य-विकास का क्रमिक इतिहास एक ही स्थान पर देखने को मिल जाता है। इस संग्रह में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि संगृहीत रचनाएँ निराला जी की विभिन्न काव्य-प्रवृत्तियों एवं प्रयोगों का प्रतिनिधित्व कर सकें।

अपरा में तीन युगों की प्रतिनिधि रचनाएँ संगृहीत हैं; यथा—

(क) **छायावाद का युग (सन् १९२० से सन् १९३५ तक)**—भारती वन्दना, बादल राग, जुही की कली, जागो फिर एक बार (भाग १-२), शरण में जन जननि, पावन करो नयन, सन्ध्या सुन्दरी, यामिनी जागा, बसंत आया, शेष, नबल खुलीं, प्रभाती; दे, मैं करूँ वरण, मातृ-वन्दना, जागी दिशा ज्ञान, अस्ताचल रवि, प्रात तव द्वार पर, वन्दूँ तव पद सुन्दर, भर देते हो, जागो जीवन-धनिके, स्वागत, जागृति में सुषुप्ति थी, बादल, रवि गये अपर पार, विधवा, आध्यात्मफल, मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा, बसन वासन्ती लोगी, भिक्षुक, तुम और मैं, आवेदन, हताश, तरंगों के प्रति, आए घन पावस के, फुल्ल

नयन ये, छत्रपति शिवाजी का पत्र, यमुना के प्रति, स्मृति, ध्वनि, अंजलि, दीन, धारा, आवाहन, स्वप्नस्मृति विफल वासना, प्रपात के प्रति, सिर्फ एक उन्माद, प्रेयसी, नाचे उस पर श्यामा तथा खंडहर के प्रति ।

(ख) **प्रगतिवाद का युग (सन् १९३५ से १९४५ तक)**—तोड़ती पत्थर, हिन्दी के सुमनों के प्रति, गर्जन से भर दो वन, नूपुर के सुर मन्द रहे, बादल, राम की शक्ति पूजा, मैं अकेला, जीवन भर दो, वन-बेला, स्मरण करते, दान, उक्ति, गहन है यह अन्धकारा, स्नेह निर्झर बह गया है, सरोज स्मृति, भाव जो छलके पदों पर, दलित जन पर करो करुणा, भगवान बुद्ध के प्रति, सुन्दर हे सुन्दर, जन जन के जीवन के सुन्दर, जलाशय के किनारे कुहरी थी, धूलि में तुम मुझे भर दो, देवी सरस्वती, तुलसीदास, सहस्राब्दि ।

(ग) **प्रयोगवाद का युग (सन् १९४५ के बाद)**—इस युग में रचित केवल एक रचना है—'अर्चना', इनमें छोटे-छोटे पाँच गीत संकलित हैं ।

द्रष्टव्य—निराला जी की अधिकांश रचनाएँ 'छायावाद' की प्रवृत्तियों से पूर्ण हैं । कवि निराला की रचनाओं में छायावाद की भावुकता मुखर है । निराला जी किसी भी युग में रचना करें, छायावादी भावुक कवि उनके पीछे झाँकता हुआ देखा जा सकता है ।

युग की सामान्य प्रवृत्ति और निराला की कविता को सम्बद्ध करके देखना विशेष उपयोगी नहीं होगा । 'प्रगतिवाद' के युग में यद्यपि युगीनकाव्य आन्दोलन का बल शोषित वर्ग पर था, तथापि निराला जी ने छायावाद की शैली की अनेक कविताएँ लिखीं । इसी प्रकार 'छायावाद' के युग में रचित अपनी कई रचनाओं में निराला जी 'प्रगतिवाद' के आगमन की सूचना देने वाले अग्रदूत के रूप में देखे जा सकते हैं ।

'अपरा' के अन्तर्गत हमको प्रायः दो प्रकार की रचनाएँ दिखाई देती हैं—(१) सौन्दर्य एवं प्रेम की अभिव्यक्ति करने वाली रचनाएँ तथा (२) वेदना को मुखर करने वाली रचनाएँ ।

निष्कर्ष—'अनामिका' से 'आराधना' तक निराला जी के कवि का निरन्तर विकास होता रहा है । यह विकास निरन्तर शृंखलाबद्ध है । इस विकास में कवि के जीवन की परिस्थितियों का विशेष योग-दान रहा है ।

निराला के विभिन्न काव्य-सग्रह हिन्दी की प्रगति की एक सुगठित क्रमिक कहानी का इतिहास प्रस्तुत करते हैं ।

'अपरा' में संकलित रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि कवि की अभिव्यक्ति को युग की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। युगों का नामकरण तो केवल साहित्य के इतिहास के अध्ययन की सुविधा के विचार से किया जाता है। इसके अनुसार काव्य-प्रवृत्तियों का आत्यन्तिक विभाजन न तो सम्भव ही है और न उपयुक्त ही है। 'अपरा' की कविताओं में हमको निराला जी के तेजस्वी व्यक्तित्व तथा प्रबल भावुकता के आद्यन्त दर्शन होते हैं। उनमें कण-कण के प्रति प्रेम तथा जन-जन के प्रति गहरी सहानुभूति परिलक्षित होती है। निराला जी के समग्र कवि रूप को प्रस्तुत करना ही सम्भवतः 'अपरा' के प्रकाशक का मन्तव्य रहा है।

(३) युगीन परिस्थितियाँ

प्रश्न ६—निराला ने जिस कालावधि में काव्य-रचना की, उसकी परिस्थितियों पर विचार कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७ - निराला के युग की विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८—निराला का काव्य युगीन परिस्थितियों की देन है। जिन परिस्थितियों ने निराला के काव्य को प्रभावित किया, उन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : निराला जी का युग तीन युगों का समन्वय है—निराला जी के काव्य-रचना-काल के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य के आधुनिक-काल के तीन युग आ जाते हैं—छायावाद का युग, सन् १९२० से सन् १९३५ तक; प्रगतिवाद का युग, सन् १९३६ से सन् १९४४ तक तथा प्रयोगवाद का युग, सन् १९४५ से सन् १९६० तक। अतएव निराला की काव्य-रचना के युग की परिस्थितियों को समझने के लिए इन तीनों युगों की परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—सन् १९०६ में बंग-भंग-आन्दोलन सफल हुआ। इससे भारतवासियों में आत्म-विश्वास उत्पन्न हुआ। साथ ही देश में राष्ट्रीयता की भावना को बल प्राप्त हुआ। इन्हीं दिनों मंचूरिया के युद्ध में रूस पर एशियाई शक्ति जापान की विजय हुई। फलस्वरूप यह नारा निरर्थक हो गया कि एशियावासी यूरोपवासियों के विरुद्ध कदापि विजयी नहीं हो सकते थे। जापान की विजय ने भी आत्म-विश्वास को बल प्रदान किया तथा अपने पौरुष के प्रति भारतवासियों को आश्वस्त किया।

सन् १९१४ से लेकर सन् १९१८ तक 'महायुद्ध' हुआ, जिसमें अंग्रेजी

शासन जर्मनी के विरुद्ध लड़ रहा था। अँग्रेजी शासन ने वादा किया था कि यदि भारतवर्ष की सहायता से वे युद्ध में विजयी होते हैं तो भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायेगा। भारतवासियों ने प्राण-प्रण से अंग्रेजों की सहायता की। स्वयं गांधी जी पलटन के लिए रंगरूट भरती करने के कार्य में लग गये थे।

अँगरेजों की विजय हुई। भारतवासियों ने आजादी के सपने देखे; यहाँ तक कि प्रबुद्ध नेताओं ने स्वतन्त्र भारत का संविधान भी बना डाला। कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे वर्तमान संविधान का निर्माण उस संविधान पर आधारित है, जो उन दिनों श्रीमती एनीबेसेण्ट, महामना मदन मोहन मालवीय, सी० आर० दास प्रभृति नेताओं ने तैयार किया था। परन्तु अँग्रेज शासक अपनी बात से हट गये। भारतवासियों ने जब गांधीजी के नेतृत्व में इस हेतु अपनी आवाज उठाई, तो उन्हें मिले रौलेटऐक्ट तथा जलियाँवाले बाग का हत्याकांड। भारतवर्ष के अबाल-वृद्ध क्षुब्ध हो उठे और देश-भक्ति की तलवार नंगी शमशीर बन गई। चारों ओर ये गीत गूँज उठे—

'नहिं रखनी सरकार जालिमा नहीं रखनी', तथा 'सिर बाँध कफनवा हो शहीदों की टोली निकली' इत्यादि। इसी संदर्भ में सुभद्राकुमारी चौहान की 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' कविता की रचना हुई थी।

इसके बाद सन् १९२९ का विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, सन् १९३० का नमक सत्याग्रह, सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आदि हुए और अँगरेजी शासन का विरोध उग्रतर होता गया। भारतवासियों को अँगरेज के नाम से, उसकी शक्ल से, उसकी भाषा से—सबसे घृणा हो गई और अन्ततः सन् १९४७ में भारतवर्ष को स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो गई।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि अँगरेज शासकों की कूटनीति ने हिन्दू और मुसलमान के मध्य अलगाव के बीज बो दिये और वे परस्पर प्रायः लड़ते रहते थे। अँगरेजी शासकों ने इसका समाधान देश के विभाजन में देखा और इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों के मध्य पारस्परिक, घृणा एवं विद्वेष के भाव ही स्थायी नहीं हो गए, बल्कि एक देश भारतवर्ष को काटकर भारत और पाकिस्तान दो देश बना दिये गए।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश का शासन कांग्रेस नेताओं हाथ में आ गया। स्वार्थपरता एवं अदूरदर्शिता के वशीभूत इन नेताओं ने 'बेईमान बनाओ

और राज्य करो' की कूटनीति अपनाई। फलतः देशवासी स्वतन्त्रता के जिन मधुर फलों के स्वप्न सँजोए बैठे थे, उन्हें प्राप्त न कर सके। इस कारण शासन के प्रति जनता में असन्तोष व्याप्त हो गया और किसी समय आदर और श्रद्धा की प्रतीक गांधी टोपी 'थ्री नोट थ्री' कही जाने लगी।

राजनीति के क्षेत्र में होने वाले इन परिवर्तनों ने कवि निराला को प्रभावित किया। राजनीतिक असन्तोष ने निराला को भी क्षुब्ध किया। सन् १९१६ से लेकर सन् १९६० तक का राजनीतिक वातावरण निराला जी की कविता में प्रतिबिम्बित है।

निराला जी के साहित्य में एक ओर भारत की पराधीनता के प्रति भयंकर विक्षोप है तथा दूसरी तरफ स्वतन्त्रता आदि के बाद की स्थिति के प्रति घोर असन्तोष है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ—सामाजिक व सांस्कृतिक जागरण का क्रम भारतेन्दु-युग में ही प्रारम्भ हो गया था। ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफीकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि ने समाज में नव-जागरण का शंख फूँका था और समाज को नवीन चेतना प्रदान की थी। सामाजिक कुरीतियों, छुआछूत, अशिक्षा, अन्धविश्वास, बाल-विवाह, विधवाओं की दुर्गति, नारी-वर्ग की अशिक्षा आदि के विरुद्ध अनेक आन्दोलन किए जा रहे थे। ये आन्दोलन क्रमशः अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली हो गये। इन आन्दोलनों ने धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया और सुधार की आवाज बुलन्द की। प्रबुद्ध वर्ग ने अपने प्राचीन इतिहास, साहित्य आदि का अध्ययन किया। लोगों में राष्ट्रीय स्वाभिमान के भाव जगे। वे अपने अतीत के प्रति आश्वस्त हो गए। अब उनमें हीनता का भाव बहुत कुछ कम हो गया।

महात्मा गांधी ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन को अपना राजनीतिक समर्थन प्रदान किया। फलतः रूढ़ियों के बन्धन और भी जल्दी टूटने लगे। प्राचीन के प्रति विद्रोह की इस भावना ने साहित्यिक जगत को भी प्रभावित किया और द्विवेदी युग के अन्तिम चरण में प्राचीन के विरोध ने 'नवीन प्रयोग' का रूप धारण कर लिया। निराला जी के काव्य में यह प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित है। निराला-काव्य में हमको वस्तु और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में 'नवीन' के दर्शन होते हैं।

'नवीन' को ग्रहण करने के आग्रह का सूत्रपात आचार्य महावीर प्रसाद

द्विवेदी ने किया था और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य जगत में युगान्तर ही उपस्थित हो गया था। उन्होंने परम्परागत विषयों को छोड़ कर समसामयिक नवीन विषयों को काव्य का विषय बनाने पर जोर दिया तथा ब्रजभाषा के स्थान पर जनभाषा खड़ीबोली में कविता करने की प्रेरणा प्रदान की, जिससे हिन्दी के कवियों का सन्देश अधिक व्यापक क्षेत्र में प्रसारित हो सके। आचार्य पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "नए विचार और नई भाषा, नया शरीर और नई पोशाक दोनों ही नई हिन्दी को द्विवेदी जी की देन हैं। द्विवेदी जी और उनके साथियों का महत्त्व नए निर्माण के लिए प्रचुर और अनेकमुख सामग्री भेंट करने में है।"

इस युग के साहित्यकारों के ऊपर पाश्चात्य साहित्य और पाश्चात्य विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। आगे होने वाले बहुमुखी विकास का आभास इसी युग में मिल गया था।

इस युग में यद्यपि परम्परा का मोह जीवित था, तथापि कवियों का एक वर्ग नवीन एवं उन्मुक्त पथों का अन्वेषण कर रहा था। प्रसाद, पन्त और निराला इनमें प्रमुख थे।

सन् १९२० तक आते-आते द्विवेदी जी का प्रभाव समाप्त हो गया और साहित्य में नवीन-चेतना उत्पन्न हो गई। राजनीतिक क्षेत्र में होने वाली उथल-पुथल बहुत कुछ इस साहित्यिक उथल-पुथल के लिए उत्तरदायी है।

सन् १९२० के बाद का युग हिन्दी साहित्य का अत्यन्त प्रौढ़ युग है। यह युग काव्य में छायावाद, उपन्यास में प्रेमचन्द, नाटक में प्रसाद और आलोचना में पं० रामचन्द्र शुक्ल का युग है। इस युग में साम्राज्यवाद की जड़ें हिल उठी थीं। यह युग संघर्षों से भाराक्रान्त होते हुए भी नवीन उत्साह एवं उल्लास का युग था। निराला इसी युग में आगे आए, बढ़े और क्रमशः प्रौढ़ता को प्राप्त हुए।

निराला मुख्यतः छायावाद के कवि हैं। निराला का साहित्य एवं संघर्ष नवीन काव्य-धारणा को अग्रसर करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् अनेक नवीन सामाजिक मूल्यों का निर्माण हुआ। उन्हीं के अनुसार निराला जी ने हिन्दी काव्य को नवीन मान्यताएँ और धरातल प्रदान किए।

(४) छायावाद और निराला

प्रश्न ९—'छायावाद' का स्वरूप निर्धारित कीजिए और छायावादी काव्य के अन्तर्गत निराला का स्थान निर्धारित कीजिए । अथवा

प्रश्न १०—"निराला छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं ।" इस कथन की समीक्षा कीजिए । अथवा

प्रश्न ११—'राग-विराग' से उद्धरण देकर यह प्रमाणित कीजिए कि निराला जी छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं ।

उत्तर : छायावाद का स्वरूप—सन् १९१९ के आस-पास हिन्दी काव्य में एक नवीन कविता-धारा का जन्म हुआ । इसे छायावाद कहा गया । स्वच्छन्दता, रहस्यात्मकता और वेदना इसके प्रमुख अवयव थे ।

छायावाद की परिभाषा विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है । इन परिभाषाओं में परस्पर इतना विरोधाभास है कि अल्पज्ञ पाठक किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है । ये परिभाषाएँ प्रायः अतिवादी हैं; यथा—

(१) जो समझ में न आवे, वह छायावाद है । (२) रहस्यवाद का ही एक भिन्न रूप छायावाद है । (३) छायावाद यूरोपीय रोमांटिसिज्म का भारतीय संस्करण है । (४) प्रकृति में मानवीय अथवा ईश्वरीय भावों के आरोप को ही छायावादी काव्य कहते हैं, आदि ।

कई आलोचकों ने तो इसको कुंठावादी एवं पलायनवादी काव्य ही बता दिया है । हमारे विचार से उपर्युक्त समस्त मन्तव्य अंशतः ही सत्य हैं । वास्तव में छायावाद शुद्ध रूप में न तो आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है, न यूरोपीय रोमांटिसिज्म की नकल है, न रुद्ध वासनाओं और अहं का विस्फोट है, न केवल पलायनवाद है और न एक शैली मात्र है । उसमें थोड़े-बहुत रूप में उपर्युक्त सभी तत्त्व विद्यमान हैं ।

"संक्षेप में, हम छायावाद को एक ऐसी काव्य-धारा मान सकते हैं, जिसके भावपक्ष में व्यक्तिवाद, अतृप्त प्रेम, निराशा एवं वेदना, प्रकृति का मानवीकरण मानवतावाद, राष्ट्र प्रेम, सूक्ष्म कोमल भावों की अभिव्यक्ति, जिज्ञासात्मक रहस्य भावना आदि बातें हैं और भावपक्ष की इस नवीनता के कारण जिसके कलापक्ष में नवीन छन्द-विधान, अलंकार-विधान, नवीन लाक्षणिक शब्दावली और नवीन प्रतीकों का प्रयोग होता है ।"

छायावाद की पृष्ठभूमि—छायावाद के जन्म के आस-पास सन् १९१९ में घटित होने वाली दो घटनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं—महायुद्ध में होने वाले संहार का भयावह प्रभाव तथा जलियाँवाले बाग का हत्याकाण्ड। प्रथम के फलस्वरूप विज्ञान के प्रति आस्था हिल उठी और चिन्तन-पद्धति परोक्ष सत्ता के प्रति उन्मुख होकर रहस्यात्मक हो गई। जलियाँवाले बाग एवं रौलेटऐक्ट जैसी घटनाओं ने भारतीय जन-मानस को निराशा से भर दिया। फलतः भावुक प्रबुद्ध व्यक्तियों की वृत्ति अन्तर्मुखी हो गई। वे यथार्थ जगत के स्थान पर कल्पनालोक में अपने आदर्शों की पूर्ति का सुख-स्वप्न देखने लगे थे। उनका यथार्थ जीवन निराशा और वेदना की कहानी बन गया। इसी बात को डा० रामविलास शर्मा ने साम्यवादी परिवेश में इस प्रकार कहा है—"छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह रहा है। परन्तु यह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्त्वावधान में हुआ था। इसलिए इसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई है।"

इन्हीं दिनों राजनीतिक आन्दोलन अँगरेजी शासन को जड़-मूल से समाप्त करना चाहता था। सामाजिक आन्दोलन धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त करने पर तुले थे। इन सबका समग्र प्रभाव यह पड़ा कि काव्य के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावाद का समावेश हो गया।

द्विवेदी युग में ज्ञान-विज्ञान के प्रति रुचि होने के कारण अँगरेजी साहित्य के अध्ययन को बल मिला था। फलतः १९वीं शताब्दी के अंगरेजी रोमाण्टिक साहित्य ने हमारे तरुण भावुक कवियों को प्रभावित किया और अँगरेजी के रोमाण्टिक कवियों की शैली पर काव्य-प्रणयन का सूत्रपात हुआ। ज्ञातव्य यह है कि अँगरेजी रोमाण्टिक कवियों के उत्साह एवं उल्लास का हमारे कवियों में अभाव था। अँगरेजी रोमाण्टिक साहित्य के पीछे फ्रांस की क्रान्ति एवं इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति की सफलताओं का उल्लास था। हिन्दी कवि स्वतन्त्रता आन्दोलन की विफलता से उत्पन्न वेदना एवं निराशा द्वारा पीड़ित थे।

एक बात और। पाश्चात्य चिन्तन के साथ जनतन्त्र के भाव आए थे और व्यक्ति एकदम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन गया था। छायावाद के कवियों के काव्य में अभिव्यक्त वैयक्तिता को इसी जनतन्त्रात्मक स्वातन्त्र्य का परिणाम समझना चाहिए।

सामाजिक आन्दोलनों ने नारी-उत्थान, नारी-सम्मान, नारी स्वतन्त्रता के भाव जाग्रत कर दिए थे। द्विवेदी युग की नारी महिमा-मण्डित देवी के रूप में आराध्या बन गई थी। परन्तु इस युग में फ्रायड प्रभृति मनोविश्लेषकों के प्रभाव के कारण वह अपने इस आसन पर न रह सकी और वह प्रेयसी बन गई। छायावाद के युग में नारी को विभिन्न रूपों में देखने की जो प्रवृत्ति है, उसके पीछे नारी के प्रति सहानुभूति एवं नारी को प्रेयसी के रूप में देखने की मनोवृत्ति की प्रधानता माननी चाहिए।

नारी, प्रकृति और प्रेम की त्रिवेणी भावुक हृदय की प्रेरणा रही है। छायावाद के कवि ने भी प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ नारी की ओर देखा, वहाँ उसने रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नारी को अपना माध्यम बना लिया। दाम्पत्य प्रेम द्वारा रहस्य भावना की अभिव्यक्ति अत्यन्त प्राचीन परम्परा है।

इस प्रकार छायावाद के अन्तर्गत नारी, प्रकृति और परोक्ष सत्ता परम्परा इतने घुले-मिले हैं कि सर्वत्र उन्हें पृथक् करना सम्भव नहीं है।

छायावाद का जन्म—'छायावाद' का जन्म अपनी युगीन परिस्थितियों की देन है। अँगरेजी काव्य से प्रभावित होकर उसने वह रूप धारण किया जो किसी सीमा तक पाश्चात्य है। छायावादी काव्य अपने आप में सम्पूर्ण मानव-जीवन एवं सम-सामयिक चिन्तन को समेट कर चला है।

राजनीति के क्षेत्र में फ्रान्स की क्रान्ति तथा सामाजिक क्षेत्र में इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति रोमाण्टिक काव्य की प्रमुख प्रेरणाएँ हैं। साहित्य के क्षेत्र में इंग्लैण्ड और स्काटलैंड के कतिपय प्रभावशाली कवियों के काव्य की नवीन विधाएँ विशेष प्रेरणाप्रद सिद्ध हुईं। इन कवियों ने व्यक्तिगत आह्लाद और विषाद की अभिव्यक्ति की, तथा प्राचीन आख्यानक गीत लिख कर अतीत के प्रति विशेष मोह उत्पन्न किया। इनमें वार्टन, बर्नस और पर्सी के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन् १८७८ में वर्डसवर्थ और कॉलरिज ने शास्त्रीय ढंग की काव्य-परम्परा के परित्याग एवं वैयक्तिकता की अनवरुद्ध अभिव्यक्ति का क्रम प्रारम्भ किया। इन कवियों ने १८वीं शताब्दी की काव्य-भाषा का परित्याग किया तथा प्रतीकों और बिम्बों का नवीन रूप प्रस्तुत किया। उनकी भाषा में संगीतात्मकता, चित्रात्मकता और व्यंजकता का विशेषतः समावेश हुआ।

हिन्दी कविता में रोमाण्टिक विद्रोह का आरम्भ करने वाले जयशंकर प्रसाद थे। 'इन्दु' में प्रकाशित लेख में उन्होंने काव्य-रचना के लिए व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति आवश्यक बताई। उनकी रचनाएँ झरना, आँसू, लहर और 'कामायनी' इसी विचारधारा के व्यावहारिक रूप हैं। इनमें द्विवेदी-युगीन बुद्धिवादिता का अभाव है तथा मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय को कहीं अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। 'पल्लव' की भूमिका में सुमित्रानन्दन पन्त ने प्राचीन और परम्परा के प्रति विद्रोह तथा स्वच्छन्दतावाद को साकार कर दिया है। उनकी कृतियाँ वीणा, पल्लव और गुंजन इसके उदाहरण हैं।

'गीतिका' के अन्तर्गत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने काव्य की बन्धनमयता की छोटी राह छोड़ कर चलने का प्रतिपालन किया। निराला की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का रूप यह था—

आज हो गए ढीले सारे बन्धन,
मुक्त हो गए प्राण।
× × ×
नव जीवन की प्रबल उमंग
जा रही मैं मिलने के लिए
पार कर सीमा।
प्रियतम असीम के संग। —'धारा' : परिमल

सुमित्रानन्दन पन्त ने छायावाद का घोषणापात्र (Manifesto) प्रस्तुत किया था। इस अर्थ में वह 'छायावाद' के प्रवर्त्तक हैं। पन्त के ऊपर अँगरेजी के रोमाण्टिक कवि शैली का गहरा प्रभाव है। पन्त शैली की भाँति प्रकृति के उपासक हैं। उन पर प्लेटो के आदर्शवाद का भी प्रभाव है। शैली के अनुसार समय का अवगुण्ठन विश्व के उत्कर्ष-विधान में बाधक है। इस अवगुण्ठन का निवारण होते ही वसुधा पर स्नेह और प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो जाएगा। 'पल्लविनी' तथा 'गुंजन' की अनेक कविताओं में उक्त विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। पंत मानस-विकास के लिए मूल प्रवृत्तियों का उन्नयन आवश्यक मानते हैं। 'ज्योत्सना' में कवि ने शरीर से आत्मा की ओर ले जाकर संसार में सुख-शान्ति स्थापित करने का सुख-स्वप्न देखा था। इस प्रकार पंत द्वारा प्रवर्तित 'छायावाद' एक आदर्शवादी काव्य-धारा है, जिसमें वैयक्तिकता, रहस्यात्मकता तथा प्रेम की सबल अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—वस्तु और शिल्प अथवा भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही क्षेत्रों में नवीनता का संदेश लेकर 'छायावाद' का आगमन हुआ। इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं शैलीगत विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

(क) **वस्तुगत प्रवृत्तियाँ**

(१) वैयक्तिकता तथा आन्तरिक अनुभूति।

(२) विद्रोह का स्वर—स्वच्छन्दतावाद।

(३) देश-प्रेम की अभिव्यक्ति।

(४) धूमिल पारलौकिकता अथवा रहस्यभावना।

(५) निराशा एवं वेदना, जिसे हम करुणा की विवृत्ति कह सकते हैं। इसे दुःखवाद भी कह सकते हैं।

(६) प्रकृति के प्रति प्रेम।

(७) सौन्दर्य एवं शृङ्गार भाव की अभिव्यक्ति।

(८) नारी का नया रूप।

(९) नवीन मानवतावादी जीवन-दर्शन।

(ख) **शिल्पगत विशेषताएँ**—'छायावाद' की कविता कल्पना-प्रधान होने से बहुत कुछ अस्पष्ट भाव-जगत से सम्बद्ध रही। इस कारण उसका भाषा-शिल्प भी उसी के अनुरूप कोमल और अस्पष्ट है। 'छायावाद' की भाषा-शैली से सम्बन्धित विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) कोमलकान्त संस्कृतनिष्ठ पदावली, (२) भाषा में संगीतात्मकता, (३) शब्द-विधान में ध्वन्यात्मकता, (४) लाक्षणिकता, (५) आलंकारिकता, (६) प्रतीकात्मकता, (७) मुक्त छन्द का प्रयोग।

छायावाद के विरुद्ध आक्षेप—छायावाद का काव्य प्रधानतः गीतात्मक ही रहा। इसने हमको दो नवीन वस्तुएँ प्रदान कीं—गीत प्रबन्ध और मुक्तावृत्त प्रबन्ध।

कुछ आलोचकों ने इसका विरोध किया। इसके विरुद्ध तीन प्रमुख आक्षेप लगाए गए—(१) वैयक्तिकता, (२) पलायनभावना और (३) अस्पष्टता। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये तीनों आक्षेप बहुत कुछ सही हैं।

छायावाद के अन्त के कारण—छायावादी काव्य में प्रतीकात्मकता तथा कल्पना का रूप इतना अधिक था कि वह प्रायः क्लिष्ट और दुर्बोध बन गया। इसके अतिरिक्त छायावाद की चेतना अधिकांशतः बहिर्जगत के प्रति उन्मुखी

न होकर अन्तर्मुखी ही रही। छायावाद का दृष्टिकोण वैज्ञानिक न होकर अधिकांशतः भावात्मक रहा और वह युग की तेजी से बदलती हुई संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में स्वस्थ जीवन-दर्शन प्रदान नहीं कर सका।

छायावाद के इस अभाव पक्ष के प्रति छायावादी कवि भी सजग थे। स्वयं पन्त ने लिखा था—"वह काव्य न रह कर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।" निराला जी इस कल्पनाश्रित काव्य प्रवृत्ति को त्याग यथार्थ के प्रति झुक गए थे। जागरूक व्यक्ति यह अनुभव करने लगे थे कि "कितनी चिड़ियाँ उड़े अकास। दाना है धरती के पास।"

इन्हीं समस्त कारणोंवश 'छायावाद' अधिक समय तक जीवित न रह सका और उसकी राख पर प्रगतिवाद उठ खड़ा हो गया।

निराला और छायावाद—छायावाद के कवियों ने अपने काव्य में समाज-चित्रण की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत हर्ष-विषाद को ही प्रधानता दी है। 'प्रसाद' ने 'आँसू' में अपने वियोग-विगलित हृदय के अश्रु बहाए हैं, 'पन्त' ने 'ग्रन्थि' में अपने मन की गाँठ खोलकर रखी है तथा महादेवी वर्मा ने अपनी व्यक्तिगत वेदना के संसार को विविध रंगों में रंग कर प्रस्तुत किया है। निराला जी के काव्य में भी वैयक्तिकता को अभिव्यक्ति मिली है। इन्होंने अपनी आन्तरिक अनुभूति को 'अपरा' की कई कविताओं में व्यक्त किया है। जुही की कली, हिन्दी के सुमनों के प्रति, मैं अकेला, राम की शक्ति पूजा, विफल वासना, स्नेह-निर्झर बह गया है, सरोज-स्मृति आदि अनेक कविताओं में हमें निराला की वैयक्तिक भावना की सफल अभिव्यक्ति मिलती है। यह अभिव्यक्ति दो प्रकार से की गई है—प्रत्यक्ष विधि से तथा अप्रत्यक्ष विधि से। 'विफल वासना' की ये पंक्तियाँ प्रत्यक्ष विधि से वैयक्तिक मनोभाव की अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण हैं—

तुम्हें कैसे प्रिय बतलाऊँ मैं ?

× × ×

वैसे ही मैंने अपना सर्वस्व गँवाया,
रूप और यौवन-चिन्ता में, पर क्या पाया ?
प्रेम ? हाय आशा का वह भी स्वप्न एक था,
विफल-हृदय तो आज दुःख ही दुःख देखता।

'राम की शक्ति पूजा' में निराला जी ने राम के माध्यम से परोक्ष विधि से अपने ही संघर्षपूर्ण जीवन की भर्त्सना की है; यथा—

धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध।
धिक् साधन जिनके लिए सदा ही किया शोध।

अतएव स्पष्ट है कि 'अपरा' की कई कविताओं में निराला ने वैयक्तिक आन्तरिक अनुभूति की अभिव्यक्ति की है।

विद्रोह का स्वर एवं स्वच्छन्दता—प्राचीन एवं परम्परा के विरुद्ध विद्रोह तथा स्वच्छन्दता का वरण अँगरेजी के रोमांटिक काव्य तथा हिन्दी के छायावाद के काव्य की मूल प्रेरणा रही है। निराला जी अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक विद्रोही एवं स्वच्छन्दता के प्रेमी रहे थे। वह तो वस्तुतः जीवन-पर्यन्त विद्रोह एवं संघर्ष ही करते रहे। 'अपरा' की कई कविकाओं में यह प्रवृत्ति मुखर है; यथा—

घन, गर्जन से भर दो वन,
तरु-तरु पादप-पादप-तन।
× × ×
गरजो, हे मन्द्र, वज्र-स्वर
थर्राये भूधर-भूधर। इत्यादि।

—गर्जन से भर दो वन

'सरोज-स्मृति' में निराला की स्वच्छन्दता-प्रियता का स्वर स्पष्टतः मुखर है—

पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूँ अक्षम,
× × ×
तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के पढ़ूँगा स्वयं मन्त्र;
यदि पंडित जी होंगे स्वतन्त्र।

देश-प्रेम की अभिव्यक्ति—देश के सांस्कृतिक पतन की ओर निराला जी ने बड़ी ओजस्विनी भाषा में इंगित किए हैं। उनका कहना है कि देश के भाग्याकाश को विदेशी शासक के राहु ने ग्रस रखा है। वह चाहते हैं कि किसी प्रकार देश का भाग्योदय हो और भारतीय जन-मन आनन्द-विभोर हो उठे। भारती

वन्दना, जागो फिर एक बार, तुलसीदास, छत्रपति शिवाजी का पत्र आदि कविताओं में निराला जी ने देश-भक्ति के भाव प्रकट किए हैं। वह 'अपरा' में समाज के प्रति जागरूक दिखाई देते हैं—

सोचो तुम,
उठती है नग्न तलवार जब स्वतन्त्रता की,
कितने ही भावों से
याद दिलाकर दुःख दारुण परतन्त्रता का
फूँकती स्वतन्त्रता निज मन्त्र से जब व्याकुल कान,
कौन वह सुमेरु, जो रेणु रेणु न हो जाए।

—छत्रपति शिवाजी का पत्र

निराला ने कई स्थलों पर समाज-सुधार के प्रति भी अपनी चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की है—

ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगर,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय-बेलि में विष ही फल।

सामाजिक चेतना—कुछ आलोचकों का मत है कि छायावादी कवि पलायनवादी है। परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। प्रत्येक छायावादी कवि के काव्य में हमको सामाजिक चेतना के दर्शन होते हैं। निराला चाहते हैं कि समाज का प्रत्येक प्राणी सुखी हो। निराला ने अपने प्रसिद्ध वन्दना-गीत 'वर दे वीणा वादिनी वर दे' में प्रार्थना की है कि मानव-समाज में नवीन शक्तियों का अविर्भाव हो, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सके। इसके अतिरिक्त 'अपरा' में संगृहीत कई गीतों में भी कवि ने लोक-कल्याण की कामना की है—

दृग-दृग को रंजित कर
अंजन भर दो भर।
बिधें प्राण पंच बाण
के भी परिचय-शर।
दृग-दृग की बँधी सुछवि
बाँधे सचराचर भव।

—वन्दूँ पद सुन्दर तव

निराला तो परमार्थ हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत हैं—

नर-जीवन के स्वार्थ सकल।
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ,
मेरे श्रम-संचित, सब फल। —मातृ-वन्दना

धूमिल पारलौकिकता अथवा रहस्य-भावना—छायावाद के अन्य कवियों की भाँति निराला ने भी अपनी रहस्य भावना को जिज्ञासा तथा कौतूहल के रूप में प्रकट किया है। 'तुम और मैं', 'यमुना के प्रति' आदि कविताओं में निराला की रहस्य भावना स्पष्टतः अभिव्यक्त है—

लहरों पर लहरों का चंचल नाच,
याद नहीं थी करनी इसकी जाँच।
अगर पूछता कोई तो वह कहती,
उसी तरह हँसती पागल सी बहती—
जब जीवन की प्रथम उमंग,
जा रही मैं मिलने के लिए,
पार कर सीमा।
प्रियतम असीम के पास। —यमुना के प्रति

निराशा, वेदना, दुःखवाद एवं करुणा की विवृत्ति—वेदना, दुखःवाद एवं करुणा की विवृत्ति की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। ये कवि वेदना एवं दुःख को जीवन का सर्वस्व एवं उपकारक मानते हैं। 'प्रसाद' की 'आँसू' के माध्यम से कवि की वेदना शतसहस्र धाराओं में प्रवाहित हुई है। महादेवी जी ने अपने आपको 'नीर-भरी दुख की बदली' ही कहा है। 'निराला' जी ने भी वेदना एवं दुःखवाद को कई प्रकार से प्रकट किया है। इसका मूल हेतु जीवन की निराशा है—

दिये हैं मैंने जगत को फूल-फल,
किया है अपनी प्रभा से चकित-चल,
यह अनश्वर था सफल पल्लवित तल—
ठाट जीवन का वही जो ढह गया है। —स्नेह-निर्झर बह गया है

प्रकृति के प्रति प्रेम—प्रकृति के प्रति प्रेम छायावाद का एक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण तत्त्व है। समस्त छायावादी कवियों ने प्रायः समस्त प्रचलित शैलियों पर प्रकृति के मनोरम वर्णन लिखे हैं। 'बादल राग' में प्रकृति का आलम्बन रूप में

वर्णन द्रष्टव्य है—'तरंगों के प्रति' प्रकृति के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति है। 'देवी सरस्वती' में नवीन ढंग का षट्ऋतु वर्णन है।

प्रकृति पर चेतना का आरोप तथा प्रकृति का मानवीकरण छायावाद के प्रकृति-वर्णन की मुख्य विशेषता है। निराला ने प्रकृति पर सर्वत्र चेतना का आरोप किया है। उनकी दृष्टि में बादल, प्रपात, यमुना—सभी कुछ चेतन हैं। वह यमुना से पूछते हैं—

तू किस विस्मृति की वीणा से,
उठ उठ कर कातर झंकार।
उत्सुकता से उकता-उकता,
खोल रही स्मृति के दृढ़ द्वार ?

'प्रपात के प्रति' गीत में वह कहते हैं—

अचल के चंचल क्षुद्र प्रपात,
मचलते हुए निकल आते हो।
× × ×
खेलते हो क्यों ? क्या पाते हो।

प्रेम का चित्रण (सौन्दर्य एवं शृंगार की अभिव्यक्ति)—छायावाद के काव्य में प्रेम का प्रचुर चित्रण हुआ है। यह प्रेम लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही प्रकार का है। लौकिक प्रेम में इन कवियों ने संयोग और वियोगजन्य सुख-दुःख की अभिव्यक्ति की है। पारलौकिक पक्ष में प्रेमाभिव्यक्ति सत्त्व की सीमा का संस्पर्श करती हुई दिखाई देती है। कवि तरंगों का असीमता में पर्यवसान करता हुआ कहता है—

तुम असीम में जाओ,
मुझे न कुछ तुम दे जाओ।

निराला तरंगों के अरूप में सार्थक पर्यवसान लिये पुकार उठते हैं—

किसके स्वर में आज मिला दोगी वर्षों का गान ?
आज तुम्हारा किस विशाल वक्षःस्थल में अवसान ?

—तरंगों के प्रति

निराला ने लौकिक की अपेक्षा अलौकिक प्रेम का अधिक चित्रण किया है। प्रेमाभिव्यक्ति का माध्यम विशेषतः प्रकृति ही रही है।

उनकी प्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' वियोगावस्था की मधुर कल्पना है।

जुही की कली को देखकर निराला जी को चिता पर लेटी हुई अपनी प्रियतमा की याद आ गई थी। रात्रि समय में वृन्त पर पुष्पिता, त्रियक नयना जुही की कली को देखते ही निराला के कवि की कल्पना जग उठी थी। प्रणयस्मृतियों ने कली की रति-क्रीड़ा का चित्र निराला के मन में खचित किया और कवि की चिन्तन-शक्ति ने लौकिक प्रेम में अलौकिक रति के संकेत भर दिए; यथा—

नायक के चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।

रति-रंग में वह प्रिय के साथ तन्मय होकर खिल जाती है; यहाँ तक कि निर्दय नायक ने उसकी सारी देह झकझोर डाली और उसके गोरे-गोरे गाल मसल डाले। वह प्यारे के रंग में रंग गई—

निर्दय उस नायक ने
× × ×
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
× × ×
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्रमुखी हँसी, खिली,
खेल रंग प्यारे संग।

नारी का विविध एवं नवीन रूपों से चित्रण—छायावादी कवियों ने बदलती हुई नवीन परिस्थितियों में नारी को विविध रूपों में देखा है। नारी के प्रति उनके हृदय में गहरी सहानुभूति है। कहीं वह जीवन की सहचरी एवं प्रेयसी है और कहीं उन्हें वह प्रकृति में व्याप्त होकर अलौकिक भावों से अभिभूत करती हुई दिखाई देती है। कहीं वह उसके दिव्य दर्शन की झलक पाते हैं और कहीं नारी को लक्ष्य करके ये कवि प्रेमोन्माद की अस्फुट मनोवृत्ति का चित्रण करते हैं। 'अपरा' की कई कविताओं में हमको नारी के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। वह प्रेयसी भी है तथा प्रेरणा-शक्ति भी है। समस्त प्रकृति उसी का स्वरूप है। निराला ने प्रेम की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से ही की है। 'यामिनी जागी' कविता में 'यामिनी' रूप प्रेयसी का यह चित्र देखिए—

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज दृग अरुण-मुख।
तरुण अनुरागी।

खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे। —इत्यादि

'तोड़ती पत्थर' कविता में नारी के प्रति निराला की करुणा-साकार हो उठती है—

देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोई नहीं।

'राम की शक्ति पूजा' की रचना का प्रतिपाद्य ही यह है कि नारी ही जीवन की प्रेरणा है और वही जीवन की शक्ति है; यथा—

देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा भास्वर,
× × ×
श्रीराघव हुए प्रणत मन्द-स्वर-बन्दन कर।
होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

निराला के लिए उनकी पत्नी जीवन का प्रकाश ही है—

"जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
× × ×
प्राची-दिगन्त-उर में पुष्कल रवि-रेखा।"

नवीन मानवतावादी जीवन-दर्शन—रवीन्द्र, टॉलस्टाय, गांधी प्रभृति महानुभावों ने विश्व-मानव की वन्दना की और इस प्रकार एक नवीन मानवता-वादी जीवन-दर्शन का उद्भव और विकास हुआ। अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला के काव्य में भी इस मानवतावादी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। 'अपरा' में संकलित कविता 'बादल राग' में कवि समाज की विषमता से पीड़ित होकर कहता है—

विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।
अट्टालिका नहीं है रे
आतंक भवन।

'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' जैसी कविताओं में निराला जी ने मानव में छिपे हुए देवता का दर्शन किया है; यथा—

ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा
अभिमन्यु-जैसे हो सकोगे तुम,

निराला की करुणा विश्व-व्यापी है।

सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान—छायावादी कवियों ने अपनी सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसके लिए उन्होंने सूक्ष्म प्रतीकों का एवं लाक्षणिक शैली का प्रयोग किया है। 'अपरा' के अन्तर्गत भी सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान एवं लाक्षणिकता के प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होते हैं; यथा—

हुआ रूप दर्शन,
जब कृतविद्य तुम मिले,
विद्या को दृगों के,
मिला लावण्य ज्यों मूर्ति को मोहकर,
शेफालिका का शुभ्र हीरक-सुमन-हार—
शृंगार
शुचि दृष्टि मूक रस-सृष्टि को।

तथा— **नहा स्नेह का सरस सरोवर,**
श्वेत वसन लौटी सलाज घर,
अलख सखा के ध्यान-लक्ष्य पर,
डूबीं, अमल धुलीं।

वैसे निराला ने 'तुलसीदास' में रहस्यवादी पद्धति पर प्रतीक के रूप में मुगल शासन का वर्णन किया है।

संस्कृतनिष्ठ कोमलकान्त पदावली—छायावादी काव्य आदर्शवादी काव्य-धारा है। तदनुरूप इसमें संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है। कोमल-कल्पना के अनुरूप इसकी पदावली भी कोमलकान्त है। 'अपरा' की कविताओं की भाषा में भी यह प्रवृत्ति मिलती है; यथा—

उस सलज्ज ज्योत्स्ना-सुहाग की,
फेनिल शय्या पर सुकुमार,
उत्सुक, किस अभिसार निशा में,
गयी कौन स्वप्निल पर मार ? —यमुना के प्रति

तथा— **किरण-दृक्-पात, आरक्त किसलय सकल,**
शक्त द्रुम कमल-कलि-पवन-जल-स्पर्श-चल,
भाव में सशत तत वह चले पथ प्राण।

—जागा दिशा-ज्ञान

संगीतात्मकता—निराला को संगीत-शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। वह स्वयं भी अच्छे गायक थे। उनकी कविता में संगीतात्मकता का सुन्दर निर्वाह मिलता है। 'यमुना के प्रति' की ये पंक्तियाँ देखिए—

बता, कहाँ अब वह वंशीवट ?
कहाँ गये नट नागर श्याम ?
चल-चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दा धाम ?
कभी यहाँ देखे थे जिनके
श्याम-विरह से तप्त शरीर
किस विनोद की तृषित गोद में
आज पोंछतीं वे दृग नीर ?

ध्वन्यात्मकता—निराला ने कई कविताओं में 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' के प्रयोग द्वारा अभीष्ट वातावरण प्रस्तुत किया है। 'गर्जन से भर दो वन' में उन्होंने ध्वन्यर्थ व्यंजना द्वारा बादलों की गरज, निर्घोषजन्य आतंक, जल का बरसना आदि दिखाया है; यथा—

गरजो, हे मन्द्र वज्र स्वर
थर्राये भूधर, भूधर,
झर झर झर झर धारा झर

'नाचे उस पर श्यामा' के अन्तर्गत कवि निराला ने ध्वन्यर्थ व्यंजना द्वारा ही युद्ध का सजीव दृश्य प्रस्तुत किया है। इसे पढ़कर आल्हा की 'चमक-चमक बिजुरी चमकै लपक-लपक चमकै तरवार' आदि पंक्तियाँ याद आ जाती हैं—

भेरी झरर्-झरर् दमामे,
घोर नकारों की है चोप,
कड़-कड़-कड़ सन्-सन् बन्दूकें
अररर अररर अररर तोप
धूम-धूम है भीम रणस्थल
शत शत ज्वालामुखियाँ घोर। —इत्यादि

आलंकारिकता—निराला जी की कल्पना के साथ अनेक शब्दालंकार एवं अर्थालंकार स्वयं ही जुड़ जाते हैं। उनकी उक्तियों में अलंकार बहुत ही स्वाभा-

विक रूप में उलझे हुए दिखाई देते हैं। संस्कृतनिष्ठ कोमलकान्त पदावली में अनुप्रास की छटा तो प्रायः सर्वत्र ही दिखाई दे जाती है। कई स्थलों पर सभँव पद यमक का प्रयोग पाया जाता है; यथा—

अचल के चंचल छुद्र प्रपात।

शब्दालंकारों में 'पुनरुक्तिप्रकाश' के प्रयोग भी भरे पड़े हैं। 'रूपक' अलंकार का प्रयोग भी बहुत हुआ है। विस्मृति की वीणा इत्यादि में अपह्नुति 'अलंकार' का यह प्रयोग द्रष्टव्य है—

अट्टालिका नहीं है रे
आतक भवन।

कई स्थलों पर निराला जी ने 'उपमा' अलंकार के अभिनव प्रयोग किए हैं—

अभिमन्यु-जैसे हो सकोगे तुम,

मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय के भी फुटकर प्रयोग पाए जाते हैं; जैसे—'निशीय की नग्न वेदना' इत्यादि। प्रकृति-वर्णनों में मानवीकरण के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कई स्थलों पर 'उदाहरण' और 'दृष्टान्त' अलंकारों के भी उदाहृण मिलते हैं।

नवीन मुक्त छन्दों का प्रयोग—निराला जी ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए जिस छन्द को प्रमुखतया चुना है, उसे मुक्त छन्द कहा जाता है। काव्य के कलापक्ष के अन्तर्गत हम मुक्त छन्द को निराला की सबसे बड़ी देन कह सकते हैं। निराला ने मुक्त छन्द का प्रयोग निर्भयतापूर्वक किया है। निराला के मतानुसार, मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना। मुक्त छन्द में बाह्य साम्य के प्रति कवि का जो अतुल आग्रह होता है, वह समाप्त हो जाता है, केवल मुक्त छंद में आन्तरिक होता है जो उसके प्रवाह में सुरक्षित रहता है। जुही की कली, पंचवटी प्रसंग, छत्रपति शिवाजी का पत्र, जागो फिर एक बार, शेफालिका आदि मुक्त छन्द में लिखी हुई कविताओं के उदाहरण हैं।

निष्कर्ष—निराला छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। वह छायावादी कवियों में अग्रणी हैं। उन्होंने छायावादी भाषा को नूतन पदावली देकर उसके भण्डार को समृद्ध किया तथा भाषा को गूढ़तम भावों की अभिव्यक्ति को वहन करने की शक्ति प्रदान की है। प्रस्तुत-विधान को परम्परा के बन्धनों से मुक्त किया है।

नवीन ढंग के अलंकारों की योजना की है तथा भाषा को ध्वन्यात्मक एवं संगीतात्मक बनाया है। मुक्त छंद के तो वह अग्रदूत हैं ही। सारांश यह है कि निराला ने नवीन दिशा और नवीन शक्ति देकर छायावाद को प्राणवान बनाया है।

(५) निराला और प्रकृति-वर्णन

प्रश्न १२—'राग-विराग' से उपयुक्त उदाहरण देते हुए 'निराला' के प्रकृति-चित्रण पर एक निबन्ध लिखिए। अथवा

प्रश्न १३—"निराला ने प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से की है।" इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।

उत्तर : प्रकृति-वर्णन की एक अखण्ड परम्परा है—प्रकृति और मानव का अटूट सम्बन्ध है। मानव प्रकृति के क्रोड़ में ही लालित-पालित और विकसित होता है। उसको जीवन की समस्त प्रेरणाएँ प्रकृति से ही प्राप्त होती हैं। इतना ही नहीं, जीवन के समस्त साधन भी वह प्रकृति से ही प्राप्त करता है।

प्रकृति सदा से कविजनों का प्रिय विषय रही है। यह बात दूसरी है कि समय और व्यक्ति के अनुसार उसके प्रति दृष्टिकोण बदलते रहे हैं।

प्रकृति-वर्णन और छायावाद—'छायावाद' का युग स्वच्छन्दता का युग रहा है। उस युग के कवि ने प्रकृति को जी भर कर देखा और विभिन्न प्रकार से उसका वर्णन किया। 'छायावाद' के काव्य के अन्तर्गत प्रकृति के वर्णन इतनी विभिन्न विधाओं में किए गए कि कतिपय आलोचक तो उसे प्रकृति-काव्य ही कहने लगे।

निराला और प्रकृति-वर्णन—निराला ने प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित किए हैं। निराला बंगाल और अवध के गाँवों में काफी समय तक रहे थे। उन्होंने वहाँ की प्रकृति के उन्मुक्त रूप में दर्शन किये थे। वहाँ की प्रकृति ने उन्मुक्त भाव से उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया था। उस उन्मुक्त रूप का निराला ने उन्मुक्त भाव से चित्रण किया। बादल, पुष्प, वन श्री, प्रपात, वनबेला आदि को देख कर वह भाव-विभोर हो उठते हैं। उस उन्मुक्त रूप पर अपनी नागरिक कल्पना और मानवोचित भावनाओं के चार चाँद लग जाने से निराला का प्रकृति-वर्णन खिल उठा है।

निराला जी को बादलों से विशेष अनुराग दिखाई देता है। डा० रामविलास शर्मा ने निराला जी के बादल-प्रेम का उल्लेख करते हुए लिखा है—"उन्होंने

बंगाल और अवध—दोनों की ही बरसात देखी है। शायद कोई भी हिन्दी का कवि मूसलाधार पानी में इतना न भीगा होगा। बाहर घूमते हुए बारिश आ गई तो उन्हें घर लौटने की कभी जल्दी नहीं होती, बादल घिरे हों तो भी दोस्तों को यह समझाते हुए कि पानी बरसने की जरा भी आशंका नहीं, वे उनके साथ घूमने चल देते हैं।"

निराला के काव्य में बिखरे हुए शेफालिका आदि के पुष्प, प्रपात, संध्या आदि के रंगीन एवं विभोर कर देने वाले वर्णन यह सिद्ध करते हैं कि प्रकृति के विभिन्न रूपों को देखकर यह कवि मुग्ध हो जाता है। यही कारण है कि निराला ने प्रकृति के इतने मनोरम चित्र अंकित किए हैं।

'राग-विराग' और प्रकृति-वर्णन—'राग-विराग' में संगृहीत कविताओं में प्रकृति वर्णन निम्नलिखित रूपों में पाया जाता है—

(१) **आलम्बन रूप में प्रकृति-वर्णन**—'राग-विराग' में कई कविताएँ ऐसी हैं जिनमें निराला ने प्रकृति पर किसी प्रकार की भावनाओं का अध्याहार न करके, उसका ज्यों-का-त्यों वर्णन किया है। ये वर्णन सहज, सुन्दर और स्वाभाविक हैं। श्रावण के काले-काले मेघों का यह वर्णन देखिए—

लख ये काले काले बादल,
नील सिन्धु में खुले कमल दल
हरित ज्योति चपला अति चंचल
सौरभ के, रस के,
अलि, घिर आए घन पावस के।

'निराला' ने ऐसे वर्णन करते समय प्रकृति में पशु एवं पक्षियों की स्वाभाविक क्रीड़ा का भी वर्णन किया है।

निराला के इस प्रकार के वर्णनों में प्रकृति के कोमल और कठोर दोनों रूप मिलते हैं। एक ओर किसलय आवृत्त कलियों की कोमलता के वर्णन हैं, तो दूसरी ओर बादल राग की कठोरता है।

(२) **प्रकृति दृश्यों में सामान्य आनन्द ग्रहण**—वर्ड्सवर्थ के 'प्रकृति की ओर लौट चलो आन्दोलन' से प्रकृति के प्रति कवियों का दृष्टिकोण बदल गया। वाल्मीकि, कालिदास प्रभृति कवियों की भाँति निराला भी प्रकृति के वर्णन में विभिन्न प्रकार से आनन्द प्राप्त करते हैं—

झूम झूम कर मृदु गरज गरज घनघोर,
राग अमर अम्बर में भर निज रोर।

'जागरण' शीर्षक कविता में वह प्राचीनकालीन सभ्यता का चित्रण करते हुए उपनिषद्कालीन प्रकृति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर देते हैं।

(३) **उद्दीपन रूप में प्रकृति-वर्णन**—प्रकृति का मोहक रूप जब निराला की कोमल भावनाओं को जगा देता है, तब वह विभोर होकर प्रकृति की छटा का वर्णन करने लगते हैं। संध्या सुन्दरी को देखकर वह विरहाकुल हो उठते हैं—

अर्द्ध रात्रि की निश्चलता हो जाती जब लीन
कवि का चढ़ जाता अनुराग
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग

यमुना की लहरों को देख कर कवि को अतीत की याद आ जाती है—

यमुने! तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान?
पथिकप्रिया सी जाग रही है
उस अतीत के नीरव गान।

'जागो फिर एक बार', 'वसंत आया', 'राम की शक्तिपूजा' आदि अनेक रचनाओं में विभिन्न भावनाओं को उद्दीप्त करने वाले प्रकृति के दृश्यों का वर्णन किया गया है।

निराला ने 'देवी सरस्वती' में प्राचीन पद्धति के 'षट्ऋतु वर्णन' की शैली को भी अपनाया है। हेमन्त ऋतु का यह वर्णन देखिए—

कुन्दों के विकास के शुभ्र हास पर उतरी
ओस-बिन्दुओं से शीतल हेमन्त की परी, —इत्यादि

(४) **मानवीकरण के रूप में प्रकृति का वर्णन**—छायावाद के कवियों की भाँति निराला भी प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में देखते हैं। निराला की प्रकृति प्रायः मानसी रही है। उन्होंने 'यमुना के प्रति', 'संध्या सुन्दरी', 'वसंत समीर', 'जुही की कली' आदि कविताओं में सूक्ष्म रेखाओं द्वारा, व्यापक चित्रपटी और सहज कला की सहायता से प्रकृति का मानवीकरण किया है। इसमें कई प्रकार की विधाएँ मिलती हैं—

(क) **मानवीकरण**—संध्या को एक सुन्दरी के रूप में चित्रित करते हुए निराला ने लिखा है—

मेघमय आसमान से उतर रही है

(ख) **प्रकृति की सहानुभूति**—कई स्थलों पर निराला ने प्रकृति को मानव के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए दिखाया है। 'वनबेला' और 'बादल' कविताओं में यह सहानुभूति मुखर हो उठती है; यथा—

गरजे सावन के घन घिर-घिर
नाचे मोर वनों में फिर-फिर
जितनी बार, चढ़े मेरे भी तार
छुन्द से तरह तरह तिर
तुम्हें सुनाने को मैंने भी,
नहीं कहीं कम गाने गाये।

(ग) **प्रेयसी के रूप में**—कई स्थलों पर निराला ने प्रकृति में प्रेयसी के दर्शन किए हैं। इन कविताओं में घोर ऐन्द्रिकता के दर्शन होते हैं। 'जुही की कली', 'शेफालिका' आदि में निराला प्रकृति की वस्तुओं में चेतना का आरोप करके अत्यन्त स्वतन्त्रता के साथ रति-क्रीड़ा का चित्र तक प्रस्तुत कर देते हैं—

सुन्दर सकुमार देह, सारी झकझोर डाली—
मसल दिये गोरे, कपोल गोल
चौंक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्रमुखी हँसी, खिली,
खेल रंग प्यारे संग।

(घ) **कमनीय चित्र-विधान**—'निराला' ने कई स्थलों पर प्रकृति के सुन्दर एव कमनीय चित्र प्रस्तुत किए हैं। ऐसे स्थलों पर निराला का रूप एक कुशल चित्रकार एवं मँजे हुए शिल्पी का-सा दिखाई पड़ता है। बादल राग, शेफालिका, तरंगों के प्रति, राम की शक्तिपूजा, विधवा आदि में अनेक चित्रों की समष्टि मिलती है; यथा—

वर्ष का प्रथम
पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरुपम
किसलयों बँधे —वनबेला

निराला में प्रकृति का क्षण-क्षण परिवर्तित प्रकृत वेश नहीं मिलता है। इन्होंने प्रकृति को अधिकांशतः मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनाया है।

(५) **वातावरण-चित्रण के लिए प्रकृति-वर्णन**—निराला ने कई रचनाओं में भावनाओं के अनुसार प्रकृति के वातावरण का चित्रण किया है। इस दृष्टि से इन्हें 'राम की शक्तिपूजा' में विशेष सफलता प्राप्त हुई है; यथा—

प्रशमित है वातावरण, नमित-मुख सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता-पल पीछे वानर-वीर सकल,
× × ×
निशि हुई विगत, नभ के ललाट पर प्रथम किरण
फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा-ज्योति-हिरण।

कुछ स्थलों पर निराला ने अमूर्त प्रकृति-विलास को मूर्त रूप भी प्रदान किया है।

(६) **अप्रस्तुत विधान के लिए प्रकृति का प्रयोग**—वर्ण्य-वस्तु की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए और उसको हृदयंगम बनाने के लिए कवि-जन उपमाओं, रूपकों, उत्प्रेक्षाओं का विधान करते आए हैं। इसके लिए कवि-जन प्रकृति के पदार्थों को उपमानों के रूप में ग्रहण करते आए हैं। निराला ने भी प्रकृति के पदार्थों के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है; यथा—

मेरे मरण और जीवन के कारण जाम पिये
देख खड़ी करती तप अपलक
हीरक सी समीर माला जप —प्रिय यामिनी जागी

आत्मबोध के लिए अपह्नुति अलंकार का यह विधान देखिए—

अट्टालिका नहीं रे, आतंक भवन
× × ×
अंगना अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं।
घनी वज्र गगन से बादल
त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं।

(७) **दार्शनिक भाव की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति-वर्णन**—प्रकृति को देखते ही निराला के मन में जिज्ञासा एवं कौतूहल से भाव जाग्रत हो जाते हैं। यह कौतूहल ही तो 'दर्शन' की मूल प्रेरणा है। वह तरंगों को देखकर कौतूहल प्रकट कर देते हैं—

किस अनन्त का नील अंचल हिला हिला कर
आती हो तुम सजी मण्डलाकार ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?

'प्रपात', 'कौन तम के पार रे' आदि गीतों में उनकी जिज्ञासा-भावना सफलता के साथ अभिव्यक्त हुई है। यह जिज्ञासा एक बालक की जिज्ञासा न होकर एक दार्शनिक की जिज्ञासा है। पिता पर्वत के पूत शिलाखण्ड प्रपात की राह रोकते हैं। जब प्रपात उन्हें पहचान लेता है, तो उसके ओठों पर एक मुसकान फूट पड़ती है। यही जीवन का रहस्य है। प्रत्येक रोड़ा हमारा आत्मीय ही तो है।

बस अजान की ओर इशारा कर चल देते हो,
भर जाते हो उसके अन्तर में तुम अपनी तान।

कई स्थलों पर निराला ने लौकिक वर्णन के द्वारा दार्शनिक समाधान प्रस्तुत किये हैं। 'जुही की कली' में निराला की इन पंक्तियों में जीव और ब्रह्म के रूप में प्रकृति के क्रीड़ा-विलास का चित्रण पाया जाता है—

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली
दृग बन्द किए शिथिल पत्रांक में

निराला के प्रकृति-वर्णन का तुलनात्मक अध्ययन—पन्त ने काव्य के विभिन्न उपकरणों का उपयोग करके प्राकृतिक दृश्यों के पूर्ण चित्र अंकित किए हैं—वह क्षण-क्षण परिवर्तित होती हुई प्रकृति का, प्रकृति की एक-एक रेखा का अंकन करते हैं। 'प्रसाद' ने प्रायः पृष्ठभूमि के रूप में ही प्रकृति का वर्णन किया है अथवा मनोवृत्तियों के लिए प्रकृति को मात्र माध्यम बनाया है। परन्तु निराला ने प्रकृति के माध्यम से मानवीय भावनाओं को ही अधिक प्रभावकारी रूप में

उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। निराला अन्त तक मनोरम दृश्य-अंकन का निर्वाह नहीं कर पाते हैं। मानवीय भावनाएँ बीच-बीच में आकर उन चित्रों को खण्डित कर देती हैं।

पन्त के प्रकृति-चित्रण में प्रकृति के विभिन्न व्यापारों के प्रति बाल-सुलभ जिज्ञासा है। निराला की जिज्ञासा एक दार्शनिक की जिज्ञासा है।

निराला में यद्यपि पन्त जैसा कल्पना-प्राचुर्य नहीं है, तथापि घनीभूत भावों की व्यंजना जितनी निराला की प्रकृति करती है, उतनी पन्त की प्रकृति नहीं कर पाती है। यथातथ्य रूप में प्रकृति का वर्णन पन्त में अधिक है। निराला प्रकृति पर चेतना का अथवा मानवीय भावनाओं का आरोप कर बैठते हैं।

निष्कर्ष—निराला रूप में अरूप के कवि हैं। इसी से उनके प्रकृति-वर्णन में चित्रों की समष्टि का अभाव है। निराला ने प्रकृति पर चेतना का आरोप खूब किया है।

निराला ने प्रकृति के कोमल और कठोर—दोनों ही रूपों का चित्रण किया है।

प्रकृति के प्रति निराला के दृष्टिकोण के दो रूप प्रमुख हैं—(क) प्रकृति का मानवीकरण या प्रकृति में परम शक्ति का दर्शन तथा (ख) प्रकृति को भावनाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनाना। कहीं-कहीं उनकी प्रकृति आत्मबोध देने वाली है। वैसे यह सर्वत्र 'मुक्ति' का संदेश देने वाली है। तरंग, बादल, वनबेला आदि सभी 'मुक्ति' के निर्देशक हैं। निराला की प्रकृति में उदासी या निराशा कहीं नहीं है। उनका 'बादल' तो क्रान्ति का पक्षधर ही है; यथा—

गरजो, हे मन्द वज्र-स्वर
थर्राये भूधर-भूधर।
झर-झर-झर-झर धारा झर,
पल्लव-पल्लव पर जीवन ! —गर्जन से भर दो वन

"निराला की प्रकृति-सम्बन्धी अनुभूति में पुरुष की इसी पूर्णता ने उसे यदि एक ओर अनन्त-अंचल-शयना सप्राण सुन्दरी बनाया है और उसे अक्षय कमनीयता, अनन्त गरिमा दी है, तो दूसरी ओर जीवन में आन्तरिक, बाह्य साम्य व सुधार के लिए उसे प्रेरणा-दात्री प्रतिमा भी बना दिया है।"

अतः कहा जा सकता है कि निराला के काव्य में प्रकृति का विशद एवं व्यापक चित्रण मिलता है; साथ ही वे सब रूप भी उपलब्ध होते हैं, जो आधुनिक कवियों ने प्रकृति के लिए अपनाये हैं।

(१६) निराला और रहस्यवाद

प्रश्न १४—'राग-विराग' में अभिव्यक्त रहस्य-भावना का विवेचन कीजिये।

अथवा

प्रश्न १५—"निराला-काव्य की मूल प्रेरक शक्ति उनकी आध्यात्मिक भावना रही है।" इस कथन को ध्यान में रखते हुए 'राग-विराग' में अभिव्यक्त निराला की रहस्य-भावना का विवेचन कीजिये।

उत्तर : रहस्यवाद—'रहस्यवाद' वस्तुतः एक मानसिक स्थिति-विशेष से सम्बन्ध रखता है। रहस्य का अर्थ 'गूढ़' या छिपा हुआ होता है। समस्त विश्व में व्याप्त सत्ता की अनुभूति हो जाना 'रहस्य' सचमुच एक बहुत बड़ा रहस्य है। 'रहस्यानुभूति' की अभिव्यक्ति असम्भव है। इसी से इसको 'गूंगे का गुड़' कहा गया है। जो जानता है वह बोलता नहीं है, जो बोलता है, वह जानता नहीं है। तब भी अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त न करना मानव के स्वभाव के अनुकूल नहीं पड़ता है। फलतः 'रहस्य', 'रहस्यानुभूति, रहस्यवाद आदि के नाम पर चिन्तक जन सदा से इसका स्वरूप-निर्धारण करते आये हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"ज्ञान के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।" इस कथन का स्पष्टीकरण इस प्रकार है, ज्ञान ने जिस अचित्य की सत्ता निर्घोषित की, भाव ने उसे विविध सम्बन्धों में बाँधना प्रारम्भ कर दिया, उस दिव्य सत्ता से जो सम्बन्ध भावना के आधार पर स्थापित किए गए और उनको अभिव्यक्त करने के लिए जिस वाणी का विधान हुआ, उसी को रहस्यवाद की संज्ञा प्राप्त हुई।

रहस्यवाद के प्रकार—रहस्यवाद के दो भेद हैं—(१) साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद।

साधनात्मक रहस्यवाद प्रमुखतः शास्त्र एवं सम्प्रदाय की बँधी-बँधाई लकीरों पर चलता है। इसमें ब्रह्म, जीव और हठयोग की तात्त्विक मान्यताओं का विवेचन होता है। इसमें प्रेम-भावना के लिए बहुत कम स्थान रह जाता है। कबीर ने अपने पदों में जहाँ कुण्डलिनी, चक्र, नाड़ी, सहस्रार, रंध्र, औंधा कुआँ आदि

की चर्चा की है, वहाँ साधनात्मक रहस्यवाद है। जायसी ने भी कहीं-कहीं साधनात्मक रहस्यवाद की पद्धति को अपनाया है।

भावनात्मक रहस्यवाद को काव्यात्मक रहस्यवाद भी कहते हैं। इसमें भौतिक क्रियाओं एवं रूढ़ियों से विशेष सम्बन्ध नहीं होता है। इसमें ससीम का असीम से, सान्त का अनन्त के साथ प्रणय-ग्रन्थन किया जाता है जिसमें विरह-निवेदन की प्रधानता रहती है। इसका मूल स्वर अद्वैतवाद है। इसमें साधक अपने अन्तिम सोपान पर पहुँच कर उस विराट सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करके तदाकार हो जाता है। वह अपने 'लाल की लाली' को चारों ओर देखकर स्वयं ही 'लाल' बन जाता है।

चिन्तनशीलता और भावात्मकता की प्रधानता के आधार पर भावात्मक रहस्यवाद के दो उपविभाग किए जाते हैं—(क) चिन्तन-प्रधान रहस्यवाद; कबीर, निराला और प्रसाद में मुख्यतः इसी कोटि के रहस्यवाद की अभिव्यक्ति हुई है तथा (ख) भावप्रधान रहस्यवाद—मीरा, महादेवी तथा पन्त इस वर्ग के प्रमुख रहस्यवादी हैं।

भावात्मक रहस्यवाद में प्रायः तीन स्थितियों का उल्लेख किया जाता है—(१) जिज्ञासा, (२) विरह तथा (३) मिलन।

निराला और रहस्यवाद की प्रेरणा—निराला की रहस्यानुभूति की प्रेरणा के स्रोत प्रायः तीन माने जा सकते हैं—(१) बंगाल का सुरम्य प्राकृतिक वातावरण जिसकी क्रोड़ में निराला की बाल्यावस्था एवं युवावस्था प्रतीत हुई, (२) रवीन्द्रनाथ के साहित्य का प्रभाव तथा (३) स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव के फलस्वरूप रामकृष्ण मिशन के साधुओं के साथ निराला का गहन सम्पर्क। निराला पर रामकृष्ण मिशन के स्वामी शारदानन्द का गहरा प्रभाव था।

निराला और रहस्यवाद—निराला के काव्य में पग-पग पर रहस्यवाद की अभिव्यक्ति पाई जाती है। उनकी शायद ही कोई ऐसी कविता हो जिसमें रहस्यवाद की व्यंजना न पाई जाती हो। निराला के काव्य में—उपलब्ध रहस्यवाद का विश्लेषणात्मक अध्ययन निम्नलिखित प्रकार है—

अद्वैतवादी चिन्तन—निराला सदैव एक दार्शनिक की भाँति सोचते रहते थे। उनकी चिन्तन-पद्धति प्रायः अद्वैतवादी थी, परन्तु एक अन्तर के साथ। निराला का अद्वैतवाद शंकराचार्य की भाँति गतिहीन न होकर विवेकानन्द की

भाँति गतिशील अद्वैतवाद है। वह अपने जीवन के दुःख को माया कहकर नहीं टाल देते हैं, वरन् उससे संघर्ष करते हैं तथा प्रभावपूर्ण पंक्तियों का निर्माण करते हैं; यथा—

मेरा अन्तर वज्र कठोर,
देना जी भर कर झकझोर,
मेरे दुख का गहन अन्धतम
निशि न कभी हो भोर,
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता,
क्या वन्दन अभिनन्दन,
जीवन चिर-कालिक क्रन्दन,

'आत्मा-परमात्मा' का सम्बन्ध लेकर निराला 'तुम और मैं' कविता में अद्वैतवाद का स्पष्टतः प्रतिपादन करते हुए दिखाई देते हैं—

तुम मृदु मानस के भाव,
और मैं मनोरंजनी भाषा,
तुम नन्दन-वन-घन विटप,
और मैं सुख-शीतल-तन शाखा,
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया।

निराला का विश्वास है कि इन नाम रूपात्मक जगत् का संचालन करने वाली कोई अदृश्य, अज्ञात एवं चेतन सत्ता अवश्य है। उसे ही सम्बोधित करते हुए वह ब्रह्म के प्रति अपने अटूट विश्वास को व्यक्त करते हैं—

एक दिन थम जायगा रोदन,
तुम्हारे प्रेम अंचल में,
लिपट स्मृति बन जाएँगे कुछ कन,
कन सींचे नयन जल में,

ब्रह्म और जीव के तादात्म्य तक निराला ने तीन सोपानों का वर्णन किया किया है—(१) ब्रह्म की ओर झुकाव, (२) ब्रह्म के प्रति आत्मसमर्पण तथा (३) एकाकार हो जाना—जहाँ अद्वैतभावना समाप्त हो जाती है और कबीर के शब्दों में जल में जल मिल जाता है और फिर अलग नहीं हो पाता है। कवि

की आत्मा लाल की लाली से लाल होकर स्वयं भी लाल बन जाती है। कवि निराला स्वयं को ब्रह्म मान लेते हैं—

वहाँ कहाँ कोई अपना सब,
सत्य नीलिमा में लयमान,
केवल मैं, केवल मैं,
केवल मैं, केवल मैं ज्ञान।

फिर भी निराला का रहस्यवाद कबीर से भिन्न है। कबीर का दर्शन वैराग्य-प्रधान है, निराला दार्शनिक हैं परन्तु वैरागी नहीं।

दाम्पत्य भाव की व्यंजना—इन्होंने एक-दो स्थानों पर स्वामी विवेकानन्द की भाँति अपने आराध्य को नारी रूप में सम्बोधित किया है—

प्रिय कोमल पदागामिनी मन्द उतर।
जीवनमृत तरु-तृण गुल्मों की पृथ्वी पर॥

विवेकानन्द की भाँति निराला जीव और ब्रह्म के मध्य माया के आवरण को स्वीकार करते हैं।

भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति—निराला के अद्वैतवाद में भक्ति की भावना का सम्मिश्रण पाया जाता है। पंचवटी' प्रसंग की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति,
सोच ली थी पहले ही।
इसीलिए द्वैत भाव-भावुकों में,
भक्ति की भावना करो।

कई स्थानों पर निराला की उस अदृश्य सत्ता के प्रति प्रेम और विश्वास की भावना मुखर दिखाई देती है। यह अभिव्यक्ति एकदम वैष्णव-भावना के साथ मेल खाती है—

भर देते हो,
बार-बार प्रिय, करुणा की किरणों से,
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
× × ×
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो।

इस प्रकार के स्थलों पर निराला में एक वैष्णव कवि की-सी तन्मयता मिलती है।

रहस्यवाद की तीन स्थितियों का वर्णन—कबीर में जिस वैष्णवीय प्रेम भक्ति का वर्णन मिलता है, वह हमको निराला में भी दिखाई देती है। निराला ने उस अनन्त शक्ति को श्यामा, माता, जननी कह कर पुकारा है। यह आत्म-निवेदन का ही एक रूप है और रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है।

(१) **जिज्ञासा की स्थिति**—

कौन तुम शुभ्र किरण-वसना ?
सीखा केवल हँसना केवल हँसना—
रूप राशि में टलमल-टलमल,
कुन्दन धवल दशना।

'निराला' की कविताओं में 'जिज्ञासा' की यह स्थिति प्रायः मिल जाती है। इसमें ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा भी रहती है तथा उससे उत्पन्न कौतूहल, विस्मय एवं आनन्द की व्यंजना भी। निराला में या तो 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' प्रधान चिन्तन मिलता है अथवा आत्यन्तिक स्थिति में अनुभावों का अंकन किया गया है; यथा—

स्पर्श से लाज लगी,
× × ×
नयनों का नयनों से बन्धन,
काँपे थर-थर थर-थर तन,
लाज लगे तो आओ,
तुम जाओ।

(२) **विरह की स्थिति**—निराला के मन में चेतना के प्रति अटूट विश्वास उठता है, तब उस चेतना में लय हो जाने के लिए आत्मा विकल हो उठती है—बस उसको समस्त विश्व में एक ही चेतना के दर्शन होने लगते हैं—

प्राणधन को स्मरण करते।
नयन झरते नयन झरते ॥

(३) **मिलन की स्थिति**—रहस्यवाद में 'विरह' और 'मिलन' की अवस्थाएँ साथ-साथ चलती हैं। साधक के मन में कभी तो विरह-जन्य विकलता अंकुरित होती है और कभी किन्हीं विरल मधुमय क्षणों में उस चेतना का मधुर संस्पर्श

प्राप्त होता है। प्रिय तो सदैव हृदय में स्थित रहता है, फिर उसे कहाँ और क्यों खोजा जाय ?

हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी ?
जिसमें— **हुई ज्योत्स्ना अखिल मायापुरी ?**

प्राकृतिक रहस्यवाद—कवि निराला प्रकृति के कण-कण में उसी सत्ता की छवि का दर्शन करते हैं। वह छायावादी कवियों के समान प्रकृति के रूपों में अरूप का आभास पाते हैं—

किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिला कर,
आती हो तुम सजी मंडलाकार,

'प्रपात के प्रति' की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं—

समझ जाते हो उस जड़ का सारा अज्ञान,
फूट पड़ती है ओठों पर तब मृदु मुस्कान,
बस अजान की ओर इशारा करके चल देते हो,
भर जाते हो उसके अन्तर में तुम अपनी तान।

कई स्थलों पर निराला ने प्रकृति में परम सत्ता की स्निग्धता के दर्शन किए हैं—फिर उपवन में खिली चमेली, मालती खिली, कुछ मेघ की" जैसी कविताएँ इस प्रकृति के उदाहरण है; यथा—

कौंधी चपला, अलक-बंध की
परी प्रिया के मुख की छवि सी।

× × ×

पृथ्वी को डह आए —फिर नभ घन घहराए

'जिधर देखिए श्याम विराजे' कविता में वह प्रकृति के कण-कण में एक श्याम की सत्ता का दर्शन करते हैं।

निष्कर्ष—निराला के रहस्यवाद की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) अन्य छायावादी कवियों की माँति निराला ने प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को विस्मय और जिज्ञासा के भाव से देखा है, जिसे 'कौन', 'क्या' आदि शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है। इस पद्धति से सामान्य वस्तु में भी एक प्रकार का असाधारण सौन्दर्य आ गया है। निराला ने खिले हुए पुष्पों को, गरजते हुए बादलों को, पर्वत के उत्तुंग शृंगों को, बल खाती हुई यमुना की लहरों को

विस्मित एवं विमुग्ध नयनों से देखा है। प्रकृति में एक चेतन सत्ता का भाव इनके काव्य के वस्तु-पक्ष को रमणीयता प्रदान करता है—

> **यमुने तेरी इन लहरों में—**
> **किन अधरों की व्याकुल तान ?**
> **पथिक प्रिया-सी जगा रही है—**
> **उस अतीत के नीरव गान।**

यह ठीक ही है कि "निराला की रहस्यानुभूति में केवल कवि की अनुभूतियाँ नहीं, एक दार्शनिक का गूढ़ चिन्तन भी है।"

(२) निराला के रहस्यवाद में 'चिन्तन' की प्रधानता है।

(३) निराला के रहस्यवाद में जिज्ञासा एवं मिलन की स्थितियों का वर्णन अधिक है। विरह की स्थिति का वर्णन अपेक्षाकृत कम है।

(४) पद्धति की दृष्टि से निराला के रहस्यवाद में वेदान्तवादी धारा को मुखरित किया गया है।

(५) निराला जिस अनन्त प्रकाश के कवि हैं, जिस अपरिमेय अव्यक्त सत्ता के प्रति उसने आत्म विसर्जन किया है, वह विभिन्न स्वरों में अभिव्यक्त हुआ है 'जुही की कली' इसका जीवंत उदाहरण है।

(६) बौद्धिकता के प्राधान्य के कारण कहीं-कहीं इनकी कविताएँ कविता न रहकर केवल दर्शन का प्रतिपादन करने वाली नीरस पंक्तियाँ बन कर रह गई हैं—

> **अति गहन विपिन में जैसे**
> **गिरि के तट काट रही हैं—**
> **नव जल-धाराएँ वैसे**
> **भाषाएँ सतत बही हैं।**

(७) चिन्तनशील होते हुए भी निराला नीरस नहीं हैं। सहृदयतापूर्ण अनुभूति के संयोग के कारण इनकी रहस्यानुभूतियाँ प्रायः सरस और रमणीय हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में, "निराला जी की आध्यात्मिक पंक्तियों तथा इनकी कविताओं में जहाँ-जहाँ इस प्रकार का अनुभूति-दर्शन मिलता है, वहाँ हृदय का संगीत है।"

(७) निराला और प्रगतिवाद

प्रश्न १६—'राग-विराग' की कविताओं को ध्यान में रखते हुए बताइए कि 'निराला' की कविताओं में प्रगतिवादी विचारधारा की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

अथवा

प्रश्न १७—"निराला की सामाजिक विचारधारा पर प्रगतिवादी चिन्तन का गहरा प्रभाव है।" 'राग-विराग' के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : प्रगतिवाद की परिभाषा—सन् १९३५ के आसपास हिन्दी में जिस नवीन काव्यधारा का दर्शन हुआ, वह 'प्रगतिवाद' कही जाती है। इसके पीछे रूस के साम्यवाद की प्रेरणा थी। राजनीति के क्षेत्र में जो चिन्तन-पद्धति साम्यवाद कही जाती है, अर्थनीति के क्षेत्र में जो 'समाजवाद' कही जाती है, वही साहित्य के क्षेत्र के 'प्रगतिवाद' कही जाती है। संक्षेप में 'प्रगतिवाद' साम्य वाद का साहित्यिक उच्चारण है।

प्रगतिवाद के तत्त्व—'प्रगतिवाद' के प्रधानतः दो तत्त्व हैं—कार्ल मार्क्स का साम्यवाद तथा फ्रायड का यौनिवाद। इनमें साम्यवाद मुख्य है और यौनि-वाद गौण है।

साम्यवाद की प्रमुख मान्यताएँ हैं—(१) अनीश्वरवाद, (२) वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त तथा (३) घृणा की सीमा तक पूँजीवादी शोषण का विरोध।

फ्रायड का यौनिवाद काम-वृत्ति को जीवन की प्रमुख वृत्ति मानता है तथा काम-भावना की सन्तुष्टि को जीवन का मूलमन्त्र मानता है; यहाँ तक कि वह पिता और पुत्री, माता और पुत्र तथा भाई और बहिन की स्नेहार्द्र आँखों में कामुकता का दर्शन करता है। अस्तु।

इस प्रकार 'प्रगतिवाद' के सामान्य तत्त्व निम्नलिखित प्रकार ठहरते हैं—

(१) रूढ़ि का विरोध।
(२) शोषित वर्ग (कृषक एवं श्रमिक) के प्रति उत्कट सहानुभूति।
(३) पूँजीपति के प्रति घृणा।
(४) क्रान्ति का आह्वान।
(५) वेदना की विवृत्ति।
(६) साम्यवाद, रूस और रूस की लाल सेना का गुण-गान।
(७) नारी का मांसल चित्रण।
(८) उद्‌बोधन, देशभक्ति।

निराला के काव्य में 'प्रगतिवाद' की अभिव्यक्ति—निराला स्वभावतः रूढ़ि-विरोधी एवं क्रान्तिकारी कवि थे। रूढ़ियों का विरोध एवं नवीन परम्पराओं का प्रवर्त्तन उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल पड़ता था। प्रगतिवादी चिन्तन में उन्हें अपने मनोभावों की छाया के दर्शन हुए। उन्होंने समाज के हित-साधन की दृष्टि से 'प्रगतिवाद' को अपनाया और उसका प्रवर्त्तन किया। उनका कहना है कि, "हम पुण्य उसे ही मानते हैं जिसमें अधिक संख्यक मनुष्यों को लाभ हो जिससे वे सुखी हों।"

निराला के काव्य में हमको 'प्रगतिवाद' की सबल अभिव्यक्ति मिलती है; यथा—

(१) **रूढ़ि का विरोध**—अपनी संस्कृति का दम्भ करने वालों को ललकारते हुए निराला ने लिखा है—"हजार वर्ष से सलाम ठोंकते-ठोंकते नाक में दम हो गया, अपनी संस्कृति लिये फिरते हैं। ऐसे लोग संसार की तरफ से आँखें बन्द कर अपने ही विवर के व्याघ्र बन बैठे रहते हैं, अपनी ही दिशा के ऊँट बनकर चलते हैं।" निराला का यह रूढ़ि-विरोध 'सरोज-स्मृति' में स्पष्टतः दिखाई देता है—

फिर सोचा—"मेरे पूर्वजगण
गुजरे जिस राह, वही शोभन
होगा मुझको, यह लोक-रीति
× × ÷
कुछ मुझे तोड़ते गत विचार
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूँ अक्षम,

(२) **शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति**—शोषित और दुःखीजन के प्रति गहरी सहानुभूति-प्रदर्शन 'प्रगतिवाद' का प्रतिपाद्य है। भिक्षुक, तोड़ती पत्थर, विधवा कविताएँ इस प्रवृत्ति के सुन्दर उदाहण हैं; यथा—

वह आता,
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिल कर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक।—इत्यादि —भिक्षुक

निराला ने 'वह तोड़ती पत्थर' कविता में एक मजदूरनी का बड़ा ही यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने 'शिवाजी के पत्र' में शूद्रों की शोचनीय

स्थिति का बड़ा ही मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है कि जब तक शूद्रों की स्थिति दयनीय रहेगी, तब तक भारतवर्ष का भविष्य अन्धकारपूर्ण ही बना रहेगा; यथा—

जारी रहेगी यदि
इसी तरह आपस में
उच्च जातियों की घृणा
द्वन्द्व कलह, वैमनस्य

तो इसका परिणाम यह होगा कि—

स्वप्न सा विलीन हो जाएगा अस्तित्व सब,
दूसरी ही तरङ्ग कोई फिर फैलेगी।

निम्न वर्ग के प्रति निराला की यह समवेदना कथा-साहित्य में और भी उभर कर आई है।

(३) **पूँजीपति के प्रति घृणा**—निराला ने अपनी पैनी दृष्टि से समाज के सच्चे रूप को देखा था और अपने गरीब जीवन में उसकी गरीबी को सहा था। उन्होंने 'सहस्राब्दि' में भारतीय समाज का बहुत ही सटीक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने कई कविताओं में वर्तमान सामाजिक शोषण का चित्र खींचते हुए यह दिखाया है कि संसार में विजयी कहलाने वाले लोग दूसरों का खून पीकर ही बड़े बनते हैं और इस विचारधारा के सन्दर्भ में उन्होंने पूँजीपतियों को बार-बार ललकारा है; यथा—

भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारी मिल में है।

'राजे ने अपनी रखवाली की' शीर्षक कविता में सामंतवादी व्यवस्था पर करारा प्रहार है। 'कुकुरमुत्ता' में वर्ग-संघर्ष से प्रेरित पूँजीपति के प्रति विद्वेष एवं घृणा मुखर हैं।

(४) **ग्रामीण चित्र**—देवी सरस्वती कविता में निराला ने ग्रामीण जीवन का सुन्दर वर्णन किया है। वह सरस्वती का निवास-गृह उस ग्राम-जीवन को बताता है, जहाँ—

डाले बीज चने के, जव के और मटर के,
गेहूँ के, अलसी-राई-सरसों के; कर से।

सुख के आँसू, दुखी किसानों की जाया के
भर आये आँखों में, खेती की माया से।

'देवी सरस्वती' में षड्ऋतुओं का वर्णन अत्यन्त यथार्थमय और मनोरम है।

(५) **क्रान्ति का आह्वान**—समाज के शोषण का अन्त करने लिए प्रगतिवादी कवि क्रान्ति का आह्वान करता है। निराला अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए 'श्यामा' से प्रलयंकारी नृत्य का आह्वान करते हैं—

एक बार बस और नाच तू श्यामा !
सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुमको हार !
कर मेखला मुंड मालाओं के बन मन-अभिराम
एक बार बस और नाच तू श्यामा !

(६) **वेदना और निराला**—सामाजिक विषमताओं को देखकर कवि निराला का मन खिन्न हो जाता है। उसके मन में वेदना और निराशा के भाव भर जाते हैं। ये भाव व्यक्तिपरक और समाजपरक—दोनों ही प्रकार के हैं। 'राग-विराग' में व्यक्तिपरक वेदना और निराशा का ही आधिक्य है। 'मैं अकेला', 'मरण को जिससे वरा है' तथा 'स्नेह निर्झर बह गया है' कविताएँ इसी प्रकार की हैं; यथा—

स्नेह निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है—अब यहाँ पिक या शिखी,
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूं लिखी,
नहीं जिसका अर्थ,
जीवन रह गया है।

एक दो स्थलों पर क्रान्ति के बीज दृष्टव्य हैं। 'झींगुर डट कर बोला' कविता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है; यथा—

चूँकि हम किसान-सभा के,
भाई जी के मददगार
जमींदार ने गोली चलवाई

पुलिस के हुक्म की तामीलों को
ऐसा यह पच है ।

(७) **साम्यवाद का गुणगान**—प्रगतिवादी कवि की यह धारणा है कि समाज के समस्त कष्टों का मूल आर्थिक विषमता है और समाज के समस्त अनर्थों का एक ही उपचार है—साम्यवाद । इसी कारण कभी वह साम्यवाद का गुणगान करता है, कभी रूस की ओर आशा भरी दृष्टि से देखता है और कभी रूस की लाल सेना के गीत गाता है । 'वनबेला' कविता में 'साम्यवाद की प्रशंसा करते हुए निराला ने लिखा है—

फिर पिता संग,
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता उमंग,
करता प्रचार,
मंच पर खड़ा हो साम्यवाद इतना उदार ।

(८) **नारी का मांसल-चित्रण**—प्रगतिवादी कवि एक ओर शोषित और त्रसित नारी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता है, तो दूसरी ओर वह उसको भोग की सामग्री मानता है और यथार्थवादी वर्णन के नाम पर उसके मांसल व रूप का चित्रण भी करता है । छायावाद का सूक्ष्म और अरूप रूप 'प्रगतिवाद' में स्थूल और मांसल बन कर हमारे सामने आता है । 'जुही की कली' में कवि गोरे गोल कपोल को मसल देने की बात कहता है । 'तोड़ती पत्थर' कविता में 'मजदूरिन' के प्रति गहरी सहानुभूति प्रदर्शित करते समय निराला यह लिखना नहीं भूलते हैं कि—

श्याम तन, भर बँधा यौवन,
× × ×
देखा मुझे उस दृष्टि से,
× × ×
ढुलक माथे से गिरे सीकर,

(९) **उद्बोधन, देश-भक्ति, सामाजिक कल्याण के भाव**—प्रगतिवादी कवि क्रान्तिकारी होता है । क्रान्ति की दो दिशाएँ होती हैं—ध्वंस और नव-निर्माण । प्रगतिवादी दोनों दिशाओं को अपनाता है । निराला ने भी दोनों दिशाएँ अपनाई हैं । ध्वंस की भेरी बजाते समय वह शिव और श्यामा का आह्वान करता है । नव-निर्माण का सुख-स्वप्न देखते समय वह समाज को उद्बोधन के गीत सुनाता

है। जागो फिर एक बार, जागा दिशा ज्ञान, छत्रपति शिवाजी का पत्र आदि उद्‌बोधन, नव-निर्माण और देश-भक्ति के गीत हैं।

निराला परतन्त्रता को दूर करने के लिए भारत के निवासी मात्र को समर-भूमि में आने के लिए ललकारते हैं। 'जागो फिर एक बार' नामक कविता में ऐसी ही ललकार है।

उनका कहना है कि केवल अशक्त प्राणी ही अत्याचार सहन करते हैं।

इसके साथ ही वह हमारी आपस की फूट की ओर सकेत करते हुए उसे दूर करने की सलाह देते हैं—

व्यक्तिगत भेद ने,
छीन ली हमारी शक्ति,

देश-भक्ति का शंख फूँकते हुए वह कहते हैं कि सात समुद्र पार की एक विदेशी सत्ता हम पर केवल हमारी दुर्बलताओं के कारण ही शासन कर रही है। हमको संगठित होकर उसे हटा देना चाहिए—

जितनी विरोधी शक्तियों से,
हम लड़ रहे हैं, आपस में,
सच मानो खर्च है यह,
शक्तियों का व्यर्थ ही।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम सरलतापूर्पक कह सकते हैं कि निराला-प्रणीत काव्य (राग-विराग) में प्रगतिवाद की समस्त प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं।

निराला के काव्य में समाज का यथार्थ चित्रण है। उसमें अनीश्वरवाद की इतनी सबल अभिव्यक्ति नहीं है, जितनी साम्यवाद आशा करता है। पन्त ने भी दलितों एवं दीनों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है, परन्तु उनमें निराला जैसी हार्दिक सहानुभूति का अभाव है। निराला के साहित्य में यथार्थ जीवन का चमकता हुआ चित्र मिलता है, साथ ही उसमें नव-निर्माण की प्रबल प्रेरणा है। निराला 'प्रगतिवाद' के अग्रदूत हैं। प्रगतिवादी काव्य में प्राणवत्ता भरने में हिन्दी-काव्य को जो योगदान निराला ने दिया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(८) निराला और नारी

प्रश्न १८—'राग-विराग' की कविताओं को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए 'निराला' की नारी-भावना पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न १९—'राग-विराग' में अभिव्यक्त नारी-विषयक भावनाओं का विश्लेषण करते हुए सिद्ध कीजिए कि निराला-काव्य में नारी के गौरव की पूर्ण रक्षा हुई है।

अथवा

प्रश्न २०—"निराला के काव्य में नारी के प्रेयसी रूप का जैसा गौरवमय चित्रण हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।" 'राग-विराग' की कविताओं पर दृष्टि रखते हुए इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : नारी साहित्य का अभिन्न अंग रही है—संसार के प्रत्येक साहित्य में नारी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक भाषा के साहित्य में हमको नारी का वर्णन मिलता है। हिन्दी साहित्य में तो प्रत्येक युग में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आदिकाल में वह युद्ध एवं वीरतापूर्ण वर्णनों की मुख्य प्रेरणा रही। सन्त-काव्य के अन्तर्गत उसको कामिनी कह कर पाप का मूल एवं नरक का हेतु बताया गया। भक्तिकाल में वह सहानुभूति की पात्र रही। उसके माता-रूप की आराधना की गई तथा उसके कामिनीत्व की उपेक्षा और कहीं-कहीं निन्दा तक की गई। समाज में किसी सीमा तक उसको हीन ही समझा गया।

रीतिकाल के काव्य में नारी को लेकर अनेकानेक रचनाएँ लिखी गईं, परन्तु वह भोग की वस्तु ही बनी रही। आधुनिक काल में नारी के प्रति दृष्टि-कोण बदल गया। न वह हीन ही समझी गई और न त्याज्य ही। भारतेन्दु-युग में उसके उद्धार की चर्चा की गई। द्विवेदी-युग में उसके प्रति सहानुभूति एवं आदर का भाव जाग्रत हुआ। उसके मातृत्व को लेकर उसको महिमा-मण्डित किया गया। संक्षेप में उसके प्रति भक्ति-कालीन दृष्टिकोण ही रहा।

छायावाद के युग में नारी को विविध रूपों में देखा गया। नारी प्रेयसी बन गई, परन्तु उसके प्रति दृष्टिकोण आदर्शवादी ही बना रहा—

> **नारी तुम केवल श्रद्धा हो,**
> **विश्वास रजत नग पग तल में।**
> **पीयूष-स्रोत सी बहा करो,**
> **जीवन के सुन्दर समतल में।** —जयशंकर प्रसाद

छायावाद के बाद प्रगति और प्रयोग के युग में वह भोग की वस्तु ही बनी रही। वर्तमान कवि भी उसके प्रति प्रायः भोगवादी दृष्टिकोण ही रखता है।

निराला और नारी—'अपरा' में छायावाद और प्रगतिवाद इन दो युगों में रची हुई कविताएँ संग्रहीत हैं। 'निराला' ने नारी के प्रति आदर्शवादी और

भोगवादी दोनों ही दृष्टिकोण अपनाए हैं। भोगवादी दृष्टिकोण से वह प्रेयसी है। निराला की प्रेयसी प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त है। आदर्शवादी दृष्टि से वह जगन्माता, परमशक्ति, परम आराध्या आदि है; यथा—

(१) **प्रेयसी नारी**—निराला प्रकृति में प्रेयसी नारी का दर्शन करते हैं। प्रेयसी नारी का वर्णन करते समय वह एकदम रीतिकाल में पहुँच जाते हैं। वह नखशिख-सौन्दर्य का वर्णन करते हैं तथा अनुभाव-विधान द्वारा सम्भोग-शृंगार की व्यंजना करते हैं। 'जुही की कली' एकदम रीतिकालीन नायिका दिखाई देती है, परन्तु वह वासना के कर्दम से सर्वथा मुक्त रहती है—

विजय-वन-वल्लरी पर,
सोती थी सुहागभरी—
स्नेह-स्वप्न-मग्न—अमल-कोमल-तनु तरणी
जुही की कली
× × ×
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।

निराला प्रकृति में अपनी प्रेयसी का दर्शन करते हुए दिखाई देते हैं।

खेलूँगी कभी न होली, गोरे अधर मुसकाई। आदि

कविताएँ इसी प्रकार की हैं।

निराला के गीतों में हमें कई स्थानों पर रीतिकालीन परकीया प्रेम के भी दर्शन हो जाते हैं; यथा—

बांधो न नाव इस ठाँव बंधु।
× × ×
देती थी सबके दाँव बंधु।

कई कविताओं में हमें नख-शिख परम्परा पर सौन्दर्य-निरूपण के दर्शन होते हैं—"कैश के मेचक मेघ छुटे", शीर्षक कविता इसी प्रकार की है।

(२) **माता और नारी**—निराला स्वभाव से भावुक कवि और आदर्शवादी चिंतक रहे। उनकी दृष्टि में नारी का स्थान नर से कहीं अधिक उच्च एवं श्रेष्ठ है। निराला की माता नारी महिमा-मण्डित एवं आराध्या है। उन्होंने 'नारी' को आदि शक्ति, जीवन की मूल प्रेरणा आदि के रूप में अंकित किया

है। 'राम की शक्ति पूजा' और 'नाचे उस पर श्यामा' आदि कविताओं में नारी को समस्त शक्ति सामर्थ्य का स्रोत बताया गया है। राम की विजय का कारण नारी द्वारा प्रदत्त शक्ति ही है। राम जब रावण के सम्मुख हत-प्रभ और पराजित-से होने लगते हैं, तब वह कहते हैं—

बोले रघुमणि—मित्रवर, विजय होगी न समर,
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण। —इत्यादि

राम महाशक्ति का आराधन करते हैं। महाशक्ति प्रकट होती है। उससे वरदान प्राप्त करके राम रावण पर विजय प्राप्त करते हैं—

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के वंदन में हुई लीन

भारती-वन्दना, शरण में जन-जननि, मातृ-वन्दना आदि कई कविताओं में निराला ने नारी के माता रूप के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाए हैं।

(३) **नारी का सौन्दर्य-चित्रण**—निराला स्वभाव से पुरुष और परुष हैं। उनकी कल्पनाएँ पुरुषोचित हैं। उनकी कला में नारी के रूपों के प्रति विशेष मोह नहीं है। यही कारण है कि उन्होंने नारी के सौन्दर्य के अधिक चित्रण प्रस्तुत नहीं किए हैं। जो वर्णन किए हैं, उनमें नखशिख एवं समग्र शरीर दोनों ही के सुन्दर रूपों के दर्शन हो जाते हैं। 'जुही की कली' और 'संध्या सुन्दरी' के वर्णन मानवीकरण की शैली पर किए गए हैं। नायिका-सौन्दर्य वर्णन की पद्धति पर इन मानवीकृत सुन्दरियों के चित्र देखते ही बनते हैं। 'संध्या सुन्दरी' का यह स्वरूप देखिए—

अलसता की सी लता
किन्तु कोमला की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।

इस वर्णन में अमूर्त का मूर्त रूप प्रस्तुत किया गया है। 'रत्नावली' की अश्रुपूरिता यह मुख छवि कितनी स्पृहणीय है—

देखा सामने, मूर्ति छल-छल
नयनों में छलक रही अचपल,
उपमिता न हुई समुच्च सकल तानों की

(४) **नारी के प्रति सहानुभूति**—हिन्दू समाज की विधवा सदा से दीन प्राणी रही है। वह सर्वाधिक शोषिता प्राणी रही है। उसकी दशा को देखकर निराला का हृदय द्रवीभूत हो उठता है। 'विधवा' कविता में नारी का यह करुण चित्र देखिए—

> **उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर**
> **लघु टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ा कर**
> **अति छिन्न हुए भीगे अंचल में मन को—**
> **दुख-रूखे-सूखे अधर-त्रस्त चितवन को**
> **यह दुनियाँ की नजरों से दूर बचा कर,**
> **रोती है अस्फुट स्वर में।**

(५) **भारतीय कुल ललना का चित्रण**—निरालाजी ने पतिप्राणा भारतीय नारी के अनेक मनोरम चित्र अंकित किए हैं। उनकी दृष्टि में वह सौन्दर्य-सरोवर की तरंग है।' परन्तु उसमें 'किन्तु नहीं चंचल प्रवाह-उद्दाम वेग'। वह नव बसंत की किसलय-कोमल लता है, जो किसी विटप के आश्रय में मुकुलिता और अवनता है। वह भारतीय नारी है। इस कारण उसमें कोई चाह नहीं है—

> **उसमें कोई चाह नहीं है**
> **विषय-वासना तुच्छ उसे कोई परवाह नहीं है।**

तभी तो अपने प्रति आसक्त पति को लक्ष्य करती हुई रत्नावली कह उठती है—

> **धिक् ! आए तुम यों अनाहूत**
> **धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत**
> **राम के नहीं काम के सूत कहलाए !**
> **हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,**
> **वह नहीं और कुछ हाड़ चाम !**
> **शिक्षा, कैसे विराम पर आए।**

भारतीय वधू के प्रेम की एकान्तता का जो वर्णन निराला ने किया है, वह प्राय: अप्रतिम है—

यौवन-उपवन का पति वसन्त,
है वही प्रेम उसका अनन्त,
है वही प्रेम का एक अन्त।
खुलकर अति प्रिय नीरव-भाषा ठण्डी उस चितवन से।
क्या-क्या कह जाती है अपने जीवन धन से।

'भारतीय वधू' का यह रूप हिन्दी-साहित्य में अपने सौन्दर्य, भावशबलता एवं पवित्रता में अद्वितीय है।

(६) **नारी के सामान्य चित्र**—निराला ने नारी के शरीर की ओर कम; हृदय, मन और आत्मा के सौन्दर्य की ओर अधिक देखा है। उन्होंने नारी का वर्णन करते समय प्राय: मानसिक चित्र ही खींचे हैं। परन्तु कहीं-कहीं वह सामान्य मानव धरातल पर उतर आते हैं। ऐसे स्थलों के वर्णन स्थूल हैं और सौन्दर्य का स्वरूप बहुत कुछ मांसल हो गया है; यथा—

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली।
जागी रात सेज प्रिय पति-संग रति सनेह-रंग घोली।
दीपित दीप प्रकाश, कंज छवि मंजु-मंजु हँस खोली।
मली मुख-चुम्बन-रोली।

तथा—

आँख लगाई
तुमसो जब से, हमने चैन न पाही

तथा—

आँख बचाते हो
तो क्या आते हो ?

ऐसा ही है निराला की एक विरहिणी का यह चित्र—

ये दुख के दिन काटे हैं जिसने
× × ×
लखने को शशि मुख
दु:ख निशा में

निष्कर्ष—नारी-सौन्दर्य के चित्रण में निराला के ऊपर कालिदास और रवीन्द्रनाथ का ऋण स्पष्टत: परिलक्षित होता है। डा० रामरतन भटनागर

के शब्दों में, "कालिदास और रवीन्द्रनाथ की कला के उपासक होने के कारण निराला को नारी-सौन्दर्य के अनेक उत्कृष्ट चित्र देने चाहिए थे, परन्तु स्वयं निराला का पुरुष-प्रधान व्यक्तित्व इन्हें कोरे भावुक, रोमांटिक चित्रों से ऊपर उठा देता है।"

निराला-काव्य में हमको अधिकांशतः नारी के ऐसे रूप मिलते हैं; जिसमें वह प्रायः मानसी ही रही है। उसमें स्थूल-चित्रण बहुत कम है। छायावादी कवियों की भाँति निराला का नारी-प्रेम सर्वत्र मानसिक ही अधिक रहा है। वह नारी के प्रति 'पावन करो नयन' वाली भावना ही प्रमुख रूप से रखते हैं।

सारांश रूप में निराला-काव्य में हमें नारी के विभिन्न रूप मिलते हैं जो सर्वत्र कलुष से रहित हैं। कहीं वह सुन्दरी प्रेयसी है जो जीवन-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती है, कहीं वह करुणा का उद्रेक करने वाली भारतीय विधवा है और कहीं वह महाशक्ति है जो भव-सागर को पार करने की शक्ति प्रदान करती है।

(६) निराला का शिल्प-विधान

प्रश्न २१—'राग-विराग' को ध्यान में रखते हुए निराला के काव्य में कला पक्ष पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए। अथवा

प्रश्न २२—निराला की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए। अथवा

प्रश्न २३—"निराला के काव्य का कलापक्ष अत्यन्त समर्थ और मौलिक है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। आवश्यकतानुसार 'राग-विराग' से उद्धरण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर : निराला विद्रोही कलाकार हैं—हम अन्यत्र निवेदन कर चुके हैं कि निराला स्वभावतः विद्रोही हैं। उन्होंने जीवन, साहित्य एवं समाज की भाँति कला के क्षेत्र में भी रूढ़ियों एवं परम्पराओं को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भाषा, छन्द शैली—प्रत्येक क्षेत्र में मौलिकता, नवीनता का समावेश करने का प्रयत्न किया है। उनका यह विद्रोह सोद्देश्य है अथवा केवल विद्रोह के लिए विद्रोह है, यह एक विवादास्पद प्रश्न है।

निराला प्रतिनिधि छायावादी कलाकार हैं—भावपक्ष और कलापक्ष—दोनों ही क्षेत्रों में हिन्दी-साहित्य को छायावाद ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। छायावाद के कवियों ने भावपक्ष के क्षेत्र में अनेक नवीन विषयों का समावेश

किया। कलापक्ष के क्षेत्र में उन्होंने नवीन भाषा-शक्ति, मौलिक छन्द-विधान एवं नवीन अलंकार-शैली को जन्म दिया। निराला की भाषा-शैली छायावाद के समस्त गुणों से युक्त है, वह छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। छायावाद के कलापक्ष को ध्यान में रख कर ही हम निराला की भाषा-शैली का अध्ययन करते हैं।

निराला की भाषा (छायावादी भाषा के गुणों से युक्त है)—छायावादी कविता की भाषा की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं—कोमलता, शब्दों की मधुर योजना भाषा का लाक्षणिक प्रयोग, संगीतात्मकता, चित्रात्मकता, प्रकृतिगत प्रतीकों की प्रचुरता तथा रूढ़ियों का विरोध। निराला की भाषा में ये समस्त विशेषताएँ पाई जाती हैं; तथा—

कोमलता—भाषा को कोमलता प्रदान करने के लिए निराला ने अँगरेजी और बँगला की कविता-पद्धतियों को अपनाया है। स्वर्णमय, स्वप्निल, कनक प्रभाव, मुस्कान, छल-छल कल-कल, छलना, कुहकिनी आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा निराला ने अपनी भाषा को कोमलता प्रदान की है; यथा—

कहाँ कनक-कोरों के नीरव
अश्रु कणों में भर मुस्कान

तथा— **आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,**
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात।

—जुही की कली

शब्दों की मधुर योजना—निराला ने अन्य छायावादी कवियों की भाँति भाषा को भावानुसारिणी बनाने के लिए शब्दों की मधुर योजना की है; यथा—

जागो जीवन - धनिके !
विश्व-पण्य-प्रिय वणिके !

× × ×

खोलो उषा-पटल निज कर अयि
छविमय, दिन - मणिके !—जागो, जीवन-ध्वनिके

भाषा का लाक्षणिक प्रयोग—निराला की भाषा में लाक्षणिक प्रयोग भरे पड़े हैं।

सङ्गीतात्मकता—छायावादी कवियों की भाँति निराला ने भी तुक के

संगीत को वहिष्कृत-सा कर दिया और उसके स्थान पर लय-संगीत को अपनाया। निराला की कविता लय-संगीतमय भाषा का अप्रतिम उदाहरण है—

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे —सन्ध्या–सुन्दरी

निराला को संगीत का अच्छा ज्ञान था। उनकी यह विशेषता पग-पग पर अपनी झलक दिखाती चलती है; यथा—'नील जलधि जल, नील नयन, नील पलक, भग्न तनु रुग्न मन' आदि गीत इसके सुन्दर उदाहरण हैं। एक उदाहरण देखिए—

ऊर्ध्व चन्द्र, अधर चन्द
माझ मान मेघ मन्द्र

चित्रात्मकता—निराला शब्दों के बल पर भाव-चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। उपर्युक्त उद्धरण में सन्ध्या-सुन्दरी का सुन्दर भाव-चित्र प्रस्तुत है। और भी देखिए—

देकर अन्तिम कर रवि गये अपर पार,
श्रमित-चरण लौटे गृहिजन निज-निज द्वार

—रवि गए अपर पार

प्रकृतिगत प्रतीकों ती प्रचुरता—छायावादी कवियों ने प्रकृति का प्रयोग भाव और कला दोनों ही क्षेत्रों में पूर्ण कुशलता के साथ किया है। निराला ने प्रकृतिगत प्रतीकों के द्वारा अपनी अभिव्यंजना को शक्ति एवं प्रभावोत्पादकता प्रदान की है; यथा—

वहाँ नयनों में केवल प्रात
चन्द्रज्योत्स्ना ही केवल गात
रेणु छाये ही रहते पात
मंद ही बहती सदा बयार।

यहाँ 'प्रातः', चन्द्र ज्योत्स्ना' और 'रेणु' क्रमशः स्फूर्ति, शान्ति और शीतलता के प्रतीक हैं।

रूढ़ियों के प्रति विद्रोह—छायावादी कवियों की भाँति निराला ने भाषा को केवल भावाभिव्यक्ति का साधन माना, इसलिए उन्होंने भावों की सहज अभिव्यक्ति के लिए व्याकरण के नियमों एवं छन्द के बन्धनों की उपेक्षा की और नवीन शैली पर भावाभिव्यक्ति की। छन्द एवं अलंकार के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

निराला की भाषा की निजी विशेषताएँ—हम अन्यत्र स्पष्ट कर चुके हैं कि 'राग-विराग' में छायावाद एवं प्रगतिवाद इन दो युगों से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। इनकी भाषा में दोनों युगों की विशेषताओं का सफल निर्वाह दिखाई देता है।

क्लिष्ट और सरल भाषा का प्रयोग—निराला की भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली है, जिसमें तत्सम शब्दों की बहुलता है। तत्सम शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से इनकी भाषा के दो रूप हैं—सरल और क्लिष्ट। क्लिष्ट भाषा के अन्तर्गत संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग के अतिरिक्त समास-पद्धति के दर्शन होते हैं—'राम की शक्ति पूजा' की भाषा इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

निराला ने जहाँ सरल भाषा का प्रयोग किया है, वहाँ भाषा इतनी सरल है कि पाठक सहज ही उसका अर्थ समझ लेता है। ऐसी भाषा इनके प्रगतिवादी काव्य में अधिक मिलती है; यथा—

> **वह आता !**
> **दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।**

अत्यन्त उच्च एवं अति सामान्य का एक साथ निर्वाह—निराला की अनेक कविताओं में अत्यन्त उच्च कोटि का शब्द-विन्यास मिलता है, परन्तु विशेषता यह है कि उसी के साथ अत्यन्त सामान्य प्रयोग भी मिलते हैं। यह गुण है अथवा दोष है, यह विवाद का विषय है। 'भिक्षुक सदृश कविताओं में अपरिष्कृत भाषा का प्रयोग है। 'जुही की कली', 'तरंगों के प्रति' आदि कविताओं में शिथिलता खोजने पर भी नहीं मिलती है।

बौद्धिक चिन्तन के अवसरों पर निराला की भाषा गद्य के एक दम निकट पहुँच गई है—'कैसे हुई हार तेरी निराकार'—'कठिन यह संसार, कैसे विनिस्तार' शीर्षक आदि कविताएँ इसी प्रकार की हैं।

सामान्य शब्दावली में असामान्य पदों का प्रयोग—यह प्रवृत्ति उपर्युक्त प्रवृत्ति के ठीक विपरीत है। 'स्मृति' नामक कविता इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है—

तिमिर ही तिमिर रहा कर पार
लक्ष-वक्षस्थलार्गलित द्वार।

कई स्थलों पर निराला ने रीतिकाल के कवियों की तरह शब्दों के साथ खिलवाड़ करके शब्दालंकार का चमत्कार भी प्रस्तुत किया है उनकी कविता 'ताककमसिनवारि' ऐसी ही एक रचना है। इसका अर्थ करना पहेली बुझाना है।

समस्त पद-विधान का आकर्षण—निराला में रूपविधायिनी शब्दकला के स्थान पर थोड़े में बहुत कहने का प्रयत्न अधिक है। पदावली की घनता को उन्होंने अपने अर्थ सौरम्य का साधन बनाया है। अतः ऐसे स्थलों पर अर्थ करने में कठिनाई पड़ती है। यह प्रवृत्ति पंत और महादेवी में भी है, परन्तु निराला में अपेक्षाकृत अधिक है। एक उदाहरण देखिए—

अखिल पल के स्रोत, जल-जग
गगन, घन-घन धार रे कह
कौन तम के पार (रे कह)

—कौन तम के पार रे कह

लोकगीतों-जैसी भाषा—निराला के अनेक गीतों की भाषा लोकगीतों की-सी भाषा है। कहीं-कहीं निराला ने कजली व गजल भी लिखी हैं। इन स्थलों पर निराला ने अरबी-फारसी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है।

भाषा की विशेषताएँ—

(१) छन्द के समान ही निराला ने भाषा के क्षेत्र में विभिन्न नवीन प्रयोग किए हैं।

(२) भाषा पर निराला का पूर्ण अधिकार है। उनकी कविताओं की भाषा में प्रायः संस्कृत शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(३) 'राग-विराग' के अन्तर्गत हमको निराला की भाषा के चार प्रमुख रूप मिलते हैं—

(क) दीर्घ समास-प्रधान भाषा—राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, बुद्ध के प्रति आदि।

(ख) सरल व्यावहारिक भाषा—भिक्षुक, शिवाजी का पत्र, वह तोड़ती पत्थर इत्यादि ।

(ग) सुबोध परन्तु सौष्ठव प्रधान भाषा—जुही की कली, सन्ध्या सुन्दरी, बादल राग, जागो फिर एक बार आदि ।

(घ) अलंकृत कोमल भाषा—यमुना के प्रति, प्रेयसी आदि ।

मौलिक छन्द-विधान—मुक्त और तुकान्त दोनों ही प्रकार के छन्द प्रयुक्त हैं ।

मुक्त छन्द निराला की देन है—निराला ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए जिस छन्द को प्रमुखतया चुना, उसे मुक्त छन्द कहा जाता है । निराला ने मुक्त छन्द का निर्भय प्रयोग किया है । हिन्दी साहित्य को उनकी यही मौलिक देन है । 'मुक्त छन्द' की महत्ता के सम्बन्ध में निराला ने लिखा है—"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है । मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना ।" इस सम्बन्ध में निराला के प्रशंसक आलोचक डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का कथन द्रष्टव्य है—"कवि के अनुसार नियमों का मानना गुलामी का चिह्न है, किन्तु स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक भी 'परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई' की स्थिति में नहीं होते × ×। शक्तिपूर्ण काव्य के लिए पौरुष, साहस, उत्साह, जगाने के लिए निश्चित रूप से मुक्त छन्द सफल साधन है, परन्तु मसृण भावनाओं की व्यंजना गीतियों में ही अधिक सफलता से व्यक्त हो सकी है, स्वयं गीतियों के गीत इसके प्रमाण हैं ।"

परिमल की भूमिका में निराला ने 'मुक्त छन्द' के विषय में बहुत कुछ लिखा है । उनके कथन का सारांश यह है कि मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है । इस कथन के समर्थन में निराला ने 'जुही की कली' की आरम्भिक पंक्तियाँ उद्धृत की हैं और विवेचना प्रस्तुत की है; यथा—

विजन-वन बल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न अमर-कोमल तनु-तरुणी
जुही की कली
दृग बन्द किए—शिथिल पत्रांक में ।

निराला लिखते हैं कि, "यहाँ 'सोती थी सुहाग भरी' आठ अक्षरों का एक छन्द आप ही आप बन गया है। तमाम लड़ियों की गति कवित्त-छन्द की तरह है।" निराला का मत है कि हिन्दी में मुक्त छन्द कवित्त-छन्द की बुनियाद पर सफल हो सकता है। इसका कारण उन्हीं के शब्दों में यह है 'कि "मुक्त छन्द अपनी विषम गति द्वारा ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है, जैसे एक ही अनन्त महा समुद्र के हृदय की सब छोटी-बड़ी तरंगें हों, दूर प्रसारित दृष्टि में एकाकार, एक ही गीत में उठती और गिरती हुई।"

निराला तो काव्य का विकास छन्द के बन्धन से मुक्ति की स्थिति में मानते हैं, जबकि अन्य लोग इसके घोर विरोधी हैं। इन लोगों ने मुक्त छंद को खंड छंद, केंचुआ छंद, कंगारू छंद, रबड़ छंद आदि नाम दिए हैं। जो भी हो, सारांश यह है कि यद्यपि मुक्त छंद में किसी नियम-पालन की अपेक्षा नहीं है, तथापि प्रवाह उसका अनिवार्य धर्म है; जो निराला के काव्य में सहज भाव से उपलब्ध है—

फिर क्या था ? पवन
उपवन-सर-सरित गगन गिरि-कानन
कुंज लता-पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ। —जुही की कली

यहाँ 'पवन' से लेकर 'कानन' तक की अधिकतर इकहरे वर्णों वाली पंक्ति एक साँस में पढ़ी जा सकती है। लगता है जैसे पवन बे-रोक-टोक बढ़ रहा हो, किन्तु तीसरी पंक्ति में लघु-गुरु वर्णों की योजना और 'कुंज' तथा 'पुंज' के संयुक्ताक्षर मानो पवन के मार्ग में अटकाव बन कर अड़े हैं कि उसे झाड़ी-झुर-मुटों से उलझ-उलझ कर आगे बढ़ना पड़ रहा हो और 'पहुँचा' का आकार तो जैसे सारी क्रिया की समाप्ति पर अपेक्षित विराम-स्थल की सूचना देता है।

तुकान्त छन्द का प्रयोग—मुक्त छन्द के अतिरिक्त निराला ने तुकान्त कविताएँ भी लिखी हैं। 'राग-विराग' के अन्तर्गत इस प्रकार की कई कविताएँ संकलित हैं।

भारति जय विजय करे
कनक-शस्त्र-कमल धरे !
× × ×

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार
शतमुख शतरव-मुखरे । —भारती वन्दना

तथा— खेले कुश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर ऊपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित—
द्युति ने क्षमा माँगी । —यामिनी जागी

सारांश यह है कि निराला ने तुकान्त और अतुकान्त दोनों ही प्रकार की कविताएँ लिखी हैं और दोनों प्रकार की रचनाओं में उनको सफलता मिली है। छन्द-विधान के ऊपर निराला को पूर्ण अधिकार प्राप्त है। ।

अलंकार योजना—अलंकार तीन प्रकार के होते हैं—(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार तथा (४) उभयालंकार (जहाँ शब्द तथा अर्थ दोनों का चमत्कार होता है, वहाँ उभयालंकार होता है।) निराला-प्रणीत काव्य में तीनों प्रकार के अलंकारों का समावेश पाया जाता है। यह समावेश सर्वथा सहज-स्वाभाविक है।

शब्दालंकार—निराला की कविता में अनुप्रास का—विशेषकर छेकानुप्रास एवं वृत्यानुप्रास का प्रयोग प्रायः सर्वत्र पाया जाता है; यथा—

कम्पित उनके करुण करों में,
तारक-तारों की सी तान,
बता बता अपने अतीत का,
क्या तू भी गाती है गान।

इस पद में तीन शब्दालंकार हैं—'करुण-करों' में छेकानुप्रास, 'तारक-तारों तान' में वृत्यानुप्रास तथा 'बता-बता' में वीप्सा। निम्नलिखित पंक्तियों में 'पुनरुक्तिप्रकाश' और 'छेकानुप्रास' इन दो अलंकारों का सौष्ठव देखिए—

झूम झूम मृदु गरज-गरज घनघोर,
राग अमर अम्बर पर निज रोर।

अर्थालंकार—निराला ने उपमा, रूपक, सन्देह आदि अलंकारों का बहुत ही सफल प्रयोग किया है; यथा—

किसके गूढ़ मर्म में निश्चित,
शशि-सा मुख ज्योत्स्ना-सा गात ।

यहाँ 'उपमा' अलंकार है । सन्देह अलंकार का यह सफल स्वाभाविक प्रयोग देखिए—

तू किसी के चित्त की है कालिमा,
या किसी कमनीय की कमनीयता,
या किसी दुखहीन की है आह तू,
या किसी तरु की तरुण-बनिता लता !

पाश्चात्य प्रभाव के कारण छायावादी कवियों ने मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, अमूर्तीकरण आदि कई अलंकारों को ग्रहण किया और उनके सफल प्रयोग किए । निराला के काव्य में भी इनके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं ।

मानवीकरण—निराला ने प्रकृति की वस्तुओं पर चेतना का आरोप करके उनमें मानवीय भावनाओं का संस्पर्श प्राप्त किया है । जुही की कली, सन्ध्या सुन्दरी, बादल, प्रपात के प्रति, तरङ्गों के प्रति आदि कविताएँ इसके उदाहरण हैं; यथा—

चौंक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्रमुखी हँसी, खिली,
खेल रङ्ग प्यारे सङ्ग । —जुही की कली

विशेषण विपर्यय—यमुने ! तेरी इन लहरों में,
किन अधरों की आकुल तान ।
पथिक प्रिया-सी जगा रहे,
उस अतीत के गौरव गान । —यमुना के प्रति

अमूर्तीकरण—किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह । —सन्ध्या सुन्दरी

ध्वन्यात्मकता—निराला के काव्य में ध्वनि-चित्रण या नाद-व्यंजना के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं; यथा—

गरजो, हे मन्द्र वज्र-स्वर,
थर्राये भूधर-भूधर,

झर-झर झर-झर धारा झर,

पल्लव पल्लव पर जीवन । —गर्जन से भर दो वन

एक ही साथ कई अलंकारों का यह सफल प्रयोग द्रष्टव्य है—

झर-झर रव भूधर का मधुर प्रपात,
बधिर विश्व के कानों में,
भरते हो अपना राग,
मुक्त शिशु, पुनः पुनः एक ही राग अनुराग ।

इन पंक्तियों में नाद-व्यंजना के अतिरिक्त 'झर-झर' तथा 'पुनः-पुनः' में 'पुनरुक्ति प्रकाश' अलंकार है । 'बधिर विश्व' में विशेषण विपर्यय है तथा 'राग अनुराग' में सभंगपद यमक है । अस्तु ।

अतः हम कह सकते हैं कि निराला के काव्य में हमको अलंकार-योजना का सबल और समृद्ध रूप दिखाई देता है । इस अलंकार-योजना के द्वारा भाषा की शक्ति में वृद्धि और भावों को उत्कर्ष की प्राप्ति हुई है ।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निराला की भाषा-शैली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार ठहरती हैं—

(१) निराला की शब्द-योजना भावानुसारिणी है । यदि प्रसाद गुण की अभिव्यक्ति के लिए इन्होंने कोमल एवं सरल शब्दावली का प्रयोग किया है तो ओजगुण को व्यक्त करने के लिए शक्तिशाली और समासयुक्त शब्दावली प्रयुक्त की है ।

(२) निराला की भाषा के मुख्यतः चार रूप हैं—दीर्घ समास-प्रधान, सरल व्यावहारिक, सुबोध परन्तु सौष्ठव प्रधान तथा अलंकृत कोमल भाषा । कई कविताओं में भाषा के विभिन्न रूप एक साथ मिलते हैं ।

(३) निराला की भाषा में एकरसता का अभाव है । यह उसका गुण है परन्तु दोष यह है कि भावानुकूल भाषा ढालने में अधिक उच्छृंखलता से काम लिया गया है । विशेषकर ज्ञान, शक्ति और उत्साह के प्रदर्शन में । 'राम की शक्ति पूजा' इसका प्रमाण है ।

(४) निराला की भाषा पर संस्कृत और बँगला का विशेष प्रभाव है ।

(५) निराला ने कहीं-कहीं शब्दों के प्रयोग मनमाने अर्थों में किए हैं । अर्थात् उन्होंने कतिपय शब्दों को प्रचलित अर्थों में प्रयुक्त नहीं किया है ।

समग्र रूप में निराला की भाषा-शैली मौलिक एवं भावाभिव्यंजना में सर्वथा सफल है।

(१०) निराला की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ

प्रश्न २४—'राग-विराग' में संकलित महत्त्वपूर्ण कविताओं का साहित्यिक परिचय दीजिए।

अथवा

प्रश्न २५—'जुही की कली', 'सरोज-स्मृति', 'वनबेला' और 'सन्ध्या-सुन्दरी' कविताओं का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उत्तर : 'राग-विराग' में संगृहीत कविताओं में ये चार कविताएँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—जुही की कली, सरोज-स्मृति, वनवेला और संध्या-सुन्दरी। इनका सामान्य साहित्यिक परिचय इस प्रकार है—

जुही की कली

सामान्य परिचय—'जुही की कली' की रचना सन् १९१६ में हुई थी। यह निराला की आरम्भिक कविताओं में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कविता है। निराला ने इसको अपनी पहली रचना घोषित किया है। 'जुही की कली' निराला जी की सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता है। वह भी प्रसिद्ध है कि स्वर्गीय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस कविता को 'सरस्वती' में प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया था।

हलचल मचा देने वाली कविता—डा० रामविलास शर्मा प्रभृति निराला प्रशंसकों का कहना है कि इस कविता के काव्य सौष्ठव को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि निराला जी ने इस कविता को कई बार सँवारा होगा 'मतवाला' के शुरू के अंकों में जिस तरह की कविताएँ निकली हैं, उन्हें देख कर सहसा विश्वास नहीं होता कि ऐसी पुष्ट और पूर्ण कविता उन्होंने एकाएक लिख डाली होगी। जो भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह कवि की प्रारम्भिक कविताओं में से एक ऐसी कविता है कि जिसने एक समय अपने नये रूप-विधान, नई शैली एवं नवीन भावना द्वारा हिन्दी संसार में हलचल मचा दी थी।

सृजन की परिस्थितियाँ—'मेरी पहली रचना' शीर्षक निबन्ध में निराला ने उन परिस्थियों का वर्णन किया है, जिनमें यह कविता लिखी गई थी। पत्नी मनोहरा देवी के देहावसान के उपरान्त कवि निराला अपने स्वभावानुसार एक रात श्मशान में घूम रहे थे। चाँदनी बिखर रही थी। कवि वियोग-व्यथा

से दुःखी थे। उसी समय जुही की मादक गंध ने उन्हें अभिभूत कर लिया। उन्होंने पत्र के पर्यंक पर सोती हुई जुही की कली को देखा। कल्पना पंख लगा कर उड़ने लगी। बस, कवि ने यह कविता लिख डाली। कुछ लोगों का कहना है कि निराला को इस कविता की प्रेरणा उस समय मिली थी, जिस समय उनकी पत्नी के शव को चिता पर रखा गया था। जो भी हो, कविता की 'जुही की कली' निराला की पत्नी ही है जिसके वियोग में वह तड़प उठे थे। मलयानिल वह स्वयं हैं। पवन उसके गोरे कपोलों को मसल डालता है। कली चौंक कर चकित चितवन से चारों ओर देखती रह जाती है। और फिर—

> हेर प्यारे को सेज पास,
> नम्रमुखी हँसी - खिली,
> खेल रंग प्यारे संग।

एक रोमाण्टिक कविता—'जुही की कली' में कवि ने एक ऐसे मनोरम सौन्दर्य-स्वप्न को अंकित किया है जिसे रोमांटिक कवि संसार के अस्थायी सौन्दर्य एवं प्रेम से ऊब कर किया करते हैं। अँगरेजी कवि शैली ने अपनी कविता 'नाइटेंगिल' में तथा कीट्स ने 'स्काइलार्च' में ऐसे ही मादक-स्वप्न की कल्पना की है। इस कविता में लौकिक एवं आध्यात्मिक—दोनों ही पक्षों के श्रृंगार की संभावना की जा सकती है। यह चाहे लौकिक श्रृंगार की कविता हो, चाहे आध्यात्मिक श्रृंगार की कविता हो, प्रत्येक दृष्टि से यह मादक और मनोरम है।

आध्यात्मिक रूपक और लौकिक श्रृंगार का समन्वय—कवि की चिन्तन-पद्धति के अनुसार 'जुही की कली' एक आध्यात्मिक रूपक है। कविता के दार्शनिक पक्ष की व्याख्या करते हुए निराला ने लिखा था—"'जुही की कली' में जो कविता है, कला है, वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य में उतरी हुई तसवीर है।....क्योंकि मन के अन्धकार के बाद है जागरण, आत्म-परिचय, प्रिय-साक्षात्कार, मन का प्रकाश।....कली सोते से जगी हुई, प्रिय से मिली हुई, खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप में, सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या सी लगती है या नहीं। रचना में केवल अलंकार रस या ध्वनि नहीं है, उनका समन्वय है।" सारांश यह है कि कवि निराला ने इस रूपक के द्वारा आत्मा के परमात्मविलास को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है।

दूसरी ओर 'जुही की कली' में स्वस्थ एवं मांसल सौन्दर्य मिलता है। उसमें चित्रित प्रकृति के चित्र सर्वथा स्पृहणीय हैं; यथा—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से,
पल्लव-पर्यंक पर सोती शेफालिके।

इन प्रकार इस कविता को आध्यात्मिक रूपक के पक्ष में भी घटाया जा सकता है और उसे स्वस्थ लौकिक शृङ्गार की श्रेष्ठ कृति मानकर उसका रसास्वादन भी किया जा सकता है।

काव्य-सौष्ठव—इस कविता के काव्यासौष्ठव के सम्बन्ध में डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का यह कथन पर्याप्त होना चाहिए—"जुही की कली हिन्दी-काव्य में एक प्रकाश-स्तम्भ है। मुक्त छन्द ललित भावों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति और एक अव्यक्त और संकेतात्मकता के कारण यह कविता आचार-प्रधान नियमानुशासित, इतिवृत्त-प्रधान द्विवेदी-युगीन काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में आती है।"

वनबेला

कविता का विषय स्वयं निराला हैं—'वनबेला' कविता की रचना सन् १९३७ में हुई। इसमें कवि स्वयं ही कविता का विषय है। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में, "इस कविता में साहित्यिक को अपुरस्कृत साहित्य-सेवा का रूपक बाँधा गया है। कवि वनबेला है। एकान्त निर्जन में वनबेला ने रूप-सौन्दर्य और सुगन्ध में जो सहस्र-सहस्र छन्द उठाये हैं, उन्हें कवि के काव्य में सहस्रावधि चमत्कार समझा जा सकता है।

वनबेला कवि के हीन भाव की कहानी है—'वनबेला' के आरम्भ में पृथ्वी और सूर्य के प्रणय-व्यापार का वर्णन है। धूप से पीड़ित और संघर्षों से शिथिल कवि सोचता चला जा रहा है—

होगा व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार।

और बस कवि हीनत्व भाव द्वारा आक्रान्त हो उठता है—

मैं भी होता
यदि राजपुत्र—मैं क्यों न सदा कलंक ढोता
वे होते-जितने विद्याधर-मेरे अनुचर।

× × ×

सम्मिलित कंठ से गाते मेरी कीर्ति अमर

इन्हीं पंक्तियों में वह राजनीतिक नेताओं पर व्यंग्य कसने लगता है।

कवि मानसिक मन्थन से क्लान्त हो उठता है। प्रेयसी की अलकों से आती हुई सुगन्ध के समान वनबेला की सुगन्ध उसको तृप्ति प्रदान करती हुई प्रतीत होती है। वह वनबेला के समीप जाता है। परन्तु वह उसके पराजय और ईर्ष्या के भावों की कलुषता का संकेत करती हुई उसे दूर ही रहने को कहती है।

राजनीति की साधना की अपेक्षा साहित्य की साधना की श्रेष्ठता का प्रतिपादन—कवि साहित्य और राजनीति की साधनाओं की तुलना करता है। निर्जन वन में खिलने वाली बेला की ओर कोई नहीं देखता है, यद्यपि वह सुगन्ध विकीर्ण करती है। 'बेला' कवि को नये जीवन-तत्त्व का संदेश देती है—

केवल आपा खोया, खेला,
इस जीवन में।

साहित्य अपने आप तपता है। राजनीति में बाहरी चमक-दमक है। इसी से राजनीति की प्रसिद्धि है। साहित्य में राजनीति जैसी विषमता अथवा असमानता नहीं है; यथा—

चमत्कार मधुर बाहरी वस्तुओं को लेकर,
त्यों-त्यों आत्मा की निधि पावन बनती पत्थर।

इन शब्दों को सुनकर कवि सामाजिक विषमता से उत्पन्न अपने मन की क्लान्ति को भूल जाता है।

वनबेला का संदेश—एकान्त निर्जन वन में खिलने वाली वनबेला कवि को संघर्षों में खिले रहने की प्रेरणा प्रदान करती हुई प्रतीत होती है। बेला के जीवन की सार्थकता को कवि इस प्रकार अभिव्यक्त करता है—

नाचती वृन्त पर तुम, उन पर।
होता जग उपल प्रहार प्रखर॥

इसी तप, पर-सेवा और बलिदान को कवि श्रेष्ठ जीवन मान लेता है। साहित्य का भी यही प्रकृत पथ है। कवि अनुभव करता है—

पर ज्ञान जहाँ,
देखन बड़े-छोटे असमान समान वहाँ।

डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "बेला की यही सार्थकता कवि के जीवन में उसकी कविता बन जाती है।"

निष्कर्ष—इस कविता का रचना-काल प्रगतिवाद के युग के की अनेकानेक है। कवि प्राकृतिक उपदानों से प्रेरणा प्राप्त करके अपने हीनत्व भाव-मल' में इस प्राप्त करता है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की कविताएँ एक युग कनि, यमुना करती हैं। इसका शिल्प बहुत कुछ छायावादी है। परन्तु व्यंजना सर्वथा नवीन।

सरोज-स्मृति

य

एक शोक-गीत—इस कविता का रचना-काल सन् १९३५ है। इसकी रचना निराला जी ने अपनी एक मात्र पुत्री सरोज की मृत्यु के अवसर पर की थी। यह एक उच्चकोटि का शोक-गीत है।

सरोज की दुःख-भरी जीवन-गाथा इसका वर्ण्य-विषय है—यह कविता किन परिस्थितियों में लिखी गई। इसका वर्णन डा० रामविलास शर्मा ने एक प्रत्यक्षदर्शी के रूप में करते हुए लिखा है—"एक दिन नीचे से पोस्टकार्ड उठाकर ऊपर वापस आए और इतना ही कहा—'सरोज नहीं रही'। दुःख से उनका चेहरा स्याह पड़ गया था। उसे सहन करने के प्रयास में वे कुछ देर तक कमरे में टहलते रहे। इसके बाद अचानक घर से निकल कर घूमने चले गये। दो दिन तक सरोज की कोई चर्चा नहीं हुई। इस बीच में उनका चित्त स्थिर हो गया। कविता में उस समय का दुख ही नहीं, एक आलम्बन पाकर सोलह साल पहले की समस्त वेदना उमड़ आई।" जब सरोज केवल सवा साल की थी, तब उसकी माता स्वर्गवासिनी हुई। कवि के संघर्षपूर्ण जीवन के साथ-साथ सरोज नानी की छत्र-छाया में बड़ी हुई। उसके भोले मुँह की ओर देखकर ही निराला ने दूसरा विवाह नहीं किया। विवाह योग्य होने पर कवि ने समाज की चिन्ता न करके उसका विवाह पं० शिव शेखर द्विवेदी के साथ कर दिया। विवाह के कुछ समय उपरान्त सरोज भयंकर रूप से बीमार हुई और काल-कवलित हो गई। आर्थिक सीमाओं के कारण निराला पुत्री की प्राण-रक्षा न कर सके—ऐसी उनकी धारणा रही। पुत्री की मृत्यु ने निराला को वेदना-विह्वल बना दिया और उनकी वही सघन वेदना 'सरोज-स्मृति' के रूप में हिन्दी-साहित्य को प्राप्त हुई।

सरोज की मृत्यु के आघात ने निराला को तोड़ दिया। निराला स्वभावतः एक उद्धत एवं उत्साही वीर थे। वह नियति को भी चुनौती देने वाले थे—

खंडित करने को भाग्य अंक,
देखा भविष्य के प्रति अशंक

वे ही निराला पुत्री की मृत्यु के अवसर पर जर्जर हो उठे। उनका वेदना-जर्जर हृदय पुकार उठता है—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज जो नहीं कही।

कविता का आरम्भ ही इस प्रकार होता है—

धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका।

इस कविता में कवि उन समस्त संघर्षों का वर्णन कर देता है, जो उसने साहित्यिक के रूप में पग-पग पर झेले थे। कहने का अभिप्राय यह है कि इस कविता में कवि के अनेक कटु-तिक्त यथार्थ तथ्यों की अभिव्यक्ति हुई है। हमारे विचार से कवि निराला बिना जाने ही जीवन के एक कठोर सत्य की अभिव्यक्ति कर गए हैं कि—सन्तान के शोक से बढ़ कर इस जीवन का कोई आघात नहीं हो सकता है। जिसको यह चोट न लगी हो, वह वीर, धीर और महाप्राण होने का दम्भ न करे। यदि सरोज की मृत्यु का आघात निराला को न लगा होता, तो वह कदाचित् कहीं अधिक उदार एवं उदात्त कलाकार होते। सिद्धान्ततः दार्शनिक होते हुए भी व्यवहार में वह अनात्मवादी बन गये; अन्यथा अर्थाभाव को वह मृत्यु का हेतु क्योंकर मानते ?

करुणा और सहानुभूति का संदेश—'सरोज-स्मृति' के माध्यम से निराला यथार्थ जीवन की एक कटु अनुभूति हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। वह मस्तक झुकाकर अपने कर्म पर वज्रपात सहने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। शीत से भ्रष्ट होते हुए शतदल के समान वह अपने विफल कार्यों से कन्या का तर्पण करते हैं—

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण,
कर, करता मैं तेरा तर्पण।

यह एक ऐसा महानाटक है, जो पाठक के हृदय में करुणा और सहानुभूति का संचार करता है।

सन्ध्या-सुन्दरी

यह प्रकृति-काव्य है—'सन्ध्या-सुन्दरी' कविता का रचना-काल सन् १९२१ है, अर्थात् यह कविता छायावाद के युग की देन है। यह प्रकृति-काव्य का एक

श्रेष्ठ उदाहरण है। उन दिनों छायावाद के कवि इस प्रकार की अनेकानेक प्रकृति-विषयक रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे थे। 'निराला' ने भी 'परिमल' में इस प्रकार की प्रकृति-सम्बन्धी कई कविताएँ प्रस्तुत की थीं; यथा—प्रभाती, यमुना के प्रति, तरंगों के प्रति, प्रपात के प्रति, वसन्त-समीर, बादल राग इत्यादि।

रहस्यात्मक झलक—छायावादी कवि प्रकृति के कण-कण में किसी रहस्य की अनुभूति करते थे। 'सन्ध्या-सुन्दरी' में हमें प्रकृति के स्वस्थ नैसर्गिक रूप के साथ-साथ रूपकों के पीछे एक रहस्यमयी शक्ति की झलक भी मिलती है—

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप, चुप, चुप"
है गूँज रहा सब कहीं—
व्योम-मण्डल में—जगती तल में—

सन्ध्या एक परी के रूप में चित्रित है—छायावादी कवि प्रकृति पर चेतना का आरोप करते थे। वह मानवीकरण के द्वारा प्रकृति-वर्णन करते थे। वह नारी को प्रकृति में व्याप्त देखते थे। उनके लिए प्रकृति एक प्रेयसी थी, जो उन्हें अपने अमूर्त आकर्षण द्वारा पग-पग पर प्रेरणा प्रदान करती थी। इस कविता में निराला ने सन्ध्या को एक परी के रूप में चित्रित किया है जो धीरे-धीरे आसमान से नीचे उतरती चली आ रही है। तिमिर उसका अंचल है, सुन्दरी की गम्भीर मुद्रा सन्ध्याकालीन प्रकृति की निस्तब्धता को ध्वनित करती है।

उसकी गति निस्तब्ध है। न तो नूपुरों की रुनझुन है और न अनुराग-राग का आलाप ही सुनाई पड़ता है। वातावरण में चतुर्दिक 'चुप-चुप-चुप' शब्द गूँज रहा है, मानो वह सम्पूर्ण सृष्टि को चुप रहने के लिए इंगित कर रहा हो—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
× × ×
सिर्फ एक अव्यक्त-शब्द-सा चुप चुप चुप
है गूँज रहा सब कहीं—

और इस शब्द की व्यापकता सृष्टि के कोने-कोने में छा रही है—

क्षिति में, जल में, नभ में, अनिल-अनल में

सिर्फ एक अव्यक्त-शब्द-सा चुप चुप चुप
है गूँज रहा सब कहीं।

काव्य-सौष्ठव—चित्रात्मकता इस कविता की कला की विशेषता है। चित्र और वातावरण की सूक्ष्म एवं कलात्मक सफल अभिव्यक्ति इस कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। संकेतों के द्वारा संध्या-सुन्दरी के रूप का निर्माण किया गया है, साथ ही वातावरण के सौन्दर्य का पूर्ण मानसिक चित्र पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जाता है। शब्दों में चित्रकला को साकार कर देने की कवि की यह क्षमता प्रशंसनीय है।

(११) निराला की गीति-कला

प्रश्न २६—'राग-विराग' में संकलित कविताओं के आधार पर निराला की 'गीति-कला' पर प्रकाश डालिए। अथवा

प्रश्न २७—"निराला-प्रणीत 'राग-विराग' गीतिकाव्य की दृष्टि से कवि की प्रतिनिधि रचना है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : गीति-काव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है—गीति-काव्य के बीज हमको वेदों में उपलब्ध होते हैं। सामवेद के संगीतपूर्ण स्तोत्र गीतिकाव्य के प्राचीनतम उदाहरण हैं। इसके पश्चात् हमको गीतिकाव्य की एक अविच्छिन्न परम्परा मिलती है। वैदिक, बौद्ध, सिद्धों, नाथों, सन्तों, भक्तों—सभी के द्वारा प्रणीत काव्य-ग्रन्थों में हमको यह परम्परा मिलती है।

हिन्दी में भी यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अमीर खुसरो एवं विद्यापति के पदों से हमको गीतिकाव्य की एक सुनिश्चित परम्परा मिलती है। आजकल प्रचलित लोकगीतों में हमको इस परम्परा के अन्तिम रूप के दर्शन होते हैं।

छायावादी युग के गीत अँगरेजी साहित्य की देन हैं—परम्परा की दृष्टि से हम आधुनिक गीत-काव्य को संस्कृत के गीति-काव्य के साथ भले ही जोड़ दें, परन्तु आधुनिक हिन्दी गीति-परम्परा पर प्राचीन गीति-काव्य का कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता है। यह तो वस्तुतः अँगरेजी-साहित्य की लिरिकल पोयट्री (Lyrical poetry) की देन है अथवा उसका अनुकरण है। डा० नगेन्द्र का कथन द्रष्टव्य है—"यों तो गीति-काव्य हिन्दी में सदा से ही चला आता है। विद्यापति, सूर, मीरा और घनानन्द के भाव-प्रवण पद संसार के गीति-साहित्य में अमर रहेंगे, क्योंकि वे उनके हृदय के उन्मुक्त एवं उन्मत्त गान हैं, परन्तु जिस

गीति-शैली का विकास द्विवेदी युग के पश्चात् हुआ, वह पाश्चात्य लिरिक (Lyric) के ढंग का था।"

गीति-काव्य के आवश्यक तत्त्व—विभिन्न भारतीय और देशी विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से गीति-काव्य की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं और उनके आवश्यक तत्त्वों को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। इन परिभाषाओं के आधार पर हमारे मतानुसार गीतिकाव्य के मुख्य तत्त्व चार ठहरते हैं, यथा—

(१) वैयक्तिकता अथवा आत्माभिव्यक्ति। (२) सङ्गीतात्मकता। (३) भाव-प्रवणता। (४) संक्षिप्तता।

'राग-विराग' के गीतों का वर्गीकरण

विषय के आधार पर—'राग-विराग' में संगृहीत गीत विविध विषयक हैं। निराला ने अनेक विषयों पर गीत लिखे हैं। 'राग-विराग' में प्रायः प्रत्येक प्रकार के गीत उपलब्ध हैं। इन गीतों को निम्नलिखित मुख्य वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

(क) प्रार्थना-परक गीत। (ख) नारी-सौन्दर्य-परक गीत। (ग) प्रकृति-वर्णन-परक गीत। (घ) राष्ट्रीयता-परक गीत।

(क) प्रार्थना परक गीत—जीवन की निराशा और अशेष अवसाद से खिन्न होकर निराला ने अनेक प्रार्थना-परक गीतों की रचना की है। अनेक गीतों में पाठक को द्रवीभूत कर देने की सामर्थ्य है। भारतीय-वन्दना, शरण में जनजननि, दे मैं करूँ वरण, मातृ वन्दना आदि गीत इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

(ख) नारी-सौन्दर्य-परक गीत—छायावादी कवियों ने नारी के सौन्दर्य वर्णन की प्राचीन परम्परा के विरुद्ध भी विद्रोह किया। उन्होंने नारी के बाह्य तथा आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन किया। 'जुही की कली' में स्वच्छन्द प्रेम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले भाव अंकित किये गए हैं। निराला ने अभिजात्य वर्ग की नारी के सौन्दर्य का बहुत कम वर्णन किया है। निम्न वर्ग की नारी की साधारण आँखों में भी उन्हें गहरा आकर्षण दिखाई देता है।

(ग) प्रकृति-परक गीत—अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला ने भी प्रकृति-प्रधान अनेक गीत लिखे हैं। ये गीत दो प्रकार के हैं—एक तो वे गीत जिनमें केवल प्रकृति-चित्रण किया गया है और दूसरे वे जिनमें प्रकृति के रम्य व्यापारों के द्वारा हृदय में उत्पन्न भावनाओं के विविध रूपों का निरूपण किया गया है। 'राग-विराग' में दोनों ही प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं। सन्ध्या-

सुन्दरी, वसन्त आया, बादल आदि कविताओं में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से चित्रण किया गया है; यथा—

अलि, घिर आये घन पावस के।
लख, ये काले-काले बादल,
नील-सिन्धु में खुले कमल-दल,
हरित ज्योति चपला अति चंचल,
सौरभ के रस के।—आये घन पावस के।

निम्नलिखित पंक्तियों में लौकिक शृंगार की अभिव्यक्ति के साथ-साथ अलौकिक भावनाओं को व्यक्त किया गया है, यथा—

विजय-वन-वल्लरी पर,
सोती थी सुहागभरी,
स्नेह-स्वप्न-मग्न-अमल-कोमल-तनु-तरुणी,
जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल पत्रांक में। —जुही की कली

(घ) **राष्ट्रीयता-परक गीत**—छायावाद का युग घोर राष्ट्रीयता का युग था। उन दिनों देश-भक्ति नंगी शमशीर हो रही थी, समस्त देश क्षुब्ध था और स्वतन्त्रता का आन्दोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त था।

निराला के हृदय में देश-प्रेम का अजस्र स्रोत प्रवाहित था। कभी वह अपने अतीत के गौरव का स्मरण करते थे, कभी वर्तमान दुर्दशा पर आँसू बहाते थे और कभी भविष्य की आशा से भर कर जागरण के गीत गाते थे। इतना ही नहीं, वह क्रांति का आह्वान भी करते थे। श्यामा, छत्रपति शिवाजी का पत्र आदि गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

शैली की दृष्टि से वर्गीकरण—शैली की दृष्टि से निराला-प्रणीत 'राग-विराग' में निम्नलिखित प्रकार के गीत पाए जाते हैं—

(१) सम्बोधन गीत (Odes)—उदाहरणार्थ—मैं करूँ वरण, वन्दूँ पद सुन्दर तव, गर्जन से भर दो वन, खंडहर के प्रति।

(२) शोक गीत (Elegy)—'सरोज-स्मृति' इसका उदाहरण है।

(३) आख्यानक गीति (Ballads)—'राम की शक्ति पूजा' इस वर्ग के अन्तर्गत आ सकती है।

(४) पत्र गीति (Epistles)—जैसे छत्रपति शिवाजी का पत्र।

ये शैलियाँ पाश्चात्य काव्य की देन । हिन्दी के लिए नवीन उपहार स्वरूप इन्हें लाने का श्रेय निराला को है

गीति-तत्त्वों की कसौटी पर

वैयक्तिता या आत्माभिव्यक्ति—गीति-काव्य में आत्माभिव्यक्ति की दो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष या परोक्ष विधि। निराला के गीतों में दोनों प्रकार की विधियों का प्रयोग पाया जाता है; उदाहरण के लिए—'सरोज-स्मृति' में निराला ने अपने गहन विषाद को प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त किया है और 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' में उन्होंने अपने उपेक्षित जीवन की कथा कही है। इसी प्रकार वन-बेला, स्वप्न-स्मृति आदि गीतों में निराला अपनी कसक को परोक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि निराला ने अपेक्षाकृत परोक्ष विधि का ही अधिक अवलम्बन किया है।

सङ्गीतात्मकता—निराला संगीत-शास्त्र में निष्णात थे और उन्होंने संगीत को गीति-काव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है। निराला ने प्रत्येक गीत में संगीत की सुष्ठु योजना की है। एक उदाहरण देखिए—

नूपुर के सुर मन्द रहे,
चरण जब न स्वच्छन्द रहे।
उतरी नभ से निर्मल राका,
तुमने जब पहले हँस ताका,
बहुविध प्राणों को झंकृत कर,
बजे छन्द जो बन्द रहे। —नूपुर के सुर मन्द रहे

बता कहाँ अब वह वंशीवट ?
कहाँ गये नटनागर श्याम ?
चल-चरणों का व्याकुल पनघट,
कहाँ आज वह वृन्दा धाम ? —यमुना के प्रति

भाव-प्रवणता—भावों का उच्छलन गीतिकाव्य के प्राण हैं, अर्थात् दुख-सुख की आवेगमयी स्थिति में ही गीत का जन्म होता है।

निराला ने दो प्रकार के गीत लिखे हैं—(१) दार्शनिक, जिनमें चिन्तन

की प्रधानता है; तथा (२) वे गीत जिनमें कवि के हृदय का सहज स्फुरण है। ये गीत पूर्णतः भाव-प्रवण हैं; यथा—

बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु !
पूछेगा सारा गाँव बन्धु !
यह घाट वही जिस पर हँस कर,
वह कभी नहाती थी धँस कर,
आँखें रह जाती थीं फँस कर,
कँपते थे दोनों पाँव बन्धु ! —गीत, अर्चना

इन पंक्तियों में हृदय की सरसता का प्राधान्य है। अतः ये पंक्तियाँ भाव-प्रवणता से सिक्त हैं।

संक्षिप्तता—गीति-काव्य में अनुभूति-खण्डों की मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। संक्षिप्तता इसका गुण है। 'राग-विराग' के कतिपय गीतों को छोड़ कर प्रायः समस्त गीत संक्षिप्त हैं। कुछ गीत तो केवल नौ पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं; उदाहरणार्थ—

पावन करो नयन।
रश्मि, नभ-नील पर,
सतत शत रूप धर,
विश्व छवि में उतर,
लघुकर करो चयन।
प्रतनु शरदिन्दु-वर,
पद्म-जल-बिन्दु पर,
स्वप्न-जागृति सुघर,
दुख-निशि करो शयन। —पावन करो नयन

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'राग-विराग' में निराला की गीति-कला अपने पूर्ण रूप में निखार को प्राप्त करती है और उसमें उनकी गीति-कला का सफल प्रतिनिधित्व पाया जाता है।

(१२) राम की शक्ति पूजा

प्रश्न २८—निराला-रचित 'राम की शक्ति पूजा' नामक कविता का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसकी विवेचना कीजिए। अथवा

प्रश्न २९—'राम की शक्ति पूजा' में निहित निराला के दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
अथवा

प्रश्न ३०—"राम की शक्ति पूजा में व्यक्तिगत भावों की अपेक्षा जातिगत भावों का बाहुल्य है।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
अथवा

प्रश्न ३१—"राम की शक्ति पूजा में निराला की कला की सभी प्रमुख विशेषताएँ सुरक्षित हैं। यह उनकी एक प्रतिनिधि रचना है, जो उनके प्रारम्भ और मध्य अवधि की कला का आदर्श प्रस्तुत करती है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
अथवा

प्रश्न ३२—"राम की शक्ति पूजा में निराला ने शक्ति की मौलिक कल्पना कर विश्व को महान् आशावादी संदेश दिया है।" इस कथन के सम्बन्ध में अपने मत का स्पष्टतः प्रतिपादन कीजिए।

उत्तर : सामान्य-परिचय—'राम की शक्ति पूजा' एक लघु पौराणिक आख्यानक काव्य है। यह चिर-परिचित एवं विश्व-विश्रुत रामायण की कथा पर आधारित है।

इसमें निराला ने बंगाल में प्रसिद्ध राम-रावण-युद्ध सम्बन्धी उस कथा को काव्य का रूप दिया है जिसके अनुसार राम ने रावण के अद्भुत शौर्य से व्याकुल होकर विजय प्राप्त करने के लिए शक्ति की पूजा की थी।

यह कविता व्यक्ति के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, सूक्ष्मता एवं सांकेतिकता के साथ भावनाओं के उत्थान-पतन की दृष्टि से 'तुलसीदास' की कोटि की ही रचना सिद्ध होती है। इसमें भी निराला ने छायावादी शैली का चरम उत्कर्ष दिखाया है।

कथावस्तु का सहज स्वाभाविक विकास—रवि अस्त हो गया है। राम-रावण युद्ध हो रहा है। रावण राम की सेना के दर्प का दलन कर चुका है। राम के भी बाण निष्फल हो रहे हैं। हनुमान को छोड़कर अन्य समस्त सेनानी एवं सेनापति मूर्च्छित पड़े हैं।

दोनों दल अपने-अपने शिविरों को लौट आते हैं। राम के धनुष की प्रत्यंचा ढीली पड़ गई है और उनके दल में उदासी छा रही है। राम को संदेह होने लगता है कि वह युद्ध में विजय प्राप्त करके सीता का उद्धार कर भी पायेंगे अथवा नहीं। अचानक राम के नेत्रों के सम्मुख जनक-वाटिका में होने वाले प्रथम जानकी-मिलन का दृश्य घूम जाता है—"जागी पृथ्वी-तनया-

कुमारिका छवि।" यह दृश्य उनके तन-मन में एक विचित्र परिवर्तन कर देता है। इस सूक्ष्म मनोभाव का वर्णन द्रष्टव्य है—

सिहरा तन क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त।

× × ×

वे आये याद दिव्य शर अगणित मंत्रपूत,
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत।

राम सोच रहे हैं कि शक्ति उनके बाणों को निष्फल करती रही है। इसी समय उनके दैन्य भाव का तिरस्कार-सा करता हुआ रावण अट्टहास कर उठता है। यह सूक्ष्म मनोविश्लेषण सचमुच स्पृहणीय है।

रावण के सम्मुख अपने पराक्रम की हीनता का स्मरण करके राम व्यथित हो उठते हैं। जीवन में पहली बार उनके नेत्रों से आँसू की दो बूदें झर पड़ती हैं। राम का पाद-सेवन करते हुए हनुमान यह देखकर अस्थिर हो उठते हैं। वह उछल कर आकाश में पहुँच जाते हैं। वह शंकर के निवास-स्थान महाकाश को समेट लेना चाहते हैं। प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जाता है। प्रकृति के इस भयंकर प्रलयंकारी रूप का जो वर्णन निराला ने किया है, वह वास्तव में मनोमुग्धकारी है। 'कामायनी' के प्रलय-वर्णन के समान यह वर्णन प्रकृति के कठोर रूप को साकार कर देता है; यथा—

शत घूर्णावर्त, तरंग भंग, उठते पहाड़
जलराशि राशिजल पर चढ़ता खाता पछाड़,

× × ×

शत-वायु-वेग बल डुबा अतल में देश-भाव,
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव।

रावण के इष्टदेव शंकर की प्रेरणा से शक्ति हनुमान-जननी अंजना का रूप धारण करके हनुमान को मीठी फटकार बताती है कि यह महाकाश उन शिव का निवास-स्थान है, जिनकी राम भी वन्दना करते हैं। हनुमान वापस राम के पास लौट आते हैं।

इस अवसर पर निराला ने लक्ष्मण, सुग्रीव, राम आदि के अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर वर्णन किया है। महाशक्ति राम को ऐसी दृष्टि से देखती है कि उनके हाथ बँध जाते हैं।

इसी समय जाम्बवन्त राम को मन्त्रणा देते हैं कि शक्ति की मौलिक कल्पना करो, पूजन करो; तभी रावण का वध सम्भव हो सकेगा। तब तक लक्ष्मण के नेतृत्व में सेना राक्षसों से युद्ध करती रहेगी। इस सलाह को मान कर राम युद्ध से विरत होकर शक्ति की आराधना को उद्यत हो जाते हैं। हनुमान को पूजन के लिए एक सौ आठ इन्दीवर लाने के लिए भेज दिया जाता है।

क्रमशः दिन बीतते जाते हैं और राम को आत्मिक बल मिलता जाता है। पूजन के अन्तिम, अर्थात् आँठवें दिन एक इन्दीवर चढ़ाने के लिए रह जाता है। दुर्गा रात्रि में चुपचाप उस पुष्प को ले जाती हैं। हाथ बढ़ाने पर जब इन्दीवर नहीं मिलता है, तो राम अधीर हो उठते हैं। उनकी इस व्याकुलता एवं आत्म-ग्लानि का चित्रण बहुत ही सूक्ष्मता के साथ किया गया है—

धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

इसी समय नव प्रकाश का उदय होता है। उनको स्मरण होता है कि उनकी माता उन्हें राजीव-नयन कहा करती थीं। बस, वह महाफलक वाले प्रदीप्त ब्रह्मशर के द्वारा अपना नेत्र निकालने को उद्यत होते हैं। इस समय साक्षात् दुर्गा प्रकट हो जाती हैं। वह राम का हाथ थाम लेती हैं और राम को 'अभयदान' देती हैं। इस प्रकार नव आशा के संचार के साथ इस काव्य का अंत होता है—

दो नील कमल हैं शेष अभी यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।

× × ×

होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन
कह लिया भागवती ने राघव का हस्त थाम।

× × ×

होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

संघर्षमय जीवन की कथा है—'राम की शक्ति पूजा' के राम परब्रह्म राम न होकर मानव राम हैं, जो निरन्तर संघर्षों से लड़ते रहते हैं। उनका जीवन सुख-दुख, आशा-निराशा, घात-प्रतिघात का जीवन है। परिस्थितियों की

विषमता उन्हें विचलित कर देती है, परन्तु कर्तव्य-बुद्धि द्वारा संयत रह कर वह आत्म-विश्वास को पुनः जाग्रत करते हैं और अन्ततः समस्त बाधाओं पर (रावण-रूपी बाधाओं पर) विजय प्राप्त करते हैं। अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रह कर सफलता प्राप्त करने के लिए वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत रहते हैं। अपनी आँख निकालकर शक्ति को समर्पित करने का संकल्प इसी सर्वस्व समर्पण-भाव का द्योतन करता है।

इस कविता में राम की विजय की अपेक्षा उनकी साधना ही अधिक महत्त्व पूर्ण दिखाई देती है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "राम के संघर्ष का चित्र जितना प्रभावशाली है, उतना उनकी विजय का नहीं। कवि के जीवन में संघर्ष ही सत्य रूप में आया है।"

नारी के प्रति सम्मान—'राम की शक्ति पूजा' की महाशक्ति वस्तुतः नारी-स्वरूपा आदि शक्ति है। इसको अदिति भी कहा गया है। यही महाशक्ति निराला के 'तुलसीदास' में 'रत्ना' रूप में दिखाई देती है। तुलसी को रत्ना उद्‌बोधन देकर सत्य मार्ग पर चलने को प्रेरित करती है। 'राम की शक्ति पूजा' में भी सीता की स्मृति भग्न-हृदय राम को विजय के लिए पुनः सन्नद्ध करती है। नारी ही दोनों स्थानों पर नर की प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाई देती है। ठीक ही है, नारी-रूपिणी शक्ति के अभाव में मानव शिव के बजाय केवल 'शव' रह जाता है।

चरित्र-चित्रण की सांकेतिक प्रणाली—इसमें कवि ने नाटकीय शैली पर प्रभावशाली एवं सशक्त चरित्र प्रदान किए हैं। थोड़े ही शब्दों में हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, लक्ष्मण आदि की चित्र-रेखाएँ उभर आती हैं। हम कह सकते हैं कि इस कविता में कवि ने चरित्र-चित्रण के लिए सांकेतिक प्रणाली को अपनाया है। राम न तो विलाप करते हैं और न इच्छा मात्र से विजयी ही होते हैं। उनके नेत्रों से दो आँसू टपक पड़ते हैं, जो उनकी क्षणिक शिथिलता के द्योतक हैं। फिर वे साधना द्वारा सिद्धि प्राप्ति में लग जाते हैं। इस प्रकार यह कथानक मात्र राम का न रह कर मानव मात्र के संघर्ष की कहानी बन जाता है।

मनोवैज्ञानिक चित्रण—'राम की शक्ति पूजा' काव्य की सबसे बड़ी विशेषता मनोवैज्ञानिक चित्रण है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का जैसा सफल चित्रण इस काव्य में हुआ है, वैसा अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है। मनोवैज्ञानिक

चित्रण करने के लिए निराला ने अनुकूल वातावरण की काव्यमय सृष्टि की है तथा इन सबके निर्माण के लिए उन्होंने प्रौढ़ पद-विन्यास अपनाया है। समास-गुम्फित पदावली में एक सघन भयप्रद वातावरण का यह वर्णन देखिए—

रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर।
× × ×
उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतुरः प्रहर—
जानकी-भीरु-उर-आशा भर—रावण सम्बर।

ऐसी विषम परिस्थिति को देख कर ही राम हतोत्साह हो उठते हैं परन्तु वह कर्मवीर हैं। अतः संकल्प-शक्ति द्वारा आत्मशक्ति का विकास करते और विजय प्राप्त करते हैं। इस विजय का उद्बोधन उन्हें नारी जाति से ही मिलता है।

विश्व के लिए आशा का महान् सन्देश—राम मौलिक रूप से शक्ति की उपासना करते हैं और सिद्धि प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। उनका यह आदर्श विषमताओं से त्रस्त मानवता को रावणीय व्यवस्था के प्रति निरन्तर संघर्ष करने का सन्देश देता है और उन्हें विश्वास दिलाता है कि उन शक्तियों की ही अन्त में विजय होती है, जो मानवता की मुक्ति के लिए राम के समान संघर्षरत रहती हैं। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का कथन द्रष्टव्य है—"योगदर्शन में काव्य के लिए जो सुलभ उपकरण मिले, उन्हें कवि ने मूर्त रूप दिया है। आज्ञा, सहस्रार आदि चक्रों पर रामचन्द्र के मन के चढ़ने की क्रिया के अतिरिक्त हनुमान का समुद्र को विलोड़ित करते हुए महाकाश में चढ़ना ओजपूर्ण वर्णन में अनूठा है। प्रकाश और अन्धकार का ऐसा चित्रमय सम्मिश्रण उन्होंने पहले कभी नहीं किया था। इसकी प्रतीक-व्यंजना अद्भुत है। रावण समस्त तमोगुणी विघ्न-बाधाओं का प्रतिनिधि मात्र दिखाई पड़ता है। उसके साथ शिव, आकाश और शक्ति सभी क्रियाशील जान पड़ते हैं। इस अनन्त तमोगुण में राम के दिव्यशर श्रीहत होकर कहीं खो जाते हैं। मनुष्य का मन पराजित होकर भी पराजय स्वीकार नहीं करता। युद्ध के लिए, विजय के लिए, वह पुनः चेष्टा करता है। 'राम की शक्ति पूजा' का यही महान् आशावादी संदेश है।'

व्यक्तिगत भावों की अपेक्षा जातिगत भावों का बाहुल्य—'राम की शक्ति

पूजा' केवल राम की शक्ति पूजा का ही काव्य नहीं है, अपितु उच्च मानव मूल्यों के समर्थन में प्रत्येक भद्र व्यक्ति के मन में होने वाले संघर्ष का दर्पण है। डा० उपाध्याय के शब्दों में, "इस काव्य का मर्मभेदी प्रभाव सर्वाधिक रूप से इसलिए पड़ता है कि इस काव्य में सारी मानसिक स्थितियाँ व्यंजित हैं जिनका वास्तविक रूप से हमें तब अनुभव होता है, जब हम किसी जन-द्रोही प्रबल पक्ष के विरुद्ध संघर्षरत होते हैं, मन संशयग्रस्त हो जाता है, क्योंकि अपने-अपने स्वार्थ के कारण अन्यायी पक्ष के व्यक्ति अधिक संख्या में अधिक प्रभाव और अधिक बल के निधान होते हैं।"

"राम की शक्ति पूजा में कवि निराला ने जनवादी और जन-द्रोही शक्तियों के संघर्ष की भयानक स्थिति की पृष्ठभूमि अत्यधिक भयप्रद शब्दावली में प्रस्तुत की है।" हम इसको आसुरी वृत्तियों के दुःखद रूप का प्रतीक मानते हैं, जो भौतिकवाद का दुष्परिणाम होता है। टी० हक्सले ने इसी को शाब्दिक स्वेच्छाचार कहा है। जो भी हो, 'राम की शक्ति पूजा' में व्यक्ति राम की बात कम है, मानव मात्र की बात अधिक है।

निराशा-रूपी अन्धकार से आवृत्त होकर राम सोचने लगते हैं—

रह-रह कर उठता जगजीवन में रावण जय भय !

राम को केवल सीता की ही चिन्ता नहीं है। उनके मन का मुख्य प्रश्न यह है कि "जगजीवन में क्या रावणवादी विजयी होते रहेंगे ?"

राम स्पष्ट कहते हैं—

यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण।

राम के मन में वही चिरन्तन प्रश्न उत्पन्न होता है—"यह कैसा इन्द्रजाल ? अन्याय जिधर है उधर शक्ति।" इसका उत्तर जाम्बवान के इस कथन में है—

आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर
तुम करो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर।
रावण अशुद्ध हो कर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त।

व्यक्ति की सीमा से निकल समष्टि के क्षेत्र में प्रवेश करते ही तामसी शक्ति तिरोहित हो जाती है। यही रावण की पराजय है।

मानव के मन का असुर मन्द हो रहा खर्व।

राम का मन चक्र से चक्र पर चढ़ता गया और विजय उनके समीप

आती गई। जहाँ संश्लिष्ट चेतना-रूपी योगेश्वर कृष्ण हों और तदनुसारिणी क्रिया-रूपी अर्जुन हों, वहाँ श्री, विजय आदि का आवास सुनिश्चित रूप से होता है। 'राम की शक्ति पूजा' मानव-जाति को यही महान् संदेश देती है—

> बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत-गति हतचेतन।
> राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन।
> 'यह है उपाय' कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन।

निष्कर्ष—'राम की शक्ति पूजा' एक प्रेरणाप्रद श्रेष्ठ कृति है। इसमें मानव-जीवन के शाश्वत मूल्यों का काव्योचित निरूपण है। इसको पढ़ कर पाठक नीलाकाश की ऊँचाइयों के अध्ययन के लिए प्रभावित हो उठता है।

प्रश्न ३३—'राम की शक्ति पूजा' के काव्य-सौष्ठव पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ३४—"राम की शक्ति पूजा में कवि की कला की सभी विशेषताएँ सुरक्षित हैं।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? अथवा

प्रश्न ३५—'राम की शक्ति पूजा' की रचना-शैली का विश्लेषण करते हुए बताइए कि वह कहाँ तक विषय के उपयुक्त है? अथवा

प्रश्न ३६—'राम की शक्ति पूजा' की रचना-शैली पर पूर्णतः प्रकाश डालिए। अथवा

प्रश्न ३७—"राम की शक्ति पूजा काव्य-कला की उत्कृष्टता और भावों के औदात्य का उदाहरण है, और उसमें कल्पना तथा अभिव्यक्ति का अपूर्व शृंगार हुआ है।" इस मत की समीक्षा कीजिए। अथवा

प्रश्न ३८—"निराला के काव्य में संगीत का मार्दव, पौरुष की हुँकार तथा शिल्प का वैचित्र्य एक साथ मिलते हैं।" 'राम की शक्ति पूजा' को दृष्टि में रखते हुए इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए। अथवा

प्रश्न ३९—"भाषा-शैली की दृष्टि से 'राम की शक्ति पूजा' भाषा की अपरिमित शक्ति का प्रतीक है।" उदाहरण देते हुए इस उक्ति के संदर्भ में इस कविता की भाषा-शैली का विवेचन कीजिए।

उत्तर : राम की शक्ति पूजा का काव्य-रूप—इसके कथानक में कथा का क्षिप्र प्रवाह है, अलंकृत वर्णन और मनोवैज्ञानिक चित्रण भी है; सुनियोजित

कथा भी है और प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति भी है। इन गुणों को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह एक महाकाव्य है। परन्तु किसी महाकाव्य के लिए जिस व्यापक कथानक की आवश्यकता होती है, उसका इसमें अभाव है, व्यापकत्व न हो सकने के कारण इसमें शैली के वैविध्य का भी अभाव पाया जाता है। अतः हम इसको महाकाव्य नहीं कह सकते हैं। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'राम की शक्ति पूजा' खण्डकाव्य के ही अधिक निकट है।

भाव-व्यंजना—'राम की शक्ति पूजा' काव्य के अन्तर्गत हमें सुन्दर भाव-व्यंजना के दर्शन होते हैं। यहाँ हम संक्षेप में उन भाव, विचार, जीवन-दर्शन आदि सम्बन्धी विशेषताओं पर विचार करते हैं जिनके कारण इस रचना को निराला की एक अत्यन्त प्रौढ़ कृति माना जाता है—

औदात्य—औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है। साधारणतः वही काव्य औदात्य-युक्त माना जाता है, जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनन्द दे सके। औदात्य के अनेक तत्त्व माने जाते हैं। मन की ऊर्जा, उल्लास, संभ्रम तथा अनुभूति इसके अन्तर्गत तत्त्व हैं। अलंकार-योजना, उत्कृष्ट भाषा, कल्पना-तत्त्व एवं ऊर्जित रचना-विधान उसके बहिरंग तत्त्व हैं।

'राम की शक्ति पूजा' का मूल स्रोत देवी भगवान की कथा है। रावण को युद्ध में देवी का वरदान प्राप्त हुआ था। रावण को पराजित करने के लिए राम ने शक्ति-पूजा का समायोजन किया था।

राम दुःखी एवं निराश दिखाये जाते हैं। इससे उनके परम्परा-युक्त चरित्र में स्खलन आ जाता है। लेकिन समाप्ति तक कथा का रूप बदल जाता है। यह कथा सफलता असफलता के झूले में झूलती है, परन्तु अन्ततः भारतीय संस्कृति के अनुरूप व्यापक आयाम को लिये हुए उदात्त लक्ष्य प्राप्त कर लेती है। भाषा और कला की दृष्टि से इसके औदात्य को सब स्वीकार करते हैं।

कवि के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब—'राम की शक्तिपूजा' पौराणिक कथा-वृत्त को लेकर लिखी गई प्रबन्ध-रचना मात्र नहीं है। राम के माध्यम से निराला ने अपने जीवन-परिवेश को ही चित्रित करना चाहा है।

निराला को जीवन-भर समाज, सम्पादकों और समीक्षकों से संघर्ष करना पड़ा था। काम और अर्थ—दोनों ही प्रकार की कुंठाएँ उनके भीतर

घर कर गई थीं। अपने इस विरोध-विगलित मानस को उन्होंने राम के द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त कराया है—

धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

विरोधी तत्त्वों का संघर्ष—इस रचना में सत्-असत् वृत्तियों का संश्लिष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें आशा-निराशा, जय-पराजय, सुख-दुख, संघर्ष-निर्वेद, लोकोत्तर जिज्ञासा और ऐहिक मांगल्य के लिए सकर्मकता का मिला-जुला रूप आद्यन्त लक्षित होता है। इस काव्य में समस्त मानसिक स्थितियों की सुन्दर व्यंजना हुई है।

इसमें जहाँ एक ओर मानव-मन की इन विरोधी वृत्तियों का चित्रण हुआ है, वहाँ काव्य में स्वाभाविकता भी आ गई है। राम के हृदय में विषाद और क्षोभ के बादल छाए हुए हैं—

असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार।

परन्तु तुरन्त ही उसके साथ-साथ आह्लाद की भावना भी है, जिसके फलस्वरूप राम को इस समर में विजय प्राप्त होगी—

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य नहीं जानता विजय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय।

यह विजय रावण पर राम की नहीं है, बल्कि असत् पर सत् की विजय है।

मानवीय सम्बन्धों की व्यंजना—जिस प्रकार वाल्मीकि तथा तुलसी ने अपनी कृतियों में व्यक्ति के विविध सम्बन्धों के निर्वाह और प्रतिष्ठा की भावना को व्यक्त किया है, उसी प्रकार निराला ने भी राम तथा उनके परिवेश में आने वाले अनेक पात्रों के माध्यम से समाज के सम्बन्धों की चर्चा की है। निराला ने राम को ईश्वरीय पद या ब्रह्मत्व प्रदान न कर उन्हें सर्वथा मानव ही माना है। राम और विभीषण के मध्य निराला ने भगवान और भक्त का सम्बन्ध नहीं माना है। उसमें राजवंशोचित कूटनीति को प्रश्रय दिया गया है—

हे सखा विभीषण बोले, आज प्रसन्न वदन।
वह नहीं देख कर जिसे समग्र वीर वानर॥

छायावादी कवियों की भाँति निराला ने नारी को अनन्त प्रेरणा का स्रोत माना है। राम का मन नैराश्य में डूबा हुआ था। सीता की मधुर छवि का स्मरण करते ही उनका मन सिहर उठा और उनके मन में विश्व-विजय करने की इच्छा बलवती हो उठी तथा उनके हाथ अब शिव का धनुष भंग करने को सन्नद्ध हो जाते हैं—

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन-लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त।
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आयी भर।

निराला ने मानवीय सम्बन्धों का निरूपण करते समय मर्यादा का पूर्ण-रूपेण पालन किया है। अनुज को निराला ने अनुचर का स्थान देकर भारतीय संस्कृति की मर्यादा की रक्षा की है—

लक्ष्मण चिन्ता पल पीछे वानर-वीर सकल,
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत चरण।

सहयोगियों, सेनानियों आदि के व्यवहार में भी इस मर्यादा का पूरी साव-धानी के साथ निर्वाह किया गया है।

जातीय संस्कृति—राम और रावण को हमारी संस्कृति में धर्म-अधर्म का प्रतीक माना गया है। इस जातीय मर्यादा के अनुरूप ही कवि ने इन दोनों पात्रों को ग्रहण किया है। रावण राम का ही विरोधी न होकर, हमारी जातीय संस्कृति का विरोधी माना गया है।

भारतीय सांस्कृतिक मान्यता की रक्षा करते हुए निराला ने 'आनन्दवाद' की स्थापना की है। मानवीय मूल्यों के आधार पर ही निराला ने सत् पात्र की विजय दिखाई है। इस आध्यात्मिकता के आवरण के कारण ही निराला ने राम को भी शक्ति की पूजा करते हुए दिखाया है।

भक्ति भावना—भक्ति-भावना भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अखण्ड परम्परा है। 'राम की शक्ति पूजा' में हनुमान में दास्य भक्ति की और विभीषण में सख्य भक्ति की प्रबलता है।

राम को भी विजय-श्री प्राप्त करने के लिए उपासना के मार्ग का ही अवलम्बन ग्रहण करना पड़ता है। वह जाम्बवान की सलाह मानकर आराधना

का प्रत्युत्तर आराधना द्वारा ही देने का संकल्प करते हैं। उपासनारत राम के चरित्र तथा वातावरण के चित्रण में कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है—

पूजोपरान्त जपते दुर्गा दसभुजा नाम
मन करते हुए मगन नामों के गुण ग्राम;
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण,
गहन से गहनतर होने लगा समाराधन।

कल्पना तत्त्व—निराला जी ने प्रखर कला के सहारे जिन बिम्बों की कल्पना की है, वे अपने में मौलिक तथा श्रेष्ठ हैं। बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति का यह संश्लिष्ट चित्र द्रष्टव्य है—

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल।
उतरा ज्यों दुर्गम पर नैशांधकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं सार।

प्रकृति के माध्यम से भी निराला ने अनेक ऐसे संश्लिष्ट चित्रों का नियोजन किया है।

राम की शक्ति पूजा में रस योजना—'राम की शक्ति पूजा' में मुख्यतः वीर रस और रौद्र रस की योजना की गई है। इसके अतिरिक्त शृंगार रस और शान्त रस के भी संकेत हैं। रात्रि की प्रलयंकारी भयानकता के वर्णन में भयानक रस की सुन्दर व्यंजना पाई जाती है।

इस ग्रन्थ का आरम्भ ही वीर रस की अभिव्यक्ति से होता है। कवि राम-रावण के युद्ध का वर्णन करते हुए 'उत्साह' स्थायीभाव की व्यंजना करता है—

रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा समर,
× × ×
लोहित लोचन रावण-मदमोचन महीयान।

निराशा के समय राम को जहाँ सीता के प्रथम-मिलन का स्मरण होता है, वहाँ शृङ्गार रस की सुन्दर व्यंजना हुई है—

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत,
जगी पृथ्वी तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत।
× × ×

ज्योतिः प्रताप स्वर्गीय ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

साधना पूर्ण होते समय अन्तिम 'इन्दीवर' विलीन हो जाता है। उस समय राम का हृदय सीता के चिर-वियोग की कल्पना करके चीत्कार कर उठता है। इस कथन में विप्रलम्भ श्रृंगार की मार्मिक व्यंजना हुई है—

जानकी ! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका !
कह एक और मन रहा, राम का जो न थका।

इसी स्थल पर 'निर्वेद' स्थायी भाव की अभिव्यक्ति द्वारा शान्त रस की व्यंजना भी होती है। पूजा का पुष्प चुरा लिये जाने पर राम क्षण-भर के लिए जीवन से विरत दिखाई देते हैं—

धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध,
जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका।

शंकर के संकेत पर शक्ति जब माता अंजना का रूप धारण करके हनुमान को समझाती हैं, तो हनुमान का क्रोध एकदम शांत हो जाता है। इस अवसर पर हम 'वात्सल्य' रस की अभिव्यंजना देखते हैं—

सहसा नभ में अंजना रूप का हुआ उदय।
बोली माता तुमने रवि को जब लिया निगल,
तब नहीं बोध था तुम्हें, रहे बालक केवल।
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह।
यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह-सह।

कहने का अभिप्राय यह है कि 'राम की शक्ति पूजा' में रस-योजना का सफल प्रयास किया गया है।

भाषा-शैली—'राम की शक्ति पूजा' की भाषा शुद्ध साहित्यिक संस्कृत-निष्ठ एवं अपेक्षाकृत क्लिष्ट खड़ीबोली है। इस कविता में निराला का भाषाधिकार द्रष्टव्य है; यथा—

(१) **प्रसंगानुकूल भाषा**—इस कविता में निराला जी ने विविध प्रसंगों एवं अनेक विषयों के वर्णन किए हैं। इसमें युद्ध का वर्णन है, राम के हताश मन का चित्रण है, पुष्पवाटिका में सीता-राम के प्रथम मिलन का श्रृङ्गारिक वर्णन है, हनुमान के कोप का अंकन है, राम की आराधना का आलेख्य है

और महाशक्ति दुर्गा के रूप का निरूपण है। इन समस्त प्रसंगों के साथ हमें भाषा अपने विभिन्न रूप धारण करती हुई दिखायी देती है। जैसे-जैसे वर्णित प्रसंगों में परिवर्तन होता चलता है, भाषा भी अपने स्वरूप में परिवर्तन करती चलती है; उदाहरण के लिए—आरम्भ में वर्णित राम-रावण के युद्ध को ले लीजिए। इसका चित्रण समास गुम्फित संस्कृत-गर्भित, क्लिष्ट, अर्थ-गर्भित और संक्षिप्त शैली में किया गया है। लगभग पन्द्रह-सोलह पंक्तियों में निराला युद्ध की सम्पूर्ण विभीषिका तथा उसके परिणाम का सजीव चित्र प्रस्तुत करा देते हैं। भाषा ओजपूर्ण है। शैली मार्मिक है। वर्ण्य-विषय का मार्मिक, पूर्ण एवं सजीव चित्र प्रस्तुत हो जाता है; यथा—

> **आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र कर, वेग-प्रखर,**
> **शत-शेल-सम्वरण-शील, नील-नभ-गर्जित-स्वर;**
> × × ×
> **विच्छुरति-वन्हि-राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण।**

इसके उपरान्त राम के मानसिक उद्वेलन का प्रसंग आता है। इसके लिए निराला प्रसंग के अनुरूप निस्तब्ध वातावरण का सृजन करते हैं। भाषा का स्वरूप सर्वथा तदनुरूप है—आकुल-व्याकुल कर देने वाला रूप; यथा—

> **है अमा-निशा, उगलता गगन घन अन्धकार;**
> **खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन, चार;**
> **अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि विशाल;**
> **भू धर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल मशाल।**
> **स्थिर राघवेन्द्रु को हिला रहा फिर-फिर संशय।**—आदि

(२) **रसानुकूल भाषा**—व्याकुल राम के नेत्रों के सम्मुख सहसा विदेह-तनया के प्रथम मिलन का दृश्य खिंच जाता है। भाषा अपनी ओजस्विता, शिथिलता और निस्तब्धता त्याग कर एक दम शृंगार का मधुर कोमल रूप धारण कर लेती है—

> **देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन,**
> **विदेह का—प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन,**
> × × ×

काँपते हुए किसलय—झरते पराग—समुदाय—
गाते खग नव-जीवन परिचय, तरु मलय-वलय।
× × ×
जानकी-नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय। —इत्यादि

(३) भाषा का ओजपूर्ण रूप—आरम्भ में कवि ने युद्ध का वर्णन किया है। यहाँ हम वीररस के सर्वथा उपयुक्त ओजपूर्ण भाषा देखते हैं। इन पंक्तियों में युद्ध की सम्पूर्ण विभीषिका, तुमुल नाद, अजस्र अस्त्रवर्षा, विक्षुब्ध वानरों का निनाद आदि का सजीव चित्र प्रस्तुत होता है। कवि यहाँ वीरगाथाकालीन और रीतिकालीन भूषण आदि वीररस के कवियों के समान न तो द्वित्त शब्दों का प्रयोग करता है और न उसने टवर्ग के अक्षरों की आवृत्ति की है। उसने ध्वन्यार्थ-व्यंजक अलंकार का सफल प्रयोग किया है तथा भाषा को स्वाभाविक तीव्र गति प्रदान करके चित्रित वातावरण में स्वाभाविकता उत्पन्न कर दी है।

भाषा का लगभग ऐसा ही ओजपूर्ण रूप हमें वहाँ मिलता है, जहाँ क्रुद्ध हनुमान द्वारा महाकाश में छलाँग लगाते समय प्रलय का-सा विक्षुब्ध दृश्य उत्पन्न हो जाता है। 'प्रलय' का यह दृश्य 'कामायनी' में वर्णित प्रलय के दृश्य की याद दिला देता है—

शत घूर्णावर्त, तरङ्ग भङ्ग उठते पहाड़,
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़।
तोड़ता बन्ध-प्रतिसन्ध धारा, दो स्फीत वक्ष,
दिग्विजय-अर्थ प्रतिफल समर्थ बढ़ता समक्ष। —इत्यादि

(४) भाषा का खिन्न, उदास परन्तु उदात्त रूप—राम, खिन्न युद्ध-भूमि से लौटे हैं। कवि इस चित्र का वर्णन करते हुए लिखता है—

श्लथ धनु-गुण है, कटि-बन्ध त्रस्त-तूणीर धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल।
× × ×
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।

इन पंक्तियों में राम के हृदय की सम्पूर्ण क्लान्ति एवं खिन्नता प्रखर हो उठी है।

यह शब्दावली बड़े ही सशक्त बिम्ब प्रस्तुत कर रही है। त्रस्त, विपर्यस्त,

श्लथ आदि शब्द बड़े ही भावाभिव्यंजक एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। प्रत्येक शब्द मनोभाव एवं अनुभाव का एक संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत करने में सक्षम है। राम की अवसाद-भरी क्लान्त, निराशापूर्ण मनःस्थिति की सबल अभिव्यक्ति हुई है।

(३) **वातावरण-निर्माण में पूर्ण सक्षम भाषा**—निराला पहले तो राम के भयानक मानसिक उद्वेलन का चित्र अंकित करते हैं और उसी के साथ निस्तब्ध वातावरण की सृष्टि कर देते हैं। परन्तु जब राम जाम्बवान की मंत्रणा से बल पाकर आशा से भर उठते हैं, तो धीरे-धीरे नैशान्धकार समाप्त हो जाता है और राम की आशा-भरी मनःस्थिति के अनुरूप ही प्रेरणा-प्रदायनी उषा का उदय होता है। उसी के अनुरूप कोमल एवं उज्ज्वल रूप धारण किये हुए भाषा का रूप देखते ही बनता है—

निशि हुई विगत नभ के ललाट पर प्रथम किरण,
फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा-ज्योति-हरण।

(६) **भास्वर, मन्द स्मिति जैसी भाषा**—कविता के अन्तिम आयाम में भाषा सहज ही एक ऐसा उदात्त रूप धारण कर लेती है, जो उसके रौद्र-कोमल रूपों से अधिक सार्थक एवं प्रभावशाली है। राम अपना एक नेत्र चढ़ाने को उद्यत होते हैं। उसी समय दुर्गा प्रकट होकर राम का हाथ थाम लेती हैं और उन्हें साधुवाद देती हैं। इस अवसर पर कवि ने दुर्गा का जो रूप अंकित किया है, उसमें राम की आराधना प्रतिफलित दिखाई देती है; यथा—

देखा राम ने सामने श्री दुर्गा भास्वर।
× × ×
श्री राघव हुए प्रणत मन्द-स्वर-वन्दन कर।

तथा— **फिर देखी भीमा मूर्ति, आज रण देखी जो।**
× × ×
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों।
पश्चात्, देखने लगी, मुझे, बँध गए हस्त॥

यहाँ दुर्गा के दो रूप अंकित हैं—एक में भास्वरता है और दूसरे में भयंकरता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन रूपों के अनुरूप ही भाषा कोमल, उदात्त एवं भास्वर तथा भीम-भयंकर रूप धारण कर लेती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि निराला शब्द-संयोजन द्वारा अपने अभिप्रेत को स्पष्ट कर देते हैं ।

निराला की भाषा की विशेषता यह है कि भाव और भाषा, शब्द और अर्थ—दोनों अकुण्ठित भाव से सहयोग के प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध दिखाई पड़ते हैं ।

शैली छायावादी—भाषा संस्कृत-गर्भित होने के कारण यह क्लिष्ट अवश्य है, परन्तु हम यदि कथा-प्रसंग को ध्यान में रखकर इसका पठन-पाठन करें तो इसकी समर्थ भाषा स्वतः ही वर्ण्य-विषय का साकार चित्र प्रस्तुत कर देती है ।

इसकी शैली छायावादी है, जो प्रायः अस्पष्ट, दुरूह और क्लिष्ट मानी जाती है । अतः छायावादी शैली की आत्मा से अपरिचित पाठकों के लिए 'राम की शक्ति पूजा' की भाषा-शैली अवश्य ही अपेक्षाकृत दुरूह है ।

निष्कर्ष—भाषा वस्तुतः निराला के संकेतों के अनुसार नाचती हुई दिखाई देती है । प्रसाद के अतिरिक्त अन्य किसी आधुनिक हिन्दी कवि को ऐसा भाषाधिकार प्राप्त नहीं है ।

'राम की शक्ति पूजा' में प्रयुक्त भाषा वर्णित प्रसंगों की प्रभावकता को अभिव्यंजित करने से पूर्ण सशक्त और समर्थ है । जहाँ कथा कही जा रही है अथवा पात्रों का वार्त्तालाप चलता है, वहाँ भाषा का रूप सरल रहा है । जहाँ कवि ने वातावरण का चित्रण किया है अथवा भावों के अन्तर्द्वन्द्व का अंकन किया है, वहाँ भाषा दुरूह, क्लिष्ट, संस्कृत-गर्भित एवं सामासिक हो गई है ।

यह कहना सर्वथा उचित ही है कि 'राम की शक्ति पूजा' में कवि निराला की कला की सभी विशेषताएँ सुरक्षित हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि 'राम की शक्ति पूजा' काव्यकला की उत्कृष्टता और भावों के औदात्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

प्रश्न ४०—"राम की शक्ति पूजा अपने लघु कलेवर में महाकाव्य की-सी विशालता, औदात्य और जीवन शक्ति समेटे हुए है ।" इस कथन की समीक्षा कीजिए और स्पष्टतः मत निर्धारित करते हुए बताइए कि क्या आप इसको महाकाव्य समझते हैं ।

उत्तर : महाकाव्य का स्वरूप—भारतीय तथा विदेशी, प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप को विभिन्न प्रकार से निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। इन विभिन्न परिभाषाओं के समन्वय-स्वरूप महाकाव्य के मुख्य लक्षण इस प्रकार ठहरते हैं—

(१) यह एक छन्दबद्ध एवं सर्गबद्ध कथात्मक काव्य होता है।

(२) इसमें जीवन का सुनियोजित एवं सांगोपांग वर्णन होता है।

(३) इसमें विभिन्न प्रकार के वर्णन—वस्तु-वर्णन एवं भाव-वर्णन होते हैं।

(४) यह रसात्मकता उत्पन्न करने में समर्थ होता है।

(५) इसमें किसी लोक-विश्रुत चरित्र का वर्णन होता है।

(६) इसकी शैली उदात्त एवं गरिमामयी होती है।

(७) जीवन शक्ति इसका प्रधान तत्त्व होता है।

(८) यह जातीय भावों का प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात् यह घटनाओं का आश्रय लेकर संश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति-विशेष और युग-विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं अथवा नाना रूपात्मक कार्यों का वर्णन और उद्घाटन करता है।

राम की शक्ति पूजा : महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर—'राम की शक्ति पूजा' में आंशिक रूप से शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह मिलता है। इसका कथानक महान एवं लोक-विश्रुत है, चरित्र भी महान है तथा इसकी शैली उदात्त और गरिमामयी है। इसके विपरीत इसमें महाकाव्य जैसी व्यापकता एवं समग्रता का अभाव है। इसमें न तो जीवन का समग्र वर्णन ही है और न जाति एवं युग-विशेष का संश्लिष्ट वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें पात्रों की संख्या सीमित है, खंडों के विभाजन, समाज और प्रकृति के विभिन्न रूपों के उद्घाटन का अभाव है। अतः **शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर हम इसको महाकाव्य नहीं मान सकते।**

क्या यह एक खण्डकाव्य है—आकार की लघुता के कारण तो इसको खण्ड-काव्य भी नहीं मान सकते। विरोध में कुछ लोगों का कहना है कि आकार को किसी भी काव्य-रूप का निर्णायक मानदण्ड मानना अनुचित है। अपने मत के समर्थन में वे आनन्दवर्धन के उस कथन को उद्धृत करते हैं, जिसके अनुसार उन्होंने अमरूक के एक-एक श्लोक को महाकाव्य के गौरव का अधिकारी घोषित किया था। हमारा विचार है कि काव्य में अभिधा के अतिरिक्त

लक्षणा-व्यंजना नाम की शब्द-शक्तियाँ भी होती हैं। आनन्दवर्धन के कथन को मात्र अभिधार्थ में नहीं लेना चाहिए; अन्यथा बिहारी की सतसई सात सौ महाकाव्यों की जननी बन जायगी और महाकाव्य एवं इतर काव्य में कुछ भी अन्तर ही नहीं रह जायगा। यदि आकार और कथा-प्रबन्ध के मानदण्ड समाप्त कर दिये जाते हैं, तब तो प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक काव्यों का अन्तर भी समाप्त कर देना पड़ेगा। केवल बारह पृष्ठों की कविता को श्रेष्ठ कविता कहना भी कम गौरव की बात नहीं है। हम इसको **प्रबन्धात्मक कविता** कहना ही समीचीन समझते हैं।

जीवनी शक्ति की कसौटी पर—जीवनी शक्ति महाकाव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसमें युग, समाज, राष्ट्र-विशेष की समग्र जीवन शक्ति मुखरित हो उठती है। एक आलोचक के शब्दों में, 'सामाजिक की उद्दाम जिजीविषा, अखण्ड वेग और अजस्र प्रवाह जिस सशक्त और जीवन्त रूप में किसी जातीय महाकाव्य में दिखाई पड़ता है, वैसा मानव की अन्य किसी कृति में नहीं।' अतएव स्पष्ट है कि महाकाव्यों की मुख्य कसौटी उसकी जीवनी शक्ति है।

'राम की शक्ति पूजा' का कथ्य मानव की उस जीवनी शक्ति की अमर कहानी है, जिसके द्वारा मानव विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करता आया है। मानव-सभ्यता जीवनी शक्ति के कंधों पर चढ़ कर ही वर्तमान विकसित अवस्था को प्राप्त हुई है। राम की यह कथा मानव के इसी अनवरत संघर्ष की प्रतीक बन कर हमारे सामने आयी है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "इसकी प्रतीक व्यंजना अद्‌भुत है। रावण समस्त तमोगुणी विघ्न-बाधाओं का प्रतिनिधि मात्र दिखाई पड़ता है। उसके साथ शिव, आकाश और शक्ति—सभी क्रियाशील जान पड़ते हैं। इस अनन्त तमोगुण में राम के दिव्यशर श्रीहत होकर कहीं खो जाते हैं। मनुष्य का मन पराजित होकर पराजय स्वीकार नहीं करता। युद्ध के लिए, विजय के लिए वह पुनः चेष्टा करता है। राम की शक्ति पूजा का यही महान आशावादी सन्देश है।"

अपने लघु कलेवर में इतना महान आशावादी सन्देश छिपाए रखने वाली काव्य-कृति महाकाव्य की कोटि में रखी जाने योग्य है।

महाकाव्य की सबसे बड़ी सफलता इस बात से आँकी जाती है कि वह समाज को कितनी शक्ति, कितना साहस, कितनी उमंग और कितनी आस्था

प्रदान करता है। निराला की यह काव्य-कृति आज के त्रस्त, हताश मानव को जाम्बवान के समान यही महान सन्देश देती है कि आधुनिक मानव को प्रस्तुत विषम परिस्थितियों से त्राण पाने के लिए शक्ति का मौलिक आराधन करना पड़ेगा।

जातीय भावों का प्रतिनिधित्व—'राम की शक्ति पूजा' के राम व्यक्ति राम न होकर हमारे सामने उस मानव के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं, जो निरन्तर विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष करता आया है। राम ब्रह्म के अवतार न होकर युग के नैतिक मूल्यों की रक्षा और स्थापना करने वाले मानव राम हैं। वह एक युग-विशेष के प्रतिनिधि न होकर युग-युग के प्रतिनिधि हैं।

शक्ति रावण रूपी अन्याय का समर्थन करती है और इस प्रकार नैतिक मूल्यों के क्षेत्र में एक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। राम इसी का निराकरण करते हैं और नैतिक मूल्यों के पुनर्स्थापन में सफल होते हैं। महाकाव्य की भाँति 'राम की शक्ति पूजा' भी जातीय भावों का प्रतिनिधित्व करती है।

उदात्त, गरिमामयी शैली—महान सन्देश को अभिव्यक्त करने के लिए निराला ने उसके अनुरूप ही महान, उदात्त और गरिमामयी शैली को अपनाया है। 'राम की शक्ति पूजा' में महाकाव्योचित गाम्भीर्य एवं प्राणवत्ता है। इस काव्य-कृति की शैली में हमको नाटकीय क्षिप्रता, भावों का मार्मिक उत्थान-पतन, सशक्त बिम्ब-योजना, सुन्दर प्रतीक-विधान, प्रांजल भाषा से उत्पन्न उदात्तता आदि गुणों के दर्शन होते हैं। इन्हें देखकर ही अनेक आलोचक इसे महाकाव्य कह देते हैं।

निष्कर्ष—शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर 'राम की शक्ति पूजा' एक प्रबन्धात्मक कविता है। उसको महाकाव्य अथवा खण्डकाव्य कहना काव्यशास्त्र की उपेक्षा करना है। उसका सन्देश महाकाव्य के समान महान् है और उसकी शैली सन्देश के अनुरूप गरिमामयी है। परन्तु विशालता, व्यापकता तथा जातीय प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में यह काव्य-कृति महाकाव्य के बहुत पीछे रह जाती है।

यद्यपि यह रचना अपने लघु कलेवर में महाकाव्य की-सी उदात्तता एवं जीवनी शक्ति समेटे हुए दिखाई देती है, तथापि हम इसे महाकाव्य नहीं कह सकते हैं।

१३. राग-विराग का परिचय

प्रश्न ४१—'राग-विराग' शीर्षक कविता-सग्रह् का परिचय देते हुए एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

उत्तर—नाम करण—'राग-विराग' के सम्पादक डा० रामविलास शर्मा ने इस कविता-संकलन का परिचय देते हुए लिखा है, "इस कविता-संग्रह् का नाम है **राग-विराग**। यह् कविताओं का संग्रह है जिनमें जितना आनन्द का अमृत है, उतना ही वेदना का विष। कवि चाहे अमृत दे, चाहे विष, इनके स्रोत इसी धरती में हों तो उसकी कविता प्रखर है। × × निराला की कल्पना इस धरती से दूर मनोरम अपार्थिव लोक नहीं रचती। वह पृथ्वी की दृढ़ आकर्षण-शक्ति से बंधी हुई है।" निराला की छायावादी कल्पना प्रसूत कविताओं की ओर सकेत करते हुए डा० शर्मा निराला की यथार्थवादी भूमि की दृढ़ता का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं कि "जैसे उड़ि जहाज को पछी फिर जहाज पर आवै—वह् आकाश में चक्कर काटने के बाद इसी धरती पर लौट आती है।" राग-विराग के सम्पादक के उक्त कथन द्वारा यही ध्वनित होता है कि **राग-विराग** में कवि की काव्य-यात्रा में दो स्वर प्रमुखता के साथ उभर कर आए हैं—एक स्वर है राग का और दूसरा स्वर है विराग का। डा० शर्मा ने इस संदर्भ में जो कुछ लिखा है, उसका अभिप्राय यह है कि 'राग' के स्वर में हैं आशा-उमंग-उत्साह् से संचारित श्रृङ्गारमय एवं अन्य चित्र, तथा विराग के अन्तर्गत हैं निराशा और विषाद का स्वर; जिसमें हुआ है प्रकृति के दुःखद, भयावह् एव रौद्र रूपों का चित्रण। निराला की कल्पना धरती पर उगे हुए वृक्ष के भीतर बैठती है, जहाँ उसके अंतस् की लालिमा वसंत में और भी निखर उठती है—तरु उर की **अरुणिमा तरुणतरा**। इस अरुणिमा में वसंत में धरती पग-पग पर रंग जाती है—**रंग गई पग-पग धन्यधरा**। डा० शर्मा के शब्दों में निराला की कल्पना धरती के भीतर बैठकर वनबेली की सुगंध के साथ ऊपर उठती है—"मस्तक पर लेकर उठी अतल की अतुल बास।" निराला की आदर्श कविता जिसमें अमृत के निर्भर झरते हैं, धरती से उठती हुई आकाश में छा जाती है।

बुझे तृष्णाशा विषानल झरे भाषा अमृत निर्झर।
उमड़ प्राणों से गहनतर छा गगन लें अवनि के स्वर।

जो भी हो, राग-विराग में राग और विराग के स्वर समानान्तर बहते हुए दिखाई देते हैं—

मरा हूँ हजार मरण
पाई तब चरण-शरण
× × ×
जल कल कल नाद बढ़ा
अन्तर्हित हर्ष कढ़ा
विश्व उसी को उमड़ा
हुए चारु-करण-सरण

तथा

दुख भी सुख का बन्धुबना—
पहले की बदली रचना।

एक ओर यदि कवि का स्वर प्रकृति हर्षोल्लास के गीत गाता है कि—

किसलय-वासना नव-वय लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप वृन्द बन्दी
पिक-स्वर नभ सरसाया

तो दूसरी ओर कवि विकल-विह्वल स्वरों को गाता हुआ दिखाई देता है—

जीव चिरकालिक क्रन्दन।
मेरे अंतर वज्र कठोर
मेरा दुख की गहन अंध-
तम-निशि न कभी हो भोर।

इन स्वरों में भरी हैं उनकी कुण्ठाएँ, एवं जीवन की निराशाएँ।
यथा—

यह वायु वसन्ती आई है
कोयल कुछ क्षण कुछ गाई है,
स्वर में क्या भरी बुढ़ाई है,
दोनों ढलते जाते उन्मन।

तथा—

धीरे-धीरे हंस कर आई।
प्राणों की जर्जर परछाईं।

कुंठा की अपेक्षा निराशा का स्वर अधिक मुखर है—

मग्न तन रुग्ण मन,
जीवन विषण्ण वन।
× × ×
घिर गये हैं मेह,
प्रलय के प्रवर्षण
चलता नहीं हाथ,
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दोषरण

तथा—

हार गया जीवन-रण
छोड़ गये साथी-जन

आशा-निराशा की यह गंगा-जमुना ही वस्तुतः राग-विराग नाम को सार्थक करने वाली है—

पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है।
आत्मा का प्रदीप जलता है हृदय कुंज में।
× × ×
झूल चुकी है खाल ढाल की तरह तनी थी।
पुनः सबेरा, एक और फेरा ही जी का

द्रष्टव्य यह है कि राग-विराग के ये स्वर प्रायः वैयक्तिक स्तर से ही निःस्तृत हैं, जो यथास्थान व्यापक क्षितिज में पहुँच कर प्रकृति-व्यापी बन जाते हैं। एक समालोचक का यह मत द्रष्टव्य है—"वास्तव में कविवर निराला ने हमें राग अर्थात् आनन्द, विराग अर्थात् विष के रूप में जो कुछ दिया है, वह सब धरती का है। कवि के जीवन की विष-अमृतमयी स्वानुभूतियों का सार तत्त्व है और इसी कारण कवि और उसका काव्य दोनों चिर अमर हैं।" अमरता भविष्य के गर्भ में है। हाँ, इतना अवश्य है कि राग-विराग की अधिकांश कविताएँ स्वानुभूति प्रधान हैं तथा वह धरती की मिट्टी को लेकर चलती हैं। अस्तु।

'राग-विराग' में जीवन के राग और विराग से सम्बन्धित स्वरों को रूपायित करने वाली कविताएँ संकलित हैं। इन दो स्वरों को कल्पना के सम्भावित रुपहले रंगों में एक विशेष सजधज के साथ प्रस्तुत किया गया है। अतः इस कविता-संग्रह के नामकरण को हम सर्वथा उचित ही कहेंगे।

तीन चरण—राग-विराग के अन्तर्गत निराला के समूचे कृतित्व का सार तत्त्व संकलित है। इस संकलन को तीन चरणों में विभक्त करके हिन्दी-प्रेमी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। यथा—प्रथम चरण—सन् १६२१ से ३६ तक की रचनाएँ, द्वितीय चरण सन् १६३७ से १६४६ तक की रचनाएँ तथा तृतीय चरण सन् १६५० से सन् १६६१ तक की रचनाएँ। स्पष्ट है कि प्रथम चरण कवि के उल्लासपूर्ण यौवन का चरण है, द्वितीय चरण उनके संघर्षपूर्ण जीवन का चरण है तथा तृतीय चरण उनके प्रौढ़ चिन्तन युक्त अवसान का चरण है। निराला को अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के अनुरूप न तो धन मिला, और न मान। इस कारण वह किसी सीमा तक निराश व्यक्ति थे। कई कारणोंवश वह कुंठा-ग्रस्त भी हो गये थे। परन्तु साथ ही वह एक चिन्तनशील एवं दार्शनिक व्यक्ति भी थे। फलतः अपने अन्तिम चरण की अधिकांश कविताओं में निराला हमें आशा-निराशा के झूले में झूलते हुए दिखाई देते हैं। कई स्थलों पर वह शिवशंकर की भाँति हलाहल को अमृत में परिवर्तित करने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। रीतिकालीन कवियों की भाँति वह अन्त समय में "चाह्यौ भयौ मन को कछू" कह कर अशरण—शरण राम की शरण में जाने का उपक्रम करते हैं। वह सम्भवतः पार्थ की भाँति यह धारणा लेकर जाना चाहते हैं कि "जन्म पाऊँ दूसरा मैं वैरशोधन के लिए" यथा—**पुनः सवेरा, एक और फेरा हो जी का**। "क्योंकि स्मरण में है आज जीवन, मृत्यु की है रेख नीली।" इस अन्तर्विभाजन को हम कविवर निराला के कृतित्व के प्रगति-चरणों के तीन सोपान भी कह सकते हैं। **राग-विराग** के सम्पादक का कथन द्रष्टव्य है, यथा—"इन तीन चरणों में निराला की विचारधारा या भावबोध में कोई मौलिक अन्तर नहीं हुआ। राग प्रथम चरण में है तो अन्तिम चरण में भी है, विराग अन्तिम चरण में है तो प्रथम चरण में भी है। फिर भी निराला काव्य में विकास है। उनकी दृष्टि निरन्तर यथार्थवादी बनती गई है, न केवल बाह्य परिवेश में—जैसे वनबेला में—वह बहुत स्पष्ट देखते हैं, वरन् उनका न थकने वाला मन—अपना विक्षेप भी देखता है और उस पर कविता रचता है।

यथार्थवादी दृष्टि के लिए यदि हम यह कहें कि उनके चिन्तन में जीवन की कटुता क्रमशः समावेश करती गई है, तो हम समझते हैं कि इससे निराला के काव्य के विकास-क्रम को समझने में सहायता प्राप्त होगी।"

इन तीन चरणों के विषय में हम सम्पादक डा० शर्मा के शब्दों को उद्धृत करना ही पर्याप्त समझते हैं; यथा—"परवर्ती रचनाओं में अलंकरण की प्रवृत्ति कम होती गई है। व्यंजना ऐसी सघन मालूम होती गई है कि पाठक शब्दों के नीचे की अगाध भाव तरंगें न पाये, इससे धोखा खाने की पूरी सम्भावना है। × × जो उदात्त है, ओजपूर्ण है, अलंकृत है, वह प्रथम चरण की विशेषता है। दूसरे चरण में संघर्ष का स्वर प्रधान है, साथ ही निराला अब हँसते अधिक हैं और यह हँसी हमेशा मन का सहज उल्लास नहीं होती, उसके नीचे गहरा विषाद छिपा होता है। तीसरे चरण में उन्होंने मृत्यु और विषाद के जैसे गीत रचे, वैसे उन्होंने पहले कम रचे थे। दूसरे कवियों में भी वैसी रचनाएँ मुश्किल से मिलती हैं।"

उक्त कथन का सारांश यह है कि, "उल्लास का सहज मुखरित भाव क्रमशः यौवन-काल के अलंकरण को त्याग कर, चपलता को छोड़कर, संघर्षमय स्वरों का संधान करता गया है। इस संघर्ष की असफलता ने कवि के गुरु-गौरव और स्वाभिमान को आन्तरिक दृष्टि से चाहे नहीं भी तोड़ा, फिर भी सामाजिक और शारीरिक दृष्टि से वह टूट-टूट कर क्रमशः बिखरता गया है।"

प्रथम चरण में कवि ने प्रकृति का बड़ा ही उदात्त वर्णन किया है। यह चरण वास्तव में प्रकृति निरीक्षण के सौन्दर्य, उन्माद और स्वाभाविक मस्ती के रूप में समस्त वातावरण को आवृत्त कर लेने के लिए आतुर दिखाई देता है। प्रिय पल की हार भी इस चरण में श्रृंगार बन कर आती है—

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती,
सब कहते श्रृंगार।

बादल और बादल राग जैसी कविताओं में हम कवि के ओजस्वी भावों के दर्शन कर सकते हैं। इतना सब होते हुए भी इस चरण की कई कविताओं में हमें खटाई भी मिलती है। **सरोज स्मृति और राम की शक्ति पूजा** इस चरण

की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। सारांश यह है कि **राग-विराग** का प्रथम चरण उदात्त, ओजपूर्ण एवं अलंकृत होते हुए भी खट्टे-मीठे स्वाद से युक्त है।

दूसरा चरण—इसमें संघर्ष का स्वर प्रधान है। इस चरण की कविताओं में हमें उनकी विषादपूर्ण हँसी के दर्शन होते हैं। "वह चाहे प्रकृति का हास बन कर मुखर हुआ हो और चाहे व्यंग्य-विनोद का विद्रूप-हास बन कर ध्वनित होता सुन पड़ा है।"

इस चरण में उर्दू के छन्द-गजल शैली की भी रचनाएँ हैं। यह चरण एक प्रकार से निराला के नवीन प्रयोग का काल है। परन्तु द्रष्टव्य यह है कि प्रथम चरण के समान इस चरण का आरम्भ भी वसन्त और वर्षाॠतुओं के चित्रण के साथ ही हुआ है।

इस चरण की रचनाओं में श्रृंगार परक तथा राजनीतिक व्यंग्य की भी कविताएँ हैं। कई गीतों की तर्ज लोक गीतों जैसी हो गई है। **वनबेला** और **कुकुरमुत्ता** इस चरण की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ मानी जा सकती हैं।

तृतीय—इस चरण की रचनाओं में मृत्यु और विषाद के गीत अधिक हैं। इस चरण के अन्तर्गत ही निराला ने वसन्त और वर्षा सम्बन्धी कुछ गीत लिखे हैं। एक दो गीतों में शरद-सौन्दर्य का भी चित्रण है।

इस चरण में कवि की निराशा और उनके विषाद का जो स्वर उठता है' उसमें जागतिक नश्वरता का भाव क्रमशः बद्धमूल होता जाता है। इस कठिन संसार से पार जाना वह कठिन मानता है तथा ईश्वर की बन्दगी का भरोसा करने लगता है। उसे अब वसंत या वर्षा का स्मरण नहीं आता, बल्कि हिंसा पशुओं से भरी—**शिशिर की शर्वरी** का स्मरण आता है। कवि अपने आप को मिटाकर अपने प्रिय के गले का हार बन जाने का गीत गाता है—

> **हारता है मेरा मन विश्व के समर में जब**
> **कलहव से मौन ज्यों**
> **शांति के लिए, त्योंही—हार बन रही हूं प्रिय,**
> **गले की तुम्हारी मैं,**
> **विभूति की, गंध की, तृप्ति की, निशा की।"**

उपसंहार—"राग-विराग कवि निराला के सन् १९२१ से लेकर सन् १९६१ तक के समूचे कृतित्व का सार-संकलन है। इतनी लम्बी कालावधि में

कवि ने जीवन के सुख-दुखात्मक या राग-विरागात्मक जिन स्वरों को मुखरित किया, उन्हीं का सार-संकलन है—राग-विराग।"

डा० राम विलास शर्मा का यह कथन मनन करने योग्य है—"विशेष रूप से आप देखेंगे कि सन् १९१७ के बाद छायावादी कवियों की स्थिति जैसी रही है, उससे निराला की स्थिति कितनी भिन्न है। इस संग्रह से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि अपने अन्तिम चरण में निराला नये मनोबल से कविताएँ रच रहे थे। और इनमें हिन्दी संसार को वह ऐसा कुछ दे रहे थे, जैसा कुछ उन्होंने पहले न दिया था।"

व्याख्या-भाग

प्रथम चरण (१९२१-३६)

(१) रंग गयी पग-पग धन्य धरा

रंग गयी पग-पग धन्य धरा .... वन-श्री चारुतरा ।

शब्दार्थ—पग-पग = कदम-कदम पर। धरा = पृथ्वी। जग = जागकर। जगमग = प्रकाशित। मनोहर = मन को प्रसन्न करने वाली। वर्ण = रंग। मरन्द = रस। अरुणिमा = लाली। अरुणता = नवीनता। सुपरिसरा = अच्छी तरह चारों ओर फैली। स्तर-स्तर पर = प्रत्येक स्तर, छोटे-बड़े सभी पदार्थों पर। पिक = कोयल। पावन = पवित्र। पंचम = उच्च स्वर (पाँचवाँ स्वर)। खलकुल कलरव = पक्षियों की मधुर ध्वनि। प्रणय-क्लम = प्रेम से शिथिल। क्लम = थकावट। वन-श्री = वन की शोभा। चारुतरा = सुघरता, अधिक सुन्दर।

प्रसंग—यह कविता कवि निराला की रचना गीतिका से संकलित है। इसमें वसन्तकालीन प्रकृति की शोभा का वर्णन है।

भावार्थ—वसंत के आगमन के साथ पृथ्वी पर कदम-कदम पर। रंग-बिरंगे फूल खिल गये और उस रंग-बिरंगी शोभा के कारण पृथ्वी धन्य हो गई। चारों ओर सुन्दर पुष्पों की मनोहर जगमगाहट (आभा) व्याप्त हो गई, मानो समस्त सोई हुई प्रकृति जाग गई हो।

विभिन्न प्रकार के रंगों और अनेक सुगंधों को धारण करके, रस की मधुरता से युक्त होकर वृक्षों के हृदय की लालिमा अधिकाधिक सुन्दर होकर खिली हुई कलियों के रूप में प्रकट हुई और वह प्रकृति के प्रत्येक स्तर पर, छोटे-बड़े सभी पदार्थों पर फैल गई है।

कोयल अपने पवित्र पंचम स्वर से गाने लगी। पक्षियों का समूह मधुर तथा मनोहर ध्वनि करने लगा। प्रकृति सुन्दरी अपने इस यौवन-विकास की दशा में प्रेम से शिथिल है, परन्तु प्रणय-सुख की कल्पना में भयभीत मुग्धा नायिका के समान कम्पायमान होने लगी है। वह सुन्दर से सुन्दरतर हो रही है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—पग-पग, स्तर-स्तर, (ii) वीप्सा—धन्य। (iii) छेकानुप्रास—धन्य-धरा। जग जगमग। मधु—मरन्द। कुल कलरव, मृदुल मनोहर। (iv) सभंग पद यमक—जग जगमग। (v) पदमैत्री—जगमग। धर, भर। तरु-उर, पर भर। (vi) अनुप्रास=पिक पावक—पंचम। (vii) विरोधाभास—सुख के भय। (viii) स्वाभावोक्ति। (ix) मानवीकरण--सम्पूर्ण छन्द—विशेषकर **सुख के भय काँपती**।

विशेष—(i) प्रकृति का मुखर स्वाभाविक वर्णन है।

(ii) वसंत के आगमन से समस्त धरती हरी-भरी होकर सौन्दर्यानुभूति एवं प्रेमानुभूति जाग्रत कर रही है। वसंत ऋतु ने प्रकृति के कण-कण को मुखरित कर दिया है।

(iii) चैतन्यारोपण की शैली में प्रकृति का संश्लिष्ट वर्णन है।

(iv) शिशिर ऋतु में समस्त प्रकृति श्री-हीन एवं रसहीन हो गई थी। वसन्त (चैत्र मास) के आगमन के साथ इसमें नए अंकुर प्रस्फुटित होने लगे हैं। कवि इसको प्रकृति का नींद से जागना कहता है, जो सचमुच सटीक है। वसंत के आगमन-समय नव किसलयों एवं द्रुम दलों का विकसित होना ऐसा लगता है मानो समस्त प्रकृति ने अंगड़ाई ही ली हो।

(v) रूप और रंग का सुन्दर बिम्ब-विधान है।

(vi) लक्षणा—रंग गयी धरा तथा तरु-उर-तरुणता। रंग-बिरंगे फूलों के खिलने को कवि ने धरा का रंग जाना कहा है। रंग जाने का लक्ष्यार्थ प्रेम द्वारा अभिभूत होना भी होता है। अरुणिमा तरुणतर का लक्ष्यार्थ है कि कोमल दल ज्यों-ज्यों लाली पकड़ते हैं, त्यों-त्यों वे अधिकाधिक कामोद्दीपक होते जाते हैं।

(vii) अंतिम चरण में ध्वन्यात्मकता है।

(viii) मुग्धा नायिका यौवनांकुर प्रकट होने पर प्रेमी का सहवास तो चाहती है, परन्तु साथ ही नवीन परिस्थिति के प्रति सशंक भी होती रहती है।

(ix) तरुणता चारुतर शब्दों द्वारा कवि ने "क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपम् रमणीयतायां" की अभिव्यंजना की है और यह व्यंजना की है कि वसंत में प्रकृति नित्य नवीन रूप धारण करती है और उसका सौन्दर्य प्रति क्षण बढ़ता ही जाता है।

(x) यह कविता छायावादी काव्य के अन्तर्गत किए जाने वाले प्रकृति वर्णन का **सुन्दर** उदाहरण प्रस्तुत करती है।

(२) अमरण भर वरण-गान

अमरण भर वरण-गान .... मधुपूरित गन्ध, ज्ञान ।

शब्दार्थ—अमरण=अमरता । वरण-गान=वरण करने का गीत । प्राण= जीवन । खुले प्राण=नवजीवन का संचार हुआ । वसन=वस्त्र । तनु=पतली । वल्कल=वृक्षों के तनों की छाल । विमल=स्वच्छ । पृथु=विस्तीर्ण । उर= हृदय । सुर-पल्लव=कल्प-वृक्ष के पत्ते । दल=समूह । कल=सुन्दर । कलि= कलिका, कली । पल निश्चल=अपलक नेत्र, बिना पलकों को गिराए । मधुप=भौंरा, भ्रमर । निकर=समूह, टोली । कलरव=मधुर ध्वनि । भर= पूरित होकर । मुखर=गूंज । पिक=कोयल । स्मर=कामदेव । शर=वाण । कामदेव के वाण इस प्रकार हैं—कमल, नील कमल, अशोक मल्लिका तथा आम्र मंजरी । झर=ज्वाला ।

संदर्भ—कवि निराला की यह कविता उनके काव्य-संग्रह **गीतिका** से संकलित है । इसमें वासन्ती प्रकृति को ज्ञान ध्यान-निरता योगिनी के समान बताया गया है ।

भावार्थ—प्रत्येक वन और उपवन में अमरता को प्राप्त करने का गीत लेकर प्राकृतिक शोभा प्रस्फुटित हुई और नवजीवन का संचार हुआ ।

प्रकृति सुन्दरी पतली छाल रूपी स्वच्छ वस्त्र धारण किए है । कल्पवृक्ष के समस्त पत्तों के समूह रूपी उसका विस्तीर्ण-उन्नत वक्षस्थल है । सुन्दर कलिकाओं रूपी अपने नेत्रों को निश्चल करके वह प्रिय के ध्यान में लीन है । भ्रमरों के समूहों का गुंजन तथा कोयल का स्वर उसके प्रियतम के स्वर को मुखरित कर रहा है । केशर रूपी (तृतीय नेत्र की) ज्वाला के द्वारा वह कामदेव के वाणों के प्रभाव को समाप्त कर रही है तथा मधुरिमा युक्त सुगंध रूपी ज्ञान का संचार कर रही है ।

अलंकार—(i) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द में प्रकृति का मानवीकरण है । (ii) पुनरुक्ति प्रकाश—वन-वन उपवन-उपवन । (iii) छेकानुप्रास-वसन विमल । (iv) सभंग पद यमक—वन उपवन । (v) पदमैत्री—मरण वरण, स्मट, शर, हर, केशर, झर । (vi) रूपक-वसन विमल—कल । अन्तिम छंद में सांग-रूपक है ।

विशेष—(i) वासंती प्रकृति के विभिन्न अवयवों को योगसाधना के अंग बताकर सांगरूपक की सफल योजना की है ।

(ii) संगीतात्मा द्रष्टव्य है ।

(iii) कोमलकान्त पदावली संस्कृत पदावली का स्मरण करा देती है ।

(iv) अंतिम दो पंक्तियों में प्रकृति की समता ध्यानावस्थित योगी से की गई है । योगीजी के मस्तक पर लगा हुआ केशरिया तिलक ज्वालावत् प्रतीत होता है । गहरा केशरिया रंग लाल होता है । उसमें कवि ज्ञानाग्नि का दर्शन करता है । अतः साध्यवसाना लक्षण का चमत्कार द्रष्टव्य है ।

(v) मधुपूरित गन्ध में परिकरांकुर की व्यंजना है ।

(vi) प्रकृति पर चैतन्यारोपण की शैली में प्रकृति-वर्णन । यह कविता छायावादी प्रकृति-वर्णन का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

(vii) बिम्ब-विधान की दृष्टि से यह एक अत्यन्त सफल कविता है ।

(३) सखि वसन्त आया

(क) सखि वसन्त .... छाया ।

शब्दार्थ—वसन्त = छह ऋतुओं में एक, चैत्र और वैशाख के ये दो महीने वसन्त ऋतु के होते हैं । नवोत्कर्ष = नया उत्कर्ष, नई उन्नति ।

सन्दर्भ—कवि निराला वसन्त ऋतु के आगमन का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—हे सखि ! वसन्त ऋतु आ गई है । उसके आगमन के कारण वन के मन में हर्ष भर गया है और उसके जीवन में नई उठान आ गई है । अर्थात् वन को नया जीवन-सा प्राप्त हो गया है ।

अलंकार—मानवीकरण ।

विशेष—वसंत ऋतु के महीने हैं—चैत्र और वैशाख ।

(ख) किसलय-वासना .... सरसाया ।

शब्दार्थ—नवीन पत्तों (कोपलों) के वस्त्रों वाली । नव-वय-लतिका = नवीन अवस्था वाली लता, अर्थात् नई कोमल लता । तरु पतिका = वृक्ष की प्रियतमा । मधुप = भौंरे । वृन्द = समूह । पिक = कोयल । सरसाया = प्रसन्न हुआ, गूँज उठा ।

सन्दर्भ—कवि वसन्त ऋतु का वर्णन करता है ।

भावार्थ—नवीन पत्तों के वस्त्र पहने हुए नवयौवना के समान नवीन लता अपने प्रियतम वृक्ष के स्नेह-भरे मधुर वक्षस्थल से चिपक रही है । भौंरों का समूह कमल के फूलों के भीतर बन्द हो गया है और कोयल का मधुर स्वर आकाश में गुञ्जायमान है ।

अलंकार- नवीकरण ।

विशेष—१. प्रकृति-प्रेम अभिव्यक्त है। प्रकृति पर चैतान्यरोपण करके प्रकृति का आलम्बन रूप में सजीव वर्णन है।

२. प्रकृति में नारी का दर्शन है। यह छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषता है ।

३. संयोग शृङ्गार की व्यंजना है।

४. कोमलकांत पदावली का माधुर्य द्रष्टव्य है।

(ग) **लता मुकुल** .... **माया।**

शब्दार्थ—मुकुल=फूल। माया=आकर्षण। मन्दतर=और अधिक धीरे। हार=हारसिंगार।

संदर्भ—वसन्त के पवन का वर्णन कवि करता है।

भावार्थ—लता में खिलने वाली कलियों तथा हारसिंगार की सुगन्ध के भार से बोझिल बना हुआ पवन अधिकाधिक मन्द होता जा रहा है और आँखों में वन के यौवन के प्रति आकर्षण छा गया है अथवा वसन्त के शीतल मन्द सुगन्ध के स्पर्श मात्र से नेत्रों में यौवन का खुमार जाग उठता है।

अलंकार—(१) मानवीकरण—वन-यौवन । (२) पदमैत्री—पवन मन्द मन्द मन्दतर।

विशेष—(१) प्रकृति का वर्णन संश्लिष्ट रूप में है और साथ ही उसके उद्दीपक प्रभाव का वर्णन है। (२) शृंगार रसोचित कोमल और मधुर भाषा है। (३) तुलना कीजिए—

रनित भृङ्ग घंटावली, झरित दान-मधु नीर।
मंद-मंद आवत चल्यौ, कुञ्जर-कुञ्ज समीर॥ —**बिहारी**

४. छायावादी काव्य की विशिष्टता—प्रकृति-प्रेम द्रष्टव्य है।

(घ) **आवृत्त** .... **लहराया।**

शब्दार्थ—आवृत=घिरे हुए। सरसी=तड़ाग, तालाब। सरसिज=कमल। स्वर्ण शस्य=सुनहरी रंग का धान्य, पका हुआ नाज।

संदर्भ—कवि वसन्त ऋतु का वर्णन करता है।

भावार्थ—जल की चादर से ढके हुए सरोवर के वक्ष पर कमल खिल गये हैं, अर्थात् समस्त तालाबों के वक्ष को घेरे रहने, ढके रहने वाले कमल अब खिल गये हैं, जिस प्रकार अंचल के भीतर ढके हुए नवयौवना नायिका के उरोज अपना

उभार अंचल के पीछे से प्रदर्शित करते रहते हैं। कली के भीतर स्थित केशर की डण्डी के खिल जाने और बाहर निकल आने से उसी प्रकार मुक्त हो गई है जिस प्रकार नवयौवना नायिका के बाल खुल जाने पर चारों ओर बिखर जाते हैं। सोने के समान पीली फसल से युक्त पृथ्वी का सुनहरी अंचल फहराने लगा है, अर्थात् पकी हुई फसलों से भरे हुए सुनहरी खेत मन्द-मन्द वायु के स्पर्श को प्राप्त करके लहलहा रहे हैं।

अलंकार—(१) अनुप्रास—कॅसर के केश कली। (२) मानवीकरण—पूरा छन्द।

विशेष—(१) प्रकृति में नारी-दर्शन है। (२) कवि की प्रेम-भावना एवं सौन्दर्यानुभूति की सजीव अभिव्यक्ति की गई है। (३) केशर की चर्चा इस प्रकृति-वर्णन में परम्परा-भुक्त शैली की वस्तु परिगणन पद्धति का समावेश कर देती है। कवि के प्रकृति-प्रेम की अभिव्यक्ति है। प्रकृति पर मानवीय भावों का सफल आरोप है।

द्रष्टव्य—१. इस कविता की रचना १९२८ में हुई थी।

२. प्रकृति के प्रत्येक रूप में मानवीय सौन्दर्य का आरोप करके कवि ने एक सजीव साकार और संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

३. इस कविता में वसंत ऋतु का सूक्ष्म निरीक्षण पूर्ण वर्णन सरस काव्य शैली से किया गया है।

(४) यामिनी जागी

(क) यामिनी .... क्षमा माँगी।

शब्दार्थ—यामिनी=रात्रि। अलस=अलसाए हुए। पंकज दृग=कमल-नेत्र। अरुण मुख=लाल मुख मंडल, बाल रवि। तरुण-अनुरागी=युवक से प्रेम करने वाली। अशेष=समस्त। पृष्ठ=पीठ। ग्रीवा=गर्दन। बाहु=बाँह। उर=हृदय। अपर=दूसरा। दिनकर=सूर्य। तन्वी=कृशांगी, दुबले-पतले शरीर वाली नायिका। तड़ित=बिजली। द्युति=चमक।

संदर्भ—कवि निराला एक सद्यःजाग्रत नायिका के रूप में रात्रि का चित्रण करते हैं।

भावार्थ—हे प्रिय! रात जाग गई है। उसके अलसाए हुए कमल रूपी नेत्र सूर्य की कान्ति के समान मुख वाले बाल रवि रूपी प्रिय को देखकर खिलने लगे हैं। उस तरुण प्रेमी को देखकर उस तरुणी नायिका के कमल नेत्र अनुराग

पूर्ण हो रहे हैं। उसके खुले हुए केश उसके रूप में अपार शोभा भर रहे हैं। वे केश उसकी पीठ, गर्दन, बाँहें और उसके वक्षस्थल पर लहरा रहे हैं। इन काले, सघन केशों से घिरा हुआ उसका रूप ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य बादलों से घिरा रह कर भी अपनी प्रभा को विकीर्ण कर रहा है। वह ज्योति द्वारा निर्मित एक ऐसी कृशकाय सुन्दरी है जिसकी प्रभा के सम्मुख बिजली की चमक भी मन्द पड़ जाती है।

अलंकार—१. रूपक—पंकज-दृग, अरुण-मुख, ज्योति की तन्वी।

२. श्लेष—अरुण।

३. व्यतिरेक—तड़ित द्युति ने क्षमा माँगी।

४. मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द।

५. पदमैत्री—केश, अशेष, उर पर तर, घिर, अपर, दिन कर।

६. छेकानुप्रास—तन्वी तड़ित।

विशेष—१. छायावादी शैली के अनुसार कवि प्रकृति में नारी का दर्शन करता है।

२. सौन्दर्य-वर्णन रीतिकालीन काव्य-शैली पर है।

३. संस्कृत-निष्ठ कोमलकान्त पदावली है। समास-पद्धति का प्रयोग है।

४. इसमें छायावादी दुरूह काव्य का उदाहरण द्रष्टव्य है।

५. मानवीकृत प्रकृति पर नारी का यह आरोप एक अतीन्द्रियता का आभास देता है।

(ख) हेर उर पट .... तागी।

शब्दार्थ—उर पट=हृदय के वस्त्र। मराल=हंस। गेह=घर। तागी= पिरोया हुआ। मुक्ता=मोती। चतुर्दिक=चारों दिशाएँ।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के अनुसार।

भावार्थ—वक्षस्थल पर पड़े हुए वस्त्र को देखकर, मुख पर पड़ें हुए बालों को पीछे समेट कर तथा चारों दिशाओं में देखकर रात्रि राजहंस की सी मन्दगति से चली। उसके गले में प्रियतम के प्रेम की जयमाला शोभा दे रही है। वह वासना का मुक्ति रूपी मोती है और त्याग रूपी तागे में पिरोये हुए मोती के समान है।

अलंकार—(१) पदमैत्री—हेर-फेर। (२) छेकानुप्रास—मन्द मराल, त्याग

तागी। (३) रूपक— प्रिय स्नेह की माल, मुक्ति। (४) श्लेष—मुक्ति। (५) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—त्याग। (६) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द।

विशेष—१. प्रकृति में नारी का दर्शन है।

२. प्रकृति पर चैतन्यारोपण है।

३. कोमलकान्त पदावली का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

४. आध्यात्मिकता के प्रति संकेत है।

द्रष्टव्य—१. नायिका के इस गति चित्र में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण द्रष्टव्य है।

२. प्रकृति के पक्ष में नैश जागरण का प्रभातकालीन चित्र है।

३. इस सौन्दर्य-चित्र में वासना की मुक्ति का संदेश है।

४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "इस पद में इस युग के कवि के द्वारा भक्तों की राधा की ही अवतारणा हुई है। यह भी निराला का नारी-दृष्टिकोण स्वस्थ और निर्लिप्त है। ऐसे सूक्ष्म और दिव्य चित्र निराला के एकाध हैं। शब्दों का ऐसा चित्र इस युग में विरल है।"

५. इस कविता की रचना सन् १९२७ में हुई थी।

(५) मौन रही हार

मौन रही हार .... सब कहते शृंगार।

शब्दार्थ—मौन रही हार=हार कर चुप हो गई। शृंगार=कृत्रिम व्यवहार। कण-कण=कंगन की ध्वनि। कंकण=कंगन, हाथों में पहनने का गहना। रव=शब्द, ध्वनि। किंकिणी=करधनी, तगड़ी। नूपुर=घुँघरू। रणन-रणन=पायजेब की ध्वनि। रंकिणी=भिखारिणी।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला कृत 'गीतिका' में संकलित 'राग विराग' के प्रथम चरण में उद्धृत कविता के रूप में है। इसमें कवि ने अपने आपको प्रिय—पथ की एक साधिका के रूप में चित्रित किया है।

भावार्थ—मैं अपने साधना (प्रेम) के पथ पर निरन्तर चलते हुए हार कर चुप हो गई हूँ। मेरे इस मौन को संसार एक बनावटी व्यवहार समझता है।

हाथ के कंगनों की कण-कण ध्वनि बन्द हो गई है, करधनी की किण-किण ध्वनि बन्द हो गई है। घुँघरू का रणन-स्वर भी जैसे मौन हार स्वीकार कर चुका है। परिणामतः प्रिय-पथ की यह साधिका यह सोचने लगी है कि वह वापिस लौट जाए, पथ पर चलना बन्द कर दे। परन्तु मेरे पायल अब भी

बार-बार शब्द करके चलते रहने की पुकार करते हैं। इस प्रकार प्रिय-पथ पर मैं निरंतर चल रही हूँ और मेरा यह चलना भी संसार के लिए एक दिखावा मात्र बन कर रह गया है।

जब मैंने एक बार प्रियतम का आह्वान सुन लिया है, तब फिर लौटकर कहाँ जा सकती हूँ—अर्थात् मेरे लिए अब इस पथ को छोड़ने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। अपने प्रियतम के चरणों के अतिरिक्त अब मुझे कहाँ शरण मिल सकेगी ? आज मेरी हृद्तन्त्री के समस्त तार केवल एक ही स्वर में बोल रहे हैं कि मैं इस पथ पर निरन्तर चलती ही रहूँ। अपनी आन्तरिक प्रकार के अनुसार मैं इस पथ पर निरन्तर आगे बढ़ रही हूँ, परन्तु संसार इसे एक दिखावा मात्र समझता है।

अलंकार—(i) विरोधाभास की व्यंजना—मौन रही—शृंगार।

(ii) छेकानुप्रास—प्रिय-पथ।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—कण-कण, किण-किण।

(iv) वृत्यानुप्रास—कण-कण कंकण, किण किण
किंकणी, रणन-रणन। बार-बार

(v) वक्रोक्ति—लौट कहाँ जाइँ, शरण कहाँ पाऊँ।

(vi) पदमैत्री—बजे सजे

विशेष—(i) संस्कृतनिष्ठ कोमलकांत पदावली दृष्टव्य है।

(ii) ध्वन्यात्मकता—कण-कण........नूपुर।

(iii) संगीतात्मकता का निर्वाह है।

(iv) रहस्य भावना की व्यंजना है।

(६) नयनों के डोरे लाल

(क) **नयनों के डोरे** .... **रोली।**

शब्दार्थ—रति=प्रेम, रति-क्रीड़ा, सम्भोग। दीपित=जगमगाती। कंज=कमल। छवि=सुन्दरता, शोभा। मंजु=सुन्दर, मनोहर। चुम्बन—रोली=चुम्बन रूपी रोली अर्थात् चुम्बनों के कारण उत्पन्न लालिमा।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ निराला जी द्वारा लिखी गई कविताओं के पहले चरण की कविता "**नयनों के डोरे**" से उद्धृत हैं। इनमें रति-रंग की प्रथम अवस्था का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

भावार्थ—मैंने होली खेली है। मेरे नयनों में गुलाल भरा है।

इसी से नयनों में लाल डोरे खिच गए हैं। स्नेहरूपी रंग को घोलकर मैंने अपने प्रियतम की शैया पर रात भर जाग कर संभोग किया है। रात भर जगने के कारण भी आँखें लाल हो रही हैं। दीपक का प्रकाश बराबर प्रकाशित हो रहा था और मैं कमल-मुखी सुन्दर प्रियतम के साथ हँस-हँस कर क्रीड़ा करती रही। और उसी के मध्य मैंने अपने मुख पर प्रिय के चुम्बन रूपी रोली मली अर्थात् प्रियतम ने चुम्बन ले लेकर मेरे मुख को लाल कर दिया।

अलंकार—(i) सभंग पद यमक—लाल गुलाब (ii) पद मैत्री—खेली होली। (iii) पुनरुक्ति प्रकाश—मंजु मुंजु (v) छेकानुप्रास—प्रिय, पति, मली मुख। (vi) अपह्नुति की व्यंजना—प्रथम पंक्ति।

विशेष—कवि ने होली के रंग में प्रिय-प्रिया के रति-सुख का मांसल वर्णन किया है, जो बहुत कुछ रीति-कालीन पद्धति पर है।

(ii) **'मली मुख चुम्बन होली'** में वाग्वैदग्ध्य दृष्टव्य है।

(ख) प्रिय कर कठिन उरोज .... काँटे की होली।

शब्दार्थ—उरोज = स्तन। परस = स्पर्श, छूना। एक वसन = एक ही वस्त्र। अधर दशन = हौंठ काटना, चुम्बन लेना। अनबोली = चुप, बिना बोले हुए।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—प्रियतम ने जब अपने हाथों से मेरे कड़े (पुष्ट) उरोजों को कसकर पकड़ा, तब मेरी चोली कसमसा गई—उसकी तनीं टूट गईं और मैं केवल एक वस्त्र (साड़ी) ही पहने रह गई। मेरे प्रियतम ने हल्की हँसी के साथ, मुस्कराकर मेरे होठों का चुम्बन ले लिया और मैं कुछ भी न बोली—अर्थात् मैंने तनिक भी विरोध नहीं किया।

मेरे प्रियतम ने मुझे अधर उठा लिया। मैं उस समय कांटे पर सधी हुई कली के समान लग रही थी।

अलंकार—सभंग पद यमक—कस कसक।

पदमैत्री—कसक-मसक।

उपमा—कली-सी।

विशेष—(i) उपर्युक्त छंद के समान। (ii) वर्णन संश्लिष्ट है, किन्तु अश्लीलता की सीमा का स्पर्श करता है। सम्भोग शृंगार का यथार्थ वर्णन है।

(ग) मधु-ऋतु रात .... छवि भोली।

शब्दार्थ—मधु-ऋतु = वसन्त ऋतु। चैत और बैशाख में दो महीने वसंत ऋतु के होते हैं, चैत वैशाख को मधु-माधव भी कहते हैं। मधुर = मीठे। अधरों =

होठों। अलक=बाल, केशपाश। पलक=आँखें। रति=कामदेव की पत्नी।

संदर्भ—उपर्युक्त छंद के समान।

भावार्थ—वसंत ऋतु की रात थी। प्रियतम के मधुर अधरों का रस-पान करके मैंने अपनी सुधि-बुधि खोदी। मेरे बाल खुल गये और प्रेम-मद के कारण मेरी आँखें बंद हो गईं। संभोग के श्रम से चरम सीमा का सुख प्राप्त हुआ। रति-सुख प्राप्त करने के उपरान्त मेरी समझ में यही नहीं आता था कि यह सब क्या हुआ। मेरे प्रियतम को मेरा यह भोलापन बहुत ही सुन्दर लगा।

अलंकार—(i) पदमैत्री—मधु-सुध-बुध। (ii) विरोधाभास—श्रम सुख। (iii) विशेषण विपर्यय—छवि भोली।

विशेष—(i) संभोग शृंगार का वर्णन स्वाभाविक संश्लिष्ट किन्तु अश्लील है।

(ii) वर्ण विन्यास दृष्टव्य है। कोमल कान्त पदावली सर्वथा शृंगार रस के अनुकूल है।

(iii) नायिका प्रौढ़ा है।

(घ) **बीती रात** .... **एक ठठोली**।

शब्दार्थ—सुखद=सुख देने वाली। लट=केशपाश। पट=वस्त्र। ठठोली=मजाक।

संदर्भ—इस प्रकार सुख भरी बातों में रात व्यतीत हो गई। प्रातःकालीन शीतल मंद (सुखदायी) पवन चलने लगा। मैं अपने बालों को, मुख पर लटकती हुई लटों को तथा वस्त्रों को सम्भाल कर उठ बैठी। दीपक को मैंने बुझा दिया और मैंने हँस कर कहा—यह एक अच्छा-खासा मजाक रहा।

अलंकार—वृत्यानुप्रास—प्रात पवन प्रिय

पदमैत्री—लट पट, संभाल बाल।

विशेष—(i) लक्षणा—सुखद बातों (ii) नायिका प्रौढ़ा है। (iii) संभोग शृंगार का संश्लिष्ट वर्णन है।

(७) जाग्रति में सुप्ति थी

(क) **जड़े नयनों** .... **सरोवर में**।

शब्दार्थ—विहग=पक्षी। सुरा=शराब, मादक। सुरा-स्वर=शराब की मादकता से भरा हुआ स्वर। क्षुब्ध=आन्दोलित। निद्रित=सोता हुआ। सरोवर=तालाब।

संदर्भ—कवि निराला एक ऐसी नागरी नायिका के सौंदर्य का चित्रण करते हैं जो रात की केलि-क्रीड़ा के उपरान्त नींद की खुमारी में क्लान्त लेटी हुई है।

भावार्थ—उसकी आँखों में स्वप्न बसे हुए हैं। जिस प्रकार रंग-बिरंगे पंखों वाले पक्षी आकाश में उड़ते हैं, उसी प्रकार रंग-बिरंगे स्वप्न उसकी आँखों में मँडरा रहे हैं। उस प्रिया के निश्चल ओठों पर शराब की मादकता में उत्पन्न स्वर अब सो रहे हैं। रात को शराब पी लेने के कारण उसके स्वर में जो एक मादकता आ गई थी, वह अब नहीं दिखाई दे रही है। उसके कभी-कभी बुदबुदाने के कारण उसके शान्त होठ काँपने लगते हैं। वे ऐसे लगते हैं, जिस प्रकार शान्त सरोवर में वायु के झोंके से कभी-कभी एक हल्का-सा कम्पन उत्पन्न हो जाता है।

अलंकार—(१) उपमा—विहग से। (२) उदाहरण की व्यंजना—अन्तिम चरण से। (३) मानवीकरण—स्वर, सरोवर।

विशेष—(१) शैली लाक्षणिक है। (२) रीतकालीन शैली का नायिका-वर्णन है।

(ख) **लाज से .... क्लान्ति थी।**

शब्दार्थ—सुहाग=सौभाग्य, नायक। मान=मान करने वाली। प्रगलभ=गम्भीर। प्रणय=प्रेम। हास=हास्य, हँसी। सजा-जागरण-जग=संसार में जागरण का संदेश देने वाला प्रभात। जाग्रति=जागरण। सुप्ति=निद्रा। क्लान्ति=थकान।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के अनुसार।

भावार्थ—रात में उस लज्जावती नायिका से उसके सौभाग्य के प्रतीक प्रियतम ने उससे प्रणय-निवेदन किया था। वह मान कर रही थी और गम्भीर स्वभाव वाला प्रियतम उससे मधुर शब्दों में प्रणय-निवेदन करता था। रात-भर उसके अधरों पर मधुर और मंद हास खेलता रहा था। अब संसार को जागरण का संदेश देने वाला प्रभात आ गया है, जिसकी लालिमा में रात-भर की केलि-क्रीड़ा से थकी हुई वह सो रही है। इस प्रभात की हलचल में वह कैसी शान्त सो रही है! इस समय प्रभात की जाग्रति में सुप्ति है और साथ ही प्रभात की हलचल में थकान भरी हुई है। भाव यह है कि प्रभातकालीन वातावरण और नायिक की चेष्टाएँ विरोधाभास उत्पन्न कर रही हैं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—पूरे छन्द में ।

(२) विरोधाभास—जाग्रति में सुप्ति, जागरण क्लान्ति ।

विशेष—(१) इस कविता में कवि ने प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया है । नारी का मांसल स्वरूप चित्रित है ।

(२) जाग्रत प्रभात में विशेषण विपर्यय है ।

(३) लाक्षणिक पदावली का प्रयोग द्रष्टव्य है ।

(४) यह कविता सन् १९२२ में 'जुही की कली' के छह वर्ष बाद प्रकाशित हुई थी । "वासन्ती निशा के बाद कवि के जीवन में यह एक नवीन अरुणोदय हुआ और अब वह अपनी रचनाओं में चाँदनी रात के स्वप्नों के बदले नव-प्रभात के रंग भरने लगा ।"

(८) जुही की कली

(क) **विजन-वन-वल्लरी .... पत्रांक में ।**

शब्दार्थ—विजन = निर्जन । वल्लरी = लता । विजन वन-वल्लरी = निर्जन वन में स्थित (उत्पन्न) एक लता । सुहागभरी = सौभाग्यशाली, जिसको प्रियतम का प्रेम प्राप्त है । स्नेह-स्वप्न मग्न = प्रेम के स्वप्न में मग्न । अमल = निर्मल, स्वच्छ, निर्दोष । कोमल-तनु = कोमलांगी । तरुणी = युवती । पत्रांक = पत्र + अंक, पत्ते की गोद ।

संदर्भ—'स्मृति' संचारी के रूप में कवि निराला जुही की कली की रति-क्रीड़ा का काल्पनिक चित्र अंकित करते हुए कहते हैं ।

भावार्थ—निर्जन वन की एक लता पर जुही की कली अपने प्रियतम का प्रेम प्राप्त करने वाली निर्दोष (पतिव्रता) कोमलांगी थकी हुई तरुणी के समान अपने प्रियतम (पवन) के स्नेह के स्वप्न में मग्न आँखें बन्द किए हुए पति की गोद में सो रही थी ।

अलंकार—(१) अनुप्रास—विजन वन-वल्लरी, सोती सुहागभरी, स्नेह स्वप्न । (२) मानवीकरण । (३) रूपक—पत्रांक ।

विशेष—(१) प्रकृति में चैतन्यारोपण है । प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन है । निराला का प्रकृति-प्रेम मुखर है ।

(२) जुही की कली का चित्रण स्वकीया नायिका के रूप में है । सुहाग-भरी और 'अमल' शब्द उसके स्वकीया होने की व्यंजना करते हैं । लक्षणा से 'अमल' का अर्थ 'पतिव्रता' है ।

(३) 'शिथिल' शब्द उसकी 'रतिक्रीड़ा' का व्यंजक है। मानो नायिका रतिक्रीड़ा के पश्चात् पति की गोद में सिर रखकर सो गई हो।

(४) 'स्मृति' संचारी भाव है।

(५) विप्रलम्भ श्रृंगार की 'स्मरण' दशा अभिप्रेत है।

(ख) वासन्ती निशा .... मलियानिल।

शब्दार्थ—वासन्ती=वसन्त की, वसन्त ऋतु। विरह-विधुर=जो विरह के कारण विधुर बन गया है, अर्थात् प्रियतमा से वियुक्त होने के कारण विधुर सदृश विरहताप भोग रहा है। मलयानिल=मलय-पवन, चन्दन के पर्वत से आने वाली सुगन्धित पवन।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—वसन्त ऋतु की सुहावनी रात थी। जुही की कली का प्रियतम जिसे मलयानिल कहते हैं, अपनी प्रियतमा को छोड़कर उसके वियोग में विधुर बना हुआ किसी दूर देश में था।

अलंकार—मानवीकरण।

विशेष—(१) प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में है।

(२) 'स्मृति' संचारी है। निराला जी सोचते हैं कि मेरी पत्नी भी इस जुही की कली की भाँति अपने प्रियतम मुझको स्वप्न में देखती हुई इसी प्रकार आँखें बन्द किए हुए सो रही होगी।

(३) मलयानिल से शीतल मंद सुगन्ध पवन अभिप्रेत रहता है।

(४) चैत्र-वैशाख के महीने 'वसन्त ऋतु' के होते हैं। कामशास्त्र की मान्यता के अनुसार वसन्त ऋतु में पुरुष को विशेष रूप में कामोद्दीपन होता है।

(ग) आई याद .... कली खिली साथ।

शब्दार्थ—कान्ता=पत्नी, प्रियतमा। कम्पित=काँपती हुई। कमनीय=सुन्दर। सर=तालाब। सरिता=नदी। गहन गिरि-कानन=ऊँचे पर्वत और घने जंगल। उपवन=बगीचा। पुंजों=समूहों। कुंजलतापुंजों=कुंजों तथा लताओं के झुरमुटों को। केलि=काम-क्रीड़ा।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—निर्मल चाँदनी से पूर्ण आधी रात के इस मधुर वातावरण को देखकर उसके मन में रसभीनी उन क्रीड़ाओं की स्मृति जाग्रत हो गई, जो उसने अपनी प्रियतमा के साथ की थीं। पवन की संयोग सुख से कम्पायमान सुन्दर

देह-लता की याद आ गई। फिर क्या था ? वह मलयानिल की मन्दगति त्याग कर तीव्रगामी 'पवन' बन गया। वह बगीचों, तालाबों, नदियों, दुर्गम पर्वतों, सघन कुंजों एवं लतापुंजों को पार करता हुआ तत्काल उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ इसने किसी समय खिली हुई कली के साथ क्रीड़ा की थी।

अलंकार—(१) अनुप्रास की छटा—कान्ता कमनीय कम्पित, धुली, आधी इत्यादि। (२) **पदमैत्री**—बिछुड़न मिलन, उपवन, गहन कानन, कुंज, पुंज, कली खिली। (३) '**स्मरण**' अलंकार—आई याद। (४) विरोधाभास—बिछुड़न से। (५) मानवीकरण—मिलन की याद।

विशेष—(१) 'स्मृति' संचारी की व्यंजना।

(२) लक्षणा—चाँदनी की धुली हुई रात।

(३) पहुँचा जहाँ—कवि के मन में इच्छा हुई कि वह किसी तरह इसी समय अपनी प्रियतमा के पास पहुँच जाए। प्रकृति का वर्णन उद्दीपन विभावान्तर्गत है। (४) तुलना करें—

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर।
मन ह्वै जात अजौं बहै, उहि जमुना के तीर। —**बिहारी**

(घ) **सोती थी** .... **कौन कहे ?**

शब्दार्थ—नायक=पवन से तात्पर्य—प्रेमी। कपोल=गाल। डोल उठी=हिल उठी। हिंडोला=हिंडोला, झूला। चूक=गलती। निद्रालस=नींद के कारण आलस्य से भरे हुए। बंकिम=टेढ़े। किंवा=अथवा। मदिरा=शराब। यौवन=जवानी।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान। पवन पहुँच कर कली को चूमता है। परन्तु वह जागती नहीं है।

भावार्थ—विरहातुर पवन अपनी प्रियतमा जुही की कली के पास जिस समय पहुँचा, उस समय वह सो रही थी। ऐसी स्थिति में भला वह अपने प्रियतम के आगमन को क्योंकर जान सकती थी ? पवन ने उसके कपोल चूम लिये, पुलकातिरेक के कारण वह लता की लड़ी हिंडोले की भाँति हिल उठी। इतने पर भी वह जगी नहीं और न उसने अपनी गलती के लिए ही क्षमा माँगी। वह अपने तिरछे (कटीले) नेत्रों को बन्द ही किए पड़ी रही। उसके नेत्र निद्रा के कारण अलसा रहे थे अथवा वह अपनी जवानी के नशे में मतवाली बनी हुई नेत्र बन्द किए पड़ी रही थी—कौन कह सकता है ?

अलंकार—(१) उपमा—जैसे हिंडोल। (२) रूपक—यौवन की मदिरा। (३) संदेह—निद्रालस, किम्वा, प्रिये। (४) वक्रोक्ति—जाने जैसे ? (५) मानवीकरण।

विशेष—१. जुही की कली का वर्णन प्रेम-गर्विता स्वकीया मध्या नायिका के रूप में किया गया है। वह आगतपतिका नायिका है।

२. कम्प एवं रोमांच सात्त्विक अनुभावों का वर्णन है।

३. बंकिम नेत्र—नख-शिख शैली पर सौन्दर्य वर्णन है।

४. डोल, चूक, मूँदना लोक-भाषा के शब्द हैं।

(ङ) **निर्दय** .... **संग**।

शब्दार्थ—निपट=अत्यन्त। हेर=देखकर। सेज=शय्या। नम्रमुखी=नीचे मुख किए। रंग=प्रेम की क्रीड़ा, संभोग।

संदर्भ—कवि जुही की कली-रूपी नायिका और पवन रूपी नायक के संभोग का वर्णन करता है।

भावार्थ—जब कपोलों के प्रेमसिक्त चुम्बन के पश्चात् भी नायिका (जुही की कली) नहीं जगी, तब उस निर्दय नायक पवन ने अत्यन्त निष्ठुरता के साथ लगातार झोंके देकर उसकी सुन्दर सुकुमार देह को झकझोर डाला और उसके गोल-गोल गोरे-गोरे गाल मसल डाले। तब वह युवती चौंक कर जग गई और उसने चकित होकर चारों ओर देखा। अपने प्रियतम को अपनी शय्या के पास खड़ा देखकर वह नीचा मुँह करके हँस पड़ी और प्रियतम के साथ सम्भोग सुख से आप्लावित हो गई।

अलंकार—(१) अनुप्रास—पूरा छन्द। (२) मानवीकरण।

विशेष—१. संभोग शृङ्गार का सटीक वर्णन है।

२. स्वकीया मध्या नायिका है।

३. 'निर्दय' से 'प्रेमी' अभिप्रेत है। लक्षण लक्षणा है।

तुलना कीजिए—

> यौ दलमलियतु निरदई, दई कुसुम सौ गातु।
> करु धरि देखौ धरधरा, उर कौ अजौं न जातु॥ —**बिहारी**

४. नखशिख परिपाटी पर कपोल-वर्णन है।

५. रीतिकालीत प्रभाव मुखर है।

६. एक आलोचक महानुभाव ने लिखा है कि प्रिया के न जागने पर

नायक ने उसको झकझोर कर और उसके गाल मसल कर अपनी झुँझलाहट प्रकट की है। हमारे विचार से बात ठीक उल्टी है। नायिका मध्या स्वकीया है। वह सोने का बहाना लिये हुए पड़ी रहती है, जिससे नायक को मनमानी करने का अवसर मिल सके और उसके शील-संकोच की सीमा भी सुरक्षित बनी रहे। यह ऐसा ही है जैसा यह वर्णन—"जाइबे को सोच जगाइबे की लाज लगी पग नूपुर पाटी बजावन।"

७. आध्यात्मिक दृष्टि से इन पंक्तियों में आत्मा की मुक्तावस्था का वर्णन माना जा सकता है। माया में आबद्ध सुषुप्त आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन दिखाकर परमानन्द का वर्णन अभिप्रेत है।

द्रष्टव्य—१. इस कविता के विषय में निराला जी ने रेडियो वार्त्ता में कहा था कि यह मेरी पहली रचना है। इसका रचना-काल सन् १९१६ है। इसमें छायावादी कविता के तत्त्व प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-प्रेम तथा रहस्य-भावना प्रस्फुटित हैं। छायावाद का युग सन् १९२० से आरम्भ होता है, अतएव हम कह सकते हैं कि एक युग-द्रष्टा प्रकृत कवि की भाँति निराला जी ने छायावादी युग की पूर्व सूचना दी थी।

२. इस कविता में मुक्त प्रेम के साथ-साथ प्रकृति-सौन्दर्य की आराधना भी व्यक्त हुई है।

३. रीतिकाल के कवि नारी में प्रकृति को देखते थे। छायावादी कवियों ने प्रकृति में नारी का दर्शन किया। प्रस्तुत कविता इस प्रवृत्ति का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

४. कुछ आलोचकों ने इस वर्णन में अन्योक्ति के दर्शन किए हैं। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। यहाँ अन्तःप्रकृति का सामंजस्य अभिव्यक्त है। अधिक-से-अधिक इसे प्रतीकात्मक शैली कहा जा सकता है।

५. इस कविता की पृष्ठ-भूमि जानना रुचिकर होगा। एक बार निराला जी स्वयं महिषादल (बंगाल) में थे और उनकी पत्नी मनोहरा देवी उनके गाँव गढ़ाकोला (अवध प्रान्त) में थीं। एक दिन निराला जी अपने स्वभाव के अनुसार आधी रात के समय श्यमशान में घूम रहे थे। चाँदनी खिल रही थी और शीतल-मंद-सुगंध सुरभि बह रहा था। उन्हें अपनी पत्नी की याद आ गई। उसी समय उनकी दृष्टि एक जुही की कली पर पड़ गई। बस कविता की सृष्टि हो गई। जुही

की कली और मलयानिल को काल्पनिक प्रेम-कथा प्रस्तुत कविता 'जुही की कली' के रूप में साकार हो उठी।

कहा जाता है कि मुक्त छंद में लिखी गई निराला जी की यह प्रथम कविता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसको 'सरस्वती' में प्रकाशित करना अस्वीकार कर दिया था। अन्यत्र प्रकाशित होने पर इसने हिन्दी काव्य-जगत में एक हलचल-सी उत्पन्न कर दी। अब 'जुही की कली' एक ऐतिहासिक कविता है।

६. लौकिक शृंगार रस के अतिरिक्त इस कविता का आध्यात्मिक पक्ष भी है। जुही की कली और पवन के माध्यम से आत्मा-परमात्मा के मिलन का वर्णन किया गया है। सुप्ति से लेकर जागरण और मिलन की स्थितियों के वर्णन में आत्मा की रहस्यानुभूति की अवस्था इंगित है। अन्त में आत्म-तल्लीनता का भाव है। "खेल रंग प्यारे, संग" को पढ़ कर कबीर की "एकमेव ह्वै सेज सोने" वाली बात याद आ जाती है। निराला जी ने स्वयं जुही की कली को प्रतीक घोषित करके रूप में अरूप की उपासना की बात कही है; यथा—" 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य में उतारी हुई यह तसवीर है; क्योंकि मन के अन्धकार के बाद है जागरण, आत्म-परिचय, प्रिय-साक्षात्कार, मन का प्रकाश। × × कली सोते से जगी हुई, प्रिय से मिली हुई, खिली हुई, पूर्ण मुक्ति के रूप में, सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या-सी लगती है या नहीं, देखें। रचना में केवल अलंकार, रस या ध्वनि नहीं है, उनका समन्वय है।"

इस कविता में जब स्वयं कवि ने आध्यात्मिक रूपक की बात कही है, तब कुछ भी अन्यथा कथन कहना उचित न होगा। परन्तु हमें तो लौकिक शृंगार-वर्णन के रूप में ही यह कविता विशेष आकर्षक एवं रसमय लगती है। कवि की वह अवस्था भी ऐसी ही थी, जब उसकी भावना लौकिक प्रेम के प्रति ही अधिक उन्मुख रही होगी। अस्तु।

७. काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में इस कविता का अपना विशिष्ट स्थान है। नवीन मुक्त छन्द-विधान, स्वच्छन्द भावनाओं की अभि-व्यक्ति, संकेतात्मकता आदि के कारण यह कविता आचार-अनुशासन-प्रधान द्विवेदी-युगीन आदर्शवादी काव्य के विरुद्ध एक चुनौती बन गई थी। स्वस्थ-मांसल-मादक सौन्दर्य का अपरूण चित्रण इस कविता की बहुत बड़ी विशेषता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस कविता को 'छायावाद' के प्रथम चरण का एक प्रकाश-स्तम्भ माना जा सकता है। इसका चरम विकास 'संध्या सुन्दरी', 'पंच-वटी-प्रसंग', 'राम की शक्ति-पूजा' जैसी रचनाओं में देखने को मिलता है। एक आलोचक के शब्दों में, 'जुही की कली' में कवि की कल्पना बड़े ही आवेग के साथ चलती है। इसमें कल्पना की प्रधानता है। आवेग का स्वरूप सिमट-सिमट कर कल्पना का अनुकरण करता गया है। कल्पना में ग्राह्य शक्ति वर्तमान है। इससे पाठक के मन में ऐसे लोक की कल्पना उत्पन्न होती है, जिससे उसका अन्तर्मन सदैव स्वच्छता और मधुमय लोक में रमता है। इसके नायक और नायिका दोनों स्वप्न लोकवाणी (Fairy world of Romantic day-dreaming) के हैं।

(९) जागो फिर एक बार : १

(क) जागो .... रही द्वार।

शब्दार्थ—अरुण=लाल, सूर्य। अरुण पंख=बालरवि की किरणें। तरुण किरण=नवीन किरण।

संदर्भ—कवि निराला भारतवासियों को जागरण का संदेश देते हैं।

भावार्थ—हे भारतवासियो ! एक बार जागो। हे प्यारे ! आकाश के समस्त तारे तुम्हें जगाते हुए थक कर चले गये, परन्तु तुम नहीं जागे। अब प्रातः-कालीन सूर्य की नवीन किरणें तुम्हारे लिए द्वार खोल रही हैं, अर्थात् तुम्हें जागरण का संदेश दे रही हैं। अब तो एक बार फिर जग जाओ।

अलंकार—पदमैत्री—अरुण किरण तरुण।

विशेष—१. इसमें कवि बताता है कि सकल प्रकृति में जागरण की लहरें तरंगायित हैं। ऐसी स्थिति में भारतवासियों को कर्त्तव्य से विमुख होकर सोते रहना ठीक नहीं है। इस कविता की रचना सन् १९१८ में हुई थी। यह समय लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय प्रभृति राष्ट्रीय नेताओं के नेतृत्व में स्व-तन्त्रता-आन्दोलन का युग था।

२. इस कविता का समाहार आध्यात्मिक पक्ष में किया गया है। इसमें कवि आत्मानुभूति को जागरण का कारण बताता है और वासना के पंथ में लिप्त भारतवासियों को जगाता है।

३. इस छन्द का अर्थ आध्यात्मिक पक्ष में इस प्रकार होगा—अज्ञान की रात में ज्योतिरूपी ज्ञान के प्रतीक समस्त तारागण तुम्हारी मोह निद्रा को

भंग करने का प्रयत्न करते रहे, परन्तु तुम्हारी मोहनिद्रा नहीं खुली। अब आत्मानुभूति जाग्रत होकर तुम्हें नवीन जागरण का संदेश दे रही है। अतएव तुम अपनी सम्पूर्ण मोहनिद्रा को त्याग कर जग जाओ।

४. प्रतीकात्मक शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

५. प्रकृति का उपदेशिका रूप में वर्णन है।

(ख) आँखें .... गुंजार।

शब्दार्थ—अलियों-सी=भौंरों के समान। कोरक=कली। गुंजार=भौंरों का स्वर।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—भौंरों के समान तुम्हारी आँखें न जाने विलास रूपी मधु की किन राहों में अपने पंख बन्द करके फँस गई हैं, अथवा कमल की कलियों में बन्द होकर चुपचाप पड़ी हुई हैं। इसलिए, एक बार फिर जग जाओ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार भौंरा मधुपान में मग्न होकर अथवा कमल-कली में बन्द होकर अपनी गुँजार को भूल जाता है, उसी प्रकार तुम विषयासक्त होकर अथवा स्वार्थान्ध होकर अपने कर्तव्य को विस्मृत कर बैठे हो। इसलिए कवि जनता से कहता है कि तुम अपनी इस विलास निद्रा को त्याग कर चैतन्य हो जाओ और स्वधर्मपालन में प्रवृत्त हो जाओ।

अलंकार--(१) उपमा—अलियों सी। (२) संदेह—अथवा सोई····गुँजार

विशेष—छन्द (क) के समान।

(ग) अस्ताचल .... यौवन-उभार—फिर एक बार।

शब्दार्थ—शशिछवि=चन्द्रमा की चाँदनी। विभावरी=रात्रि। यामिनी-गंधा=रजनी गंधा, रात की रानी नामक फूल की झाड़ी। चकोर-कोर=चकोर की आँखें। कुल=समूह। मद-उर=हृदय में मद की भावना। यौवन-उभार=जवानी की उठान।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—सूर्य ढलकर अस्ताचल पर्वत पर अस्त हो गया है, और रात्रि में छिटकी हुई चाँदनी की शोभा को देखकर रजनीगंधा फूल उठी है। चकोरों की पंक्तियाँ टकटकी लगाए अपने प्रियतम चन्द्रमा की ओर देख रही हैं। अनेक भावों से ओत-प्रोत उनकी आशाएँ मौन भाषा में अपने आपको अभिव्यक्त कर रही हैं और बड़े चाव से चारों ओर एकटक चन्द्रमा को देख रही हैं। ओस की

बूँदों के भार से व्याकुल हुए सारे फूल खिल कर नीचे की ओर झुक गए हैं। मादक उन्माद से पूर्ण कलियों के हृदय में यौवन का उभार आ गया है अर्थात् कलियाँ भी इस उत्तेजनापूर्ण मादक वातावरण में खिल उठी हैं। ऐसे प्रेरक वातावरण में तुम एक बार फिर जग जाओ।

अलंकार—१. सभंगपद यमक—चकोर कोर, व्याकुल कुल।

२. मानवीकरण।

विशेष—छन्द (क) के समान। इस छन्द में यह विशेषता है कि इसमें प्रकृति का वर्णन आलम्बन रूप में भी किया गया है।

जागरण की स्थिति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का तदनुकूल वातावरण भावों में उत्कृष्टता उत्पन्न करता है।

(घ) **पिउ रव .... व्यथा-भार—एक बार।**

शब्दार्थ—पिउ रव=पी-पी की आवाज (पुकार)। विरह-विदग्धा=विरह से दु:खी। चारु=सुन्दर। मन-मिलन की=प्रियतम के साथ मिलन की।

संदर्भ—कवि विरहिणी के माध्यम से सम्पूर्ण दु:खों की मुक्ति के लिए आत्म-जागरण की प्रेरणा देता है—

भावार्थ—पपीहे पीउ-पीउ की वाणी बोल रहे हैं, विरह से दु:खी वधू अपनी शैया पर पड़ी हुई प्रियतम के साथ रात्रि में मिलन की पिछली बातों को याद करती हुई अपनी सुन्दर आँखें बन्द किए पड़ी है। पति की याद करते हुए उसकी आँखों से आँसू बह चुके हैं और इससे उसकी विरह-व्यथा कुछ कम हो गई है। तुम भी अपने विगत का स्मरण करके सम्पूर्ण दु:खों से मुक्ति पाकर जाग जाओ।

अलंकार—१. अनुप्रास—पिउ, पपीहे, प्रिय, विरह विदग्धा वधू।

२. प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की व्यंजना होने के कारण 'समासोक्ति' की व्यंजना है।

विशेष—प्रकृति को उद्दीपन विभावान्तर्गत ग्रहण किया है।

(ङ) **सहृदय समीर .... रही पुकार।**

शब्दार्थ—सहृदय=मित्रवत्, लक्षणा से शीतल और मन्द। समीर=वायु। शयन-शिथिल=सोने से शिथिल बनी हुईं। अलस=आलस्य। ऋजु=सीधा। कुटिल=टेढ़ा। प्रसार-कामी=बढ़ने की इच्छा करने वाले। स्वप्निल=स्वप्न के से। वसन-मुक्त=वस्त्रों से रहित, नंगा। केश-गुच्छ=बालों के

गुच्छे, जटाएँ, वेणी । उभय = दोनों । अरुणाचल = पूर्व दिशा में स्थित एक कल्पित पर्वत कहा जाता है कि सूर्य इसी पर उदय होता है ।

सन्दर्भ—कवि आत्म-जागरण की प्रेरणा देता है ।

भावार्थ—हे प्रिय ! जिस प्रकार शीतल और मन्द हवा क्लांत उदास मन को शान्ति प्रदान करती है, उसी प्रकार तुम भी अपने आँसुओं को पोंछ कर स्वस्थ मन हो जाओ । सोने से शिथिल बनी हुई अपनी भुजाओं को स्वप्निल आवेश से भर कर अपने व्याकुल हृदय पर से वस्त्र हटा दो, जिससे मन की सुप्तावस्था सुखोन्माद में परिवर्तित हो जाए । इस कथन की व्यंजना यह है कि तुम अपनी चेतना पर पड़े हुए निष्क्रियता के इस भार को दूर करके चैतन्य हो उठो । दिव्यानुभूति के द्वारा मानवात्मा में जाग्रति उत्पन्न होगी, इससे मोहनिद्रा सुखानुभूति में परिवर्तित हो जाएगी ।

कल्पना के समान सदा बढ़ते रहने वाले सीधे-टेढ़े बालों के समूह को आलस्य से छूट-छूट कर पीठ पर फैल जाने दो । तुम इस प्रकार तन्मय होकर रति-क्रीड़ा करो कि तुम्हारे तन और मन—दोनों थक जाएँ । इससे तुम्हारी बुद्धि-बुद्धि में, मन-मन में और जी-जी में एकाकार हो उठेंगे । फिर दोनों आत्माओं (स्व-आत्मा और परमात्मा) में एक ही अनुभव प्रवाहित होने लगेगा, अर्थात् आत्म और अनात्म का विभेद समाप्त हो जायगा । मैं खड़ी-खड़ी कबसे तुमको यह जागरण-संदेश दे रही हूँ ! तुम एक वार फिर जाग उठो ।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—सहृदय समीर, शयन शिथिल, कुटिल केश । (२) अनुप्रास—सब सुप्ति सुखोन्माद, सुरभि-सी समीर । (३) पुनरुक्ति-प्रकाश—छूट-छूट । (४) उदाहरण की व्यंजना—समीर जैसे । (५) उपमा—कल्पना से कोमल ।

विशेष—(१) छायावादी वायवी शैली है । (२) दार्शनिक भावनाओं के अन्तर्गत 'अद्वैतवाद' की प्रतिष्ठा की गई है ।

(च) उगे अरुणाचल .... हजार ।

शब्दार्थ—भारती-रति = सरस्वती की प्रेम-भावना । पट = परदा । पक्ष = आधा महीना, पन्द्रह दिन ।

संदर्भ—कवि कहता है कि युगों की निद्रा त्याग कर भारतवासी अब तो जाग जाएँ ।

भावार्थ—अरुणाचल (पूर्व दिशा) में सूर्योदय हो गया है, अर्थात् जागरण की नववेला आई है और कवि के कण्ठ में सरस्वती के प्रति प्रेम-भावना भर गई है। प्रकृति का माया-पट प्रत्येक क्षण परवर्तित हो रहा है। दिन बीता, रात आई; रात बीती, दिन आया। इसी प्रकार संसार के हजारों दिन, पखवारे, महीने और वर्ष व्यतीत होते चले जाते हैं। अब तो एक बार जाग जाओ।

कहने का भाव यह है कि प्रकृति में नित नवीन परिवर्तन होते रहे, समय का चक्र अबाध गति से चलता रहा, किन्तु भारतवासियों के जागने की वेला नहीं आई। वे सो ही रहे हैं। अब तो उन्हें अपनी मोहनिद्रा का परित्याग करके स्वधर्म में प्रवृत्त हो जाना चाहिए।

अलंकार—(१)—छेकानुप्रास—प्रकृति पट। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—क्षण-क्षण।

विशेष—छायावाद की अस्पष्ट भावव्यंजना एवं प्रतीकात्मक शैली द्रष्टव्य है।

द्रष्टव्य—इस कविता में मधुमय वातावरण के परिवेश में भारतवासियों की मोहनिद्रा का सजीव निरूपण किया गया है। इसका जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध गीत 'बीती विभावरी जाग री' से बहुत साम्य है। अन्तर यह है कि 'बीती विभावरी' वाले गीत में सखी या नायिका को जगाने का उपक्रम है और 'जागो फिर एक बार' में आत्मा के जागरण का दार्शनिक आख्यान है। निराला जी के इस गीत में उद्बोधन की गरिमा है, जबकि 'प्रसाद' के जागरण गीत में मादक श्रृंगार की सृष्टि होती है।

इस कविता में दर्शन के माध्यम से जाग्रति का शंख फूँका गया है। दार्शनिकता के पुट के कारण गीत कुछ दुरूह अवश्य हो गया है परन्तु फिर भी यह भावोत्तेजक और प्रभावशाली है। देश-शक्ति का स्वर मुखर है। इस युग में देश भक्ति की तलवार नंगी शमशीर बन गई थी।

(१०) प्रिया के प्रति

(क) **एक बार भी यदि .... कह जाती।**

शब्दार्थ—अजान=अज्ञानी। अन्तर=अन्तर्मन, मन की गहराई। चितवन =दृष्टि। दग्ध=दुःखी। थकी=मुग्ध।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला द्वारा रचित कविता **प्रिया के प्रति** से

उद्धृत हैं। यह कविता निराला जी के कविता-संग्रह परिमल से **राग-विराग** में संकलित की गई है।

कवि प्रियतमा का दर्शन पुनः एक बार पाने की इच्छा व्यक्त करता है।

भावार्थ—हे प्रियतमे। तुम मेरे मन की गहराइयों में समा चुकी हो। यदि एक बार भी तुम मुझ जैसे अज्ञानी व्यक्ति के हृदय से निकल कर सामने आ जातीं और एक बार भी यदि तुम शरीर करके मुझ से यह कह जातीं कि हमारा अतीत कैसा सुखद था और अब विरह के कारण वर्तमान कितना कष्टप्रद है, तो मैं तुम्हारी बात सुनकर चुप रह जाता, तुमसे कुछ भी शिकवा-शिकायत नहीं करता। तुम्हें अपने सामने उपस्थित देखकर मैं केवल तुम्हें आश्चर्य चकित होकर देखता ही रहता। तुम्हें देखकर मेरी दृष्टि ठगी (मुग्ध) सी रह जाती। अपने विरह-व्याकुल हृदय के दुःख भरे अनेकानेक भावों को मैं तुम्हारे सम्मुख केवल अपनी आँखों के द्वारा व्यक्त कर देता—और मुँह से कुछ भी नहीं कहता।

अलंकार—विभावना की व्यंजना—मौन दृष्टि की भाषा कह जाती।

विशेष—(i) लक्षणा—प्राणों की छाया, दग्ध हृदय। (ii) विशेषण विपर्यय—चकित थकी चितवन, व्याकुल भाव। (iii) तुम्हारा प्रकट होना सर्वथा अप्रत्याशित है। यदि कदाचित ऐसा हो जाए, तो मैं हतप्रभ हो जाऊँगा और मेरी वाणी रुद्ध हो जाएगी।

(ख) **तप वियोग** .... **दिखलाता।**

शब्दार्थ—पिष्ट=पिसकर।

संदर्भ—पूर्ववत्।

भावार्थ—हे प्रियतमे। तुम्हारे अप्रत्याशित रूप से साकार हो जाने पर मेरी आँखों की मौन भाषा स्वयं ही यह कह जाती कि तुम्हारे दीर्घकालीन वियोग की अग्नि में तपकर मेरा हृदय कितना अधिक निर्मल हो गया है, तथा कठोर साधना रूपी शिला से पिसकर मेरा प्रेम कितना पवित्र हो गया है। बस, मेरी आँखों की भाषा ही सब कह देती कि मेरा अतीत काल कैसा था और अब वर्तमान में मेरी क्या दशा है। मेरी दशा देखकर क्या तुम्हारा मन व्याकुल होता अथवा तुम मेरे दुःख को देखकर रोतीं ? मेरे विचार से कदापि नहीं ? हे प्रियतमे। मेरी आँखों में एक भी आँसू नहीं आता। अपनी आँखों

की मौन भाषा के द्वारा ही मैं तुम्हारे प्रति अपना लगाव और वियोगादि के फलस्वरूप सदैव के लिए पवित्र बन जाने वाला अपना हृदय तुम्हें दिखा देता।

अलंकार—(i) रूपक—वियोग की ज्वाला, साधना-शिला (ii) विभावना —मौन दृष्टि कहती (iii) वक्रोक्ति—क्या तुम·······रोतीं ?

विशेष—(i) आँखों की मौन भाषा का बहुत ही सशक्त एवं भावपूर्ण वर्णन हुआ है। (ii) उज्ज्वल हृदय, पावन प्रणय=प्रेम का वासना के कर्दम से युक्त हो जाना। प्रेम अपनी चंचल वृत्ति को छोड़कर शांत आराधना के रूप में परिणत हो जाए—यही प्रेम की सफलता है—

विरह अगिन जर कुन्दन होई। निर्मल तन पावै कोई कोई।

(iii) **कैसा हाव**—इसके दो प्रकार अर्थ किए जा सकते हैं—

(i) मेरी दशा कितनी दयनीय हो गई है। तथा

(ii) मेरा प्रेम कितना पारमार्थिक एवं अहेतुकी हो गया है।

पूर्वापर सम्बन्ध से कितना उज्ज्वल हृदय, पावन हुआ प्रणय, चिर-निर्मल अन्तर वाक्यांशों के आधार पर द्वितीय अर्थ ही अधिक संगत एवं चमत्कारपूर्ण प्रतीत होता है।

प्रश्न होगा कि तब क्या तुम व्याकुल होतीं तथा मेरे दुःख पर रोतीं ? का अर्थ क्या होगा ? उत्तर स्पष्ट है। तब क्या तुम यह समझ कर दुःखी होतीं कि हद से गुजर जाने के कारण ही दर्द दवा बन गया है। नहीं, तुम ऐसा कदापि नहीं सोचतीं। तुम वस्तु स्थिति को तत्काल समझ जातीं, तुम तुरन्त यह जान जातीं, कि साधना के द्वारा इसने अपने अहंकार को, स्वार्थ भाव को निश्शेष कर दिया है और यह सदा सर्वदा के लिए निर्मल अन्तर, जाज्वल्यमान हीरा बन गया है। विरह ने दर्द को जगाया, दर्द ने जीव को जगाया और अब जीव पीव रूप हो गया है। अस्तु।

(iii) विरह कठिन साधना शिला से

कितना पावन हुआ प्रणय यह

तुलना करें—

रंग लाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद।
सुर्खरू होता है इंसा ठोकरें खाने के बाद।

(११) बादल—राग—१

(क) **झूम झूम ···· ···· निज रोर।**

शब्दार्थ—घोर=जोर के साथ। अम्बर=आकाश। रोर=कोलाहल। निर्झर=झरना। मरु=रेगिस्तान। तड़ित=बिजली। विजन=निर्जन। गहन=गहरा, घना। कानन=वन।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की कविता 'बादल राग'—१ से ली गई हैं। यह कविता **राग-विराग** काव्य-संकलन से उद्धृत है। इस कविता में कवि ने वर्षा के बादलों का आह्वान किया है।

भावार्थ—बादल को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि—हे बादल तुम झूम-झूम कर तथा जोरदार मधुर ध्वनि करते हुए आकाश पर छा जाओ। अपने कोलाहल के द्वारा तुम आकाश में एक अमर राग का संचार कर दो। हे बादल! झरनों, पहाड़ों और सरोवरों में अपनी झड़ी लगा दो, तुम अपने मधुर स्वरों को रेगिस्तान के वृक्षों में भी भर दो—अर्थात् रेगिस्तान के सूखे वृक्षों को भी तुम हरा-भरा बना दो। सागर में, वायु में, मन में, गहन निर्जन वन में तथा प्रत्येक प्राणी के मुख में अपनी बिजली के समान चकित कर देने वाली गति से अपनी कठोर गर्जना के स्वर से एक अमर रागिनी का संचार कर दो। आकाश को अपने अमर राग से गुंजायमान कर दो।

अलंकार—(i) वीप्सा—झूम-झूम, झर-झर-झर (ii) पुनरुक्ति प्रकाश—गरज-गरज, आनन-आनन (iii) छेकानुप्रास—घन घोर, अमर अम्बर। (iv) वृत्यानुप्रास—झर झर झर (v) सभंग पद यमक—झर निर्झर (vi) दीपक—घर—रोर। (vii) पद मैत्री—मरु तरु, मन विजन गहन कानन, सरित, तड़ित, गति, चकित (viii) विषम—मृदु गरज घोर (ix) मानवीकरण सम्पूर्ण छंद।

विशेष—(i) कवि विश्व के कण-कण के लिए अमरता का वरदान माँगता है। कविता में प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणी की मंगल कामना का भाव स्पष्टतः अभिव्यक्त हुआ है। (ii) चकित पवन में लक्षणा है। (iii) संस्कृत-निष्ठ एवं ध्वन्यात्मक पदावली की छवि द्रष्टव्य है। (iv) भाषा भाव एवं विषय के सर्वथा अनुरूप है: शैली सजग, सरल एवं प्रवाहमयी है।

(ख) अरे वर्ष के .... मह निज रोर।

शब्दार्थ—भैरव=भयानक। नद=बड़ी नदी। गुरू गहन=भारी और घना, अत्यधिक भारी। छोर=किनारा। रोर=शोर, कोलाहल। कलकल=पानी के बहने की मधुर ध्वनि। गगन=आकाश।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—हे बादल ! तुम बरस कर पूरी वर्ष के लिए आनन्द का संचार कर देते हो—(क्योंकि वर्षा से ही अन्न उत्पन्न होता है) अतः तुम अपने रस की धारा को—आनन्द रूपी जल प्रदान करने वाली धारा को, इस पृथ्वी पर बराबर बरसाओ। हे बादल, तू अपने साथ मुझे भी अम्बर की ऊँचाइयों तक ले चल और मुझको भी अपने गर्जन का भयानक क्षेत्र दिखा दे, वह भाग दिखा दे जहाँ पर तेरे इस भयानक गर्जन की सृष्टि होती है। हे मेरे मदमस्त बादल ! सभी के हृदय में उथल-पुथल करके हलचल मचा दे। तेरी धारा से कीचड़ कम हो जाती है तथा बड़ी-बड़ी नदियाँ कुल-कुल कल-कल का शब्द करती हुई बहने लगती हैं तथा ऐसा लगता है कि वे खिलखिला कर हँस रही हैं।

इन बहती हुई नदियों को देखकर हृदय आनन्द से नाचने लगता है तथा सबका मन करता है कि वे भी इसी प्रकार आनन्दपूर्ण प्रवाह से बहें अथवा नदियों के समान ही उमड़ते जीवन-प्रवाह में बहने के लिए वे बेचैन हो उठते हैं। हे बादल ! अपनी इसी मरोड़ भरी गरज में तू मुझे भी आसमान का दूर वाला अदृश्य—किनारा दिखा दे। तू आकाश में अपना अमर शोर भर दे अथवा वह गर्जन भर दे जो जल-वर्षा के द्वारा जीवधारियों को अमर बना देता है।

अलंकार—(i) मानवीकरण—सम्पूर्ण छंद। (ii) पदमैत्री—वर्ष के हर्ष, उथल पुथल, हलचल चलरे चल। मरोर शोर इत्यादि (iii) वीप्सा—बरस-बरस (iv) वृत्यानुप्रास—बरस, बरस बरस (v) श्लेष पुष्ट रूपक—रस-धारा

(i) लक्षणा—वर्ष के हर्ष, भैरव संसार

(ii) ध्वन्यात्मकता—प्रत्यय सम्पूर्ण छंद में—हलचल, खल खल, कुलकुल ककल कलकल

(iii) संगीतात्मकता द्रष्टव्य है। सम्पूर्ण पद में विषयानुरूप पद-विन्यास है जिससे शैली में ओजस्विता एवं प्रवाह आ गया है। स्वर, वर्ण और शब्द मैत्री विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

(iv) प्रकृति का स्वाभाविक वर्णन है तथा चैतन्यारोपण की शैली पर चित्रण का सफल उदाहरण है।

(१२) बादल-राग

(क) तिरती है .... फिर-फिर।

शब्दार्थ—तिरती है=तैरती है, मँडराती है। समीर-सागर=हवा रूपी समुद्र। अस्थिर=नश्वर। दग्ध=जला हुआ, दुःखी। विप्लव=प्रलय। प्लावित =डूबी (डूबा) हुई। रण-तरी=रण रूपी नौका। सुप्त=सोए हुए, अविकसित। भेरी गर्जन=नगाड़े की तेज आवाज।

संदर्भ—कवि बादल के प्रलयंकारी रूप का वर्णन करता है।

भावार्थ—हे प्रलय के बादल ! वायु-रूपी सागर के ऊपर तू सदैव इस प्रकार मँडराता रहता है, जिस प्रकार नश्वर सुख के ऊपर दुख की छाया सदैव घिरी रहती है। भाव यह है कि समीर के समान सुख भी चंचल और अस्थिर होता है। प्राय: सुख के वातावरण पर दुख छा जाता है। ग्रीष्म के भयंकर ताप से दग्ध संसार के हृदय पर निर्दय क्रान्ति के रूप में क्रान्ति का दूत बादल छा जाता है अर्थात् जिस प्रकार क्रान्ति संसार के कष्टों का विनाश करके सुख से पूर्ण एक नवीन वातावरण की सृष्टि कर देती है, उसी प्रकार क्रान्ति का प्रतीक यह बादल भी ग्रीष्मताप से पीड़ित संसार को नव-जीवन का सुख-सन्देश देने आता है। यह बादल युद्ध की उस नौका के समान है, जिसमें युद्ध की आकांक्षाएँ भरी हुई हैं, अर्थात् यह सम्पूर्ण तापों का विनाश करने की दृढ़ आकांक्षा से भरा हुआ है। नगाड़ों के समान इस बादल की गर्जन को सुनकर पृथ्वी के भीतर सोते हुए अंकुर जल-कणों के रूप में नया जीवन प्राप्त करने की आशा से भर-कर अपना सिर ऊँचा करके बादल की ओर ताक रहे हैं।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—समीर सागर, सजग सुप्त। (२) पुनरुक्ति-प्रकाश—फिर-फिर। (३) रूपक—समीर-सागर। (४) श्लेष—जीवन। (५) मानवीकरण—पूरे छन्द में।

विशेष—१. इस कविता की रचना सन् १९२० में हुई थी।

२. आलम्बन रूप में प्रकृति-वर्णन छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। इस कविता में प्रकृति के कोमल रूप के साथ-साथ कठोर रूप का भी वर्णन किया गया है। कवि 'प्रसाद' ने भी कामायनी के अन्तर्गत प्रकृति के प्रलयं-कारी स्वरूप का सजीव चित्रण किया है। इसी प्रकार यहाँ बादल के विप्लव-कारी एवं भयंकर रूप को प्रधानता दी गई है। इसके अतिरिक्त यहाँ बादल के उदार एवं पालनकर्ता रूप का भी चित्रण किया गया है। बादलों के द्वारा ही नवीन आशाओं एवं आकांक्षाओं की भाँति धरती के हृदय में अपना सिर छिपाए

हुए सोने वाले तृणांकुर बाहर प्रकट हो जाते हैं। कृषकों के लिए तो बादल ही सब कुछ है।

३. कवि 'निराला' की क्रान्ति-प्रियता द्रष्टव्य है। सन् १९१७ में एक ओर मध्य यूरोप में 'महायुद्ध' का नरसंहार रूपी ताण्डव हो रहा था और दूसरी ओर रूस की लाल क्रान्ति हुई थी। यह क्रान्ति संसार के श्रमिक वर्ग के लिए नवस्फूर्ति लाई थी। निराला सदृश अनेक क्रान्तिदर्शी युवा कवि इस क्रान्ति द्वारा अनुप्राणित हुए थे।

४. प्रतीकात्मक शैली—बादल क्रान्ति का प्रतीक है।

५. ध्वन्यात्मकता इस कविता की बहुत बड़ी विशेषता है।

(ख) बार-बार .... स्पर्धा धीर।

शब्दार्थ—वर्षण = बरसना, वर्षा। मूसलाधार = घनघोर वर्षा। वज्र-हुँकार = भयानक गर्जना। अशनि = बिजली। पात = गिरना। शापित = गिराया हुआ, पृथ्वी पर पड़ा हुआ। क्षत-विक्षत-हत = घायल किया हुआ, अंग-भंग किया हुआ। अचल = पर्वत। गगनस्पर्शी = आकाश को छूने वाला। स्पर्धा-धीर = स्पर्धा के साथ स्पर्धा (होड़) करने वाला, अर्थात् अत्यन्त धैर्यवान।

संदर्भ—कवि बादल के विप्लवकारी स्वरूप का वर्णन कर रहा है।

भावार्थ—हे विप्लव के बादल ! तुम बार-बार गरजते हो, और मूसलाधार वर्षा करते हो। तुम्हारे घोर और भयंकर गर्जन को सुनकर और वर्षा से मस्त होकर संसार के प्राणी अपना हृदय थाम लेते हैं, अर्थात् भय के मारे सिहर उठते हैं। तुम वीरों के समान अपना मस्तक ऊपर को उठाए हुए उन सैकड़ों पर्वतों पर बिजलियाँ गिराकर उनके अचल शरीरों को विदीर्ण (घायल) कर देते हो, जो ऊँचाई और धैर्य में आसमान की बराबरी करने वाले होते हैं।

अलंकार—(१) अनुप्रास की छटा—प्रायः प्रत्येक पंक्ति में। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—बार-बार, सुन-सुन, शत-शत। (३) पदमैत्री—क्षत-विक्षत, हत शरीर, वीर। (४) अतिशयोक्ति—गगनस्पर्शी। स्पर्धा-धीर। (५) मानवीकरण—पूरे छंद में।

विशेष—१. छन्द (क) की टिप्पणियों के समान।

२. 'अशनिपात से शापित उन्नत शतशत वीर' कहने का भाव यह है कि क्रान्ति के समय बड़े-बड़े गर्वीले वीर धराशायी हो जाते हैं—अर्थात् क्रान्ति की लहर के सम्मुख कोई भी शक्ति टिक नहीं पाती है। निराला क्रान्ति का

आह्वान करते हैं। इस 'गीत' के रचना-काल के समय बंगाल प्रदेश क्रान्तिकारियों की कर्मभूमि बनी हुई थी, इंकलाब जिन्दाबाद अथवा क्रान्ति चिरजीवी के नारों से देश का वातावरण गुंजायमान था।

(ग) **हँसते हैं .... शोभा पाते।**

शब्दार्थ—रव=शब्द। शस्य=अनाज, हरियाली। विप्लव-रव=क्रान्ति की गर्जना।

संदर्भ—कवि विप्लव के बादल को सम्बोधित करता हुआ जनशक्ति की महिमा के प्रति संकेत करता है।

भावार्थ—हे विप्लव के बादल! [जब तुम गरज कर बरसते हो, तब] बड़े-बड़े वृक्ष तो धराशायी हो जाते हैं परन्तु फूलों और बीजों को धारण किए हुए अनाज के छोटे-छोटे अगणित पौधे अपने छोटे-से भार को लिए हुए खिल उठते हैं और हरियाली के रूप में हिलते हुए ऐसे लगते हैं, मानो प्रसन्नतापूर्वक वे हाथ हिला कर तुझे अपने पास बुला रहे हैं। तेरी विनाश-लीला से उन्हें भय नहीं लगता है, क्योंकि क्रान्ति-काल में छोटे पदार्थ ही शोभा पाते हैं।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—हँस-हँस, खिल-खिल। (२) निदर्शना—विप्लव-रव·······शोभा पाते। (३) मानवीकरण—पूरा छन्द।

विशेष—१. छन्द (क) के समान।

२. क्रान्ति सदैव सर्वहारा वर्ग के कल्याणार्थ होती है। सन् १९१७ में होने वाली 'रूस की क्रान्ति' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण थी। इस छन्द में उसी क्रान्ति का आह्वान कवि ने किया है। पूँजीपतियों के प्रतीक पर्वतों को क्रान्ति का प्रतीक बादल वज्रपात द्वारा नष्ट कर देता है और सर्वहारा वर्ग के प्रतीक शस्य-श्यामल खेतों को हरा-भरा एवं उल्लसित बना देता है। इसी को लक्ष्य करके अब 'हरी क्रान्ति' की बात की जाने लगी है। प्रतीकात्मकता छायावादी काव्य-शैली की बहुत बड़ी विशेषता है। 'निराला' जी का सफल प्रतीक-विधान द्रष्टव्य है।

(घ) **अट्टालिका .... ढाँप रहे हैं।**

शब्दार्थ—अट्टालिका=अटारी, लक्षणा से राग-रंग के स्थल। आतंक-भवन=भय को उत्पन्न करने वाले भवन, अर्थात् आतंक के निवास-स्थान। पंक=कीचड़। जल-विप्लव-प्लावन=प्रलय, जल का उमड़ता हुआ समूह

चारों ओर फैल जाता है। क्षुद्र = छोटा। प्रफुल्ल = खिला हुआ। जलज = कमल। रुद्ध = रुका हुआ। क्षुब्ध = दुखी और क्रुद्ध। तोष = सन्तोष। अंगना-अंग = नारी का शरीर। अंक = गोद। धनी = धनवान, पूँजीपति। त्रस्त = भयभीत।

संदर्भ—क्रान्ति का प्रतीक बादल पूँजीपतियों को भयभीत कर देता है। इस छन्द में कवि इसी स्थिति का वर्णन करता है।

भावार्थ—हे क्रान्तिदूत बादल! तेरे आगमन के फलस्वरूप ये अट्टालिकाएँ अब अट्टालिकाएँ—केलि-क्रीड़ा की जगह नहीं रह गई हैं, वे अब भय के निवास-स्थान बन गई हैं, अर्थात् उनमें रहने वाले व्यक्ति अब राग-रंग भूल कर आतंकित हो गए हैं। जल-प्लावन तो सदैव कीचड़ पर होता है और कीचड़ में ही खिलने वाले छोटे-छोटे कमल-पुष्पों से निर्मल जल ढरकता है। भाव यह है कि बादल का जीवन-दान ऊँचे महलों में रहने वालों के लिए नहीं होता है। उसका जल तो कीचड़ सदृश पद दलित सर्वहारा वर्ग के लिए होता है। भीषण जल-प्लावन के समय जिस प्रकार छोटे-छोटे कमल खिले रहते हैं, इसी प्रकार समाज के तथाकथित छोटे लोग रोगों और दुःखों से पीड़ित रहते हुए भी उसी प्रकार प्रसन्न बने रहते हैं, जिस प्रकार कष्ट के समय भी बादलों की सुकुमारता अक्षुण्ण बनी रहती है।

जिनका कोष खाली हो गया है, जिनकी मानसिक शान्ति भंग हो गई है, ऐसे धनिक लोग अपनी शैया पर नारी के अंग से लिपटे हुए डर के मारे काँप रहे हैं। क्रान्ति-रूपी बादल का वज्र-सदृश कठोर गर्जन उन्हें बराबर भयभीत करता रहता है। डर के मारे उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर ली हैं और उनके मुख से आवाज नहीं निकल रही है।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—शैशव, शरीर, अंगना अंग, आतंक-अंक। (२) पदमैत्री—रोक-शोक, रुद्ध, क्षुब्ध, कोश-तोष, आतंक-अंक। (३) अपह्नुति—अट्टालिका नहीं—भवन। (४) मानवीकरण—रे बादल। (५) रूपक—आतंक अंक।

विशेष—(१) प्रतीकात्मक शैली—पंक, क्षुद्र जलज सर्वहारा वर्ग के प्रतीक हैं। (२) विशेषण विपर्यय—आतंक-भवन, शैशव का शरीर। (३) इस छन्द में निराला पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है सर्वहारा वर्ग

के प्रति सहानुभूति के साथ-साथ पूंजीपति के प्रति घृणा एवं आक्रोश स्पष्ट है। पूंजीपति के विनाश का सुख-स्वप्न साम्यवाद का मूल मंत्र है।

'साम्यवाद' का साहित्यिक उच्चार ही हिन्दी में 'प्रगतिवाद' बनकर आया। प्रगतिवाद का युग सन् १९३६ से सन् १९४४-४५ तक माना जाता है। परन्तु हम देखते हैं कि निराला की इस कविता में हमें सन् १९२० में ही प्रगतिवाद के बीज दिखाई दे जाते हैं। काव्य-प्रवृत्तियों की पूर्व सूचना देने में समर्थ होने वाले कवि ही युगद्रष्टा कहलाने के अधिकारी होते हैं। निराला ऐसे ही कवि थे।

(ङ) **जीर्ण-बाहु .... पारावार।**

शब्दार्थ—जीर्ण=पुरानी, शक्तिहीन। शीर्ण=शिथिल, थका हुआ। पारावार=समुद्र। जीवन=जल, जीवन।

संदर्भ—कवि का कहना है कि दुर्बल किसान बादल के स्वागत को प्रस्तुत रहता है।

भावार्थ—हे विप्लव के वीर बादल! शक्तिहीन भुजा और शिथिल शरीर वाले व्याकुल कृषक तेरा आह्वान करते हैं। इन धनिकों ने उसका समस्त जीवन-रस (खून) चूस लिया है। अब तो किसान केवल हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया है। हे जीवन के अथाह भण्डार! किसान तुझे बुला रहे हैं।

अलंकार—मानवीकरण।

विशेष—१. छन्द (क) के समान।

२. साम्यवादी चिन्तन तथा प्रगतिवादी काव्य-प्रवृत्ति मुखर है। किसान के प्रति गहरी सहानुभूति तो है ही; साथ ही पूँजीपति को सार चूसने वाला बताकर, उसके प्रति घृणा उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। इस प्रकार घृणा एवं द्वेष के भाव जाग्रत करके वर्ग-संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करना साम्यवाद का लक्ष्य रहता है।

द्रष्टव्य—१. ध्वन्यात्मकता इस कविता की बहुत बड़ी विशेषता है। भाव और परिस्थिति के अनुरूप शब्द-विधान की दृष्टि से यह कविता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कविताओं के बीच रखी जाने योग्य है। इसमें पद-मैत्री एवं संस्कृत-समास-पद्धति का सुन्दर निर्वाह पाया जाता है।

२. 'निराला' के प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' में बादल-राग-सम्बन्धी छह कविताएँ हैं प्रस्तुत कविता उनमें से अन्तिम (छठी) है। प्रथम पाँच कविताओं

में कवि ने 'बादल' को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। क्रान्तिकारी व्यंजना से युक्त यह कविता 'बादल राग' सर्वाधिक लोकप्रिय रही है।

(१३) गर्जन से भर दो वन

(क) **घन** .... **कानन।**

शब्दार्थ—पादप=पौधे। छवि-निर्भर=सौन्दर्य से भरी हुई। मधु-ऋतु-कानन=वसंत ऋतु की शोभा से युक्त वन।

संदर्भ—कवि निराला बादल से प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे बादल ! तुम अपने गर्जन से वन के प्रत्येक वृक्ष और पौधे के शरीर को भर दो। अब तक अपने सौन्दर्य पर जीवित रहने वाली, अर्थात् सौन्दर्य से भरी हुई कलियाँ भौंरों के गुंजन को सुन-सुन कर नाचती रही हैं। भौंरों ने उनका मधु पी-पीकर वन में वसंत ऋतु की शोभा को स्थायी माना है।

अलंकार—(१) अनुप्रास। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—तरु-तरु, पादप-पादप, गुंजन-गुंजन। पी-पी कर। (३) मानवीकरण—पूरा छन्द। (४) पदमैत्री—घन, गर्जन वन।

विशेष—१. कवि निराला ने प्रकृति के भयंकर रूप का चित्रण किया है।

२. नव-जीवन निर्माण के लिए राग-रंग का वातावरण हितकर नहीं है। इसी कारण कवि मेघ से गर्जन की प्रार्थना करता है। वह उसके प्रलयंकारी रूप में नवीन सृष्टि के निर्माण का दर्शन करता है।

(ख) **गरजो** .... **जीवन।**

शब्दार्थ—मद्र=मन्द, गम्भीर स्वर। भूधर=पर्वत। वज्र=बिजली, लक्षणा से कठोर।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान।

भावार्थ—हे गम्भीर स्वर वाले बादल ! तुम इतनी कठोरता से गरजो कि तुम्हारा स्वर सुनकर प्रत्येक पर्वत भय से काँप जाए और उनसे झर-झर पानी के झरने फूट पड़ें तथा पत्ते-पत्ते में नव-जीवन का संचार हो उठे।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश—भूधर-भूधर, पल्लव-पल्लव, झर-झर झर-झर।

विशेष—(१) छन्द (क) के समान। (२) भाषा की ध्वन्यात्मकता द्रष्टव्य है —'झर-झर झर-झर'।

(१४) जागो फिर एक बार—२

(क) जागो फिर .... आया है आज स्यार ।

शब्दार्थ—सिन्धु-नद-तीरवासी=सिन्धु नदी के किनारे पर रहने वाले, हिन्दू । सैन्धव=सिन्ध देश के । तुरंगों=घोड़ों । चतुरंग चार=चतुरंगिणी सेना, इसमें अश्वारोही, गजारोही, रथारोही और पदाति (पैदल) चार प्रकार के योद्धा होते हैं। वीर-जन-मोहन=वीरों के मन को मोहने वाले । दुर्जय= अजेय, जिसको जीतना कठिन हो । संग्राम-राग=युद्ध-गीत । फाग=होली । स्यार=गीदड़ ।

संदर्भ—भारत के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण कराते हुए कवि निराला जागरण का शंख फूँकते हैं ।

भावार्थ—हे सिन्धु तट के निवासियो ! एक बार फिर जागो । तुम्हीं ने चतुरंगिणी सेना के साथ सिन्ध देश के तीव्रगामी घोड़ों पर सवार होकर महासागर के से गम्भीर गर्जन से युक्त स्वर में युद्ध-गीत गाए थे। गुरु गोविन्दसिंह ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं सवा-सवा लाख शत्रुओं (मुगलों) पर अपने एक-एक सैनिक को बलिदान कर दूँगा, तब अपने आपको गोविन्दसिंह कहलाने का अधिकारी समझूँगा, अर्थात् मेरा जीवन तब सफल होगा, जब मेरे एक खालसा का बलिदान सवा लाख मुगल सिपाहियों को मौत के घाट उतारने का हेतु बन सकेगा । गुरु गोविन्दसिंह का वीरों के मन को मोहने वाला दुर्जय संग्राम का राग गाते हुए किसी ने कहा था कि गुरु गोविन्द सिंह बारह महीने हर समय युद्ध में खून की होली खेला करते थे। ऐसे सिंह वीरों की निवास-भूमि में कायर और धोखेबाज रूपी गीदड़ घुस आए हैं। एक बार फिर जाग जाओ और इन गीदड़ों को मार भगाओ ।

अलंकार—(१) अनुप्रास—गान गाये, चतुरंग चमू । (२) पदमैत्री—समर अमर । (३) पुनरुक्तिप्रकाश—सवा-सवा । (४) उपमा—महासिन्धु से ।

विशेष—१. अतीत के गौरवगान द्वारा उत्कृष्ट उद्बोधन है ।

२. चतुरंगिणी सेना में हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सिपाही होते हैं। इनकी अलग-अलग संख्याएँ भी निर्धारित हैं ।

३. सैंधव तुरंगों पर.......आर्यों ने सिन्ध प्रान्त में ही विदेशी आक्रमणकारियों से जमकर युद्ध किया था और उन्हें परास्त किया था ।

४. सवा-सवा लाख—गुरु गोविन्दसिंह ने सिखों को योद्धा बनाकर

'खालसा' कहा था। उनका कहना था कि एक 'खालसा' सवा लाख मुगल सैनिकों के बराबर है। इसी से एक सिख सवा लाख 'खालसा' कहा जाता है।

५. देश-भक्ति का स्वर मुखर है।

(ख) **सतश्री** .... **सहस्रार।**

शब्दार्थ—भालानल = भाल + अनल = माथे की आग। तीनों गुण = सत्व, रजस् और तमस्। ताप त्रय = दैहिक, दैविक और भौतिक तीन प्रकार के कष्ट। मृत्युञ्जय = मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले। व्योमकेश = शिवजी, महादेव। अमृत = देवता, अमर। सप्तावरण = सात आवरण। शोकहारी = शोक को दूर करने वाले। सहस्रार = सहस्र दलों का एक कल्पित कमल जिसमें चेतना के स्थित होने पर मोक्ष की स्थिति मानी जाती है, यह कमल मस्तक के ऊपरी भाग में स्थित है, हठयोग साधना के अन्तर्गत सहस्रार कमल में चेतना का स्थित होना 'समाधि-दशा' कही जाती है।

संदर्भ—कवि मातृभूमि के हित बलिदान होने वाले सिख वीरों की प्रशस्ति करता हुआ कहता है।

भावार्थ—जब गुरु गोविन्दसिंह 'शत् श्री अकाल' की आवाज लगाकर युद्ध क्षेत्र में उतरते थे, तो उनके मस्तक से आग निकलती थी। उस आग में धक्-धक् करके काल, सत् रज, तम तीनों गुण तथा दैहिक, दैविक एवं भौतिक तीनों प्रकार के कष्ट भस्म हो गए थे। तब तुम अभय हो गए थे। तुम मृत्यु को जीतने वाले शिव के समान अमर देवता थे। तुम योग द्वारा प्रतिपादित सातों आवरणों (चक्रों) को भेद कर तथा समस्त शोक से रहित होकर उस उच्चतम स्थान के अधिकारी बन गये थे, जहाँ पर सहस्रदल कमल स्थित है, अर्थात् तुम सांसारिक शोक-संताप से परे होकर जीवन मुक्त हो गए थे। इसलिए, जाग कर तुम एक बार पुनः उसी शौर्य का प्रदर्शन करो।

अलंकार—(१) वीत्सा—धक् धक्। (२) उपमा—व्योमकेश के समान।

विशेष—१. अतीत के गौरव-गान द्वारा देश-प्रेम का स्वर व्यंजित है तथा देश-हित बलिदान होने की प्रेरणा है।

२. योगशास्त्र एवं काव्यशास्त्र का सफल सामंजस्य है।

३. सप्तावरण—चेतना के सात स्वर हैं। इन्हें विभिन्न प्रकार से अभिहित किया जाता है। हठयोग में इन्हें सात चक्र कहते हैं। राजयोग में इन्हें सात शरीर कहते हैं। ये सप्तावरण मूल प्रकृति या पदार्थ के सात स्वरों

के समकक्ष माने गए हैं—ठोस, द्रव, गैस, ईथर, सुपरईथर, निम्न आणविक, आणविक (अस्तु)।

(ग) सिंही की गोद से .... बार-बार।

शब्दार्थ—सिंही = सिंह पत्नी, शेरनी। मेषमाता = भेड़ की माता। निर्निमेष = लगातार, टकटकी बाँधे। अभिशप्त = अभिशाप को प्राप्त, दुःखों से पूर्ण। तप्त = दुःखी। पश्चिम = यूरोप। उक्ति = कथन।

संदर्भ—कवि 'वीर-भोग्या वसुन्धरा' की दुहाई देकर देशभक्ति का मन्त्र फूँकता है।

भावार्थ—ऐसी शक्ति और ऐसा साहस किसमें है, जो सिंहनी की गोद में से उसके बच्चे को बलपूर्वक ले सके? क्या सिंहनी अपने जीते जी अपने बच्चे को छीन लिया जाने देगी और चुप बनी रहेगी? अर्थात् सिंहनी अपने तन में प्राण रहते हुए किसी को अपने बच्चे से हाथ नहीं लगाने देगी। अरे मूर्खो! केवल भेड़ ही ऐसी होती है जो अपने बच्चे को अपनी गोद में से छिन जाने देती है। वह दुर्बलता के कारण ही अपने बच्चे को छिनते हुए टकटकी लगाए देखती रहती है। अपने पुत्र-वियोग में वह अपने दुखी जीवन को धारण करती हुई जन्म-भर गरम-गरम आँसू बहाती रहती है। परन्तु क्या शक्तिशाली प्राणी इस प्रकार अत्याचार सहते हुए जीवित रहता है? (वह अत्याचार सहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझता है।)

वास्तविकता तो यह है कि संसार में शक्तिशाली ही जीवित रहता है। क्या यह उक्ति पाश्चात्य चिन्तन की देन है? नहीं, यह तो गीता का उपदेश है। गीता के कर्मयोग के उपदेश को बार-बार स्मरण करो और जागकर अपने शक्तिशाली स्वरूप को सम्हालो।

अलंकार—वक्रोक्ति—सिंही·······प्राण।

विशेष—१. लाक्षणिक शैली है।

२. भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था संचार का सबल प्रयत्न है।

३. योग्य·······जीता है—पाश्चात्य चकाचौंध में रहने वाले मानसिक दास कहते हैं कि यह भौतिक विकासवाद के प्रतिपादक डार्विन की उक्ति Survival of the fittest का भावानुवाद है। कवि का कहना है कि इस प्रकार का चिन्तन हमको भारतीय परम्परा से प्राप्त है। वीर भोग्या वसुन्धरा का सिद्धान्त बहुत पुराना है। कौन नहीं जानता है कि श्रीमदभगवद्गीता के

अंतर्गत कर्मयोग का सन्देश कितने सशक्त शब्दों में प्रतिपादित किया गया है; यथा—

हतो वा प्राप्यसे स्वर्गं जित्वा वा भोग्यसे महीम् ।
तस्माद् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चय ।

४. निराला जी का देश-प्रेम मुखर है। भेड़ और बकरी की तरह निरुपाय एवं दीन बनकर विदेशी दासता का अभिशप्त जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मातृभूमि पर शीश चढ़ा देना कहीं अधिक अच्छा है। यही निराला का 'महाप्राणत्व' है।

(घ) **पशु नहीं ···· ···· विश्व भार।**

शब्दार्थ—समरशूर=युद्ध में वीर। समर-सरताज=सर्वश्रेष्ठ योद्धा। क्रूर=कायर। कामपरता=विषयों के प्रति आसक्ति, विलास-प्रियता। बाधा-विहीन-बंध=बन्धनों से रहित। पदरज=पैरों की धूल।

संदर्भ—कवि निराला अतीत के गौरव का स्मरण कराते हुए जन-जागरण का शंख फूँकते हैं।

भावार्थ—हे भारतवासियो! तुम पशु नहीं हो, वीर पुरुष हो। तुम कायर नहीं हो, युद्ध में वीरता एवं शौर्य प्रदर्शन करने वाले हो। हे राजकुमार! हे युद्धवीर शिरोमणि वक्त की बात है कि आज तुम इस प्रकार दब गये हो, अन्यथा तुम तो सदैव स्वतन्त्र रहे हो। तुम उसी प्रकार समस्त बाधाओं से रहित हो जिस प्रकार कविता छन्द के बन्धन से मुक्त होती है। तुम सच्चिदानन्दस्वरूप हो, तुम ब्रह्म-स्वरूप हो। हमारे आर्य ऋषियों की वाणी विश्व के कण-कण में व्याप्त है कि तुम महान् हो, सदा से महान् रहे हो। तुम्हारा यह दैन्य भाव अस्थायी है। यह तुम्हारे स्वभाव में नहीं है—यह तो शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा। तुम्हारी प्रस्तुत कायरता और विलासप्रियता अधिक दिन नहीं रहेगी। तुम तो साक्षात् ब्रह्म हो। समस्त विश्व तुम्हारे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं है। तुम आत्म-स्वरूप का स्मरण करके जाग जाओ और स्वरूपानुसार महान् आचरण में प्रवृत्त हो जाओ।

अलंकार—(१) अनुप्रास—बाधाविहीन-बन्ध। (२) उदाहरण—मुक्त हो······ ज्यों। (३) अतिशयोक्ति—पदरज भर भी·······विश्व भार। (४) पदमैत्री—शूर, क्रूर, बन्ध-छन्द, आनन्द, सच्चिदानन्द, कायरता कामपरता।

विशेष—(१) अद्वैत दर्शन का प्रभाव है। (२) मानव के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन है। (३) छायावाद का स्वच्छन्दतावाद मुखर है। निराला ने सर्वप्रथम कविता को परम्परागत छन्दों के बन्धन से मुक्त करके मुक्त छन्द की रचना की थी। इन छन्दों को कतिपय आलोचकों ने रबड़ छन्द एवं केंचुआ छन्द कहा था। (४) अतीत के गौरव-गान द्वारा नव-जागरण का सन्देश है। वर्तमान के प्रति क्षोभ भी अभिव्यक्त है। देशभक्ति का स्वर सशक्त भाषा में अभिव्यक्त है।

द्रष्टव्य—१. इस कविता की रचना सन् १९२१ में हुई थी। वह गांधीवादी असहयोग आन्दोलन का युग था। बन्धनों को तोड़कर एक ओर फेंक देने की आवाज चारों ओर गूँज रही थी।

२. इस कविता में निराला जी ने शुद्ध-बुद्ध आत्मा की बाधा-विहीनता का वर्णन करते हुए वैदिक आत्मवादी परम्परा के अनुगमन का आह्वान किया है; साथ ही भय, आशंका, दीनता-हीनता एवं विलास-प्रियता से छुटकारा पाने के लिए सशक्त प्रेरणा प्रदान की गई है।

३. इस गीत में निराला जी ने ज्ञान, कर्म और योग के समन्वय द्वारा इतिहास-प्रसिद्ध एवं शास्त्र-सम्मत उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

४. इस गीत की तुलना के लिए प्रसादकृत यह गीत देखें—"हिमाद्रि तुंग श्रृंग पै।"

५. निराला की 'जागो फिर एक बार' हिन्दी काल की देशभक्ति-परक कविताओं में एक श्रेष्ठ कविता है।

(१५) हताश

(क) जीवन .... अभिनन्दन।

शब्दार्थ—चिरकालिक=बहुत समय था। क्रन्दन=रोना। भोर=प्रभात। अन्तर=हृदय। वन्दन=वन्दना। अभिनन्दन=स्वागत।

संदर्भ—कवि निराला जीवन के प्रति अपनी निराशा व्यक्त करते हैं।

भावार्थ—मेरा जीवन बहुत समय से दुःखों से भरा हुआ चला आ रहा है। मेरा हृदय वज्र के समान कठोर है। इसको चाहे जितनी जोर से झकझोर दिया जाए परन्तु इसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अन्धकार-भरी रात्रि समाप्त होकर मेरे जीवन में कभी प्रभात नहीं होगा, अर्थात् मेरा जीवन

सदैव दुःखपूर्ण ही बना रहेगा। क्या इसमें कभी ऐसे दिन आयेंगे, जब मेरे जीवन में सुख आए, मेरी बन्दना की जाए तथा मेरा सत्कार किया जाए ?

अलंकार—(१) उपमा—वज्र-कठोर। (२) वक्रोक्ति—क्या होगी.... अभिनन्दन ?

विशेष—१. कवि के जीवन की निराशा एवं हीनता की सबल अभिव्यक्ति है।

२. निशा, भोर आदिक में प्रतीक शैली का प्रयोग है।

(ख) **ही मेरी .... स्यन्दन।**

शब्दार्थ—अन्तर्धान = छिपा हुआ। जर्जर = टूटा हुआ। स्यन्दन = रथ।

संदर्भ—छन्द (क) के समान।

भावार्थ—मेरी प्रार्थना विफल हो जाए, तो अच्छा है। मेरे हृदयरूपी कमल में भावरूपी जितने भी पत्ते हैं, सब मुरझा जाएँ और मेरा जीवन दुःखपूर्ण हो जाए। मेरे जीवन में निराश संसार की सम्पूर्ण निराशा निवास करे और मेरा संसार विलीन हो जाए, अर्थात् मेरी समस्त भावनाएँ कल्पनाएँ समाप्त हो जाएँ। तब भी क्या ऐसे अन्धकारमय जीवन में मेरा टूटा हुआ जीवन-रथ अटक जाएगा, अर्थात् क्या मैं अपने दुःखी एवं निराश जीवन को भी बेफिक्री के साथ व्यतीत न कर सकूँगा ?

अलंकार—(१) रूपक—हृदय कमल। (२) वक्रोक्ति—अटकेगा जर्जर स्यन्दन।

विशेष—१. कवि की घोर निराशा मुखर है।

२. कविता का रचना-काल सन् १६२२ है।

(१६) स्मरण करते

(क) **प्राण धन .... उतरते।**

शब्दार्थ—प्राणधन = पति। ओत-प्रोत = भरा हुआ। शशि-प्रभा = चन्द्रमा की ज्योति। ज्योत्स्ना = चाँदनी। ज्योत्स्ना-स्रोत = चन्द्रमा।

संदर्भ—कवि निराला विरहिणी के मर्मान्तिक दुःख का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—प्रियतम की याद करते हुए मेरी आँखों से निरन्तर आँसुओं की धारा बहती रहती है। मैं प्रेम-रूपी जल से भरी हुई नदी हूँ और मेरा सागर-रूपी प्रियतम बहुत दूर है। किस प्रकार मिलन हो ? मेरे चन्द्रमा-रूपी नेत्रों से

चाँदनी-रूपी आँसू सदैव निकलते रहते हैं। बादलों की पंक्तियाँ-रूपी मेरे जल-भरे नेत्र हैं जो भावभरे हृदय-रूपी उपवन में सदैव जल बरसाते रहते हैं।

अलंकार—१. पुनरुक्तिप्रकाश—नयन झरते—नयन झरते।

२. सांगरूपक—शशिप्रभा·······उतरते।

विशेष—प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप में है।

(ग) दुःख योग .... भरते।

शब्दार्थ—धरा=पृथ्वी। तापकर=तप्त किरणें।

संदर्भ—छन्द (क) के समान।

भावार्थ—दिन के समय गरम किरणों से दग्ध हो जाने के कारण पृथ्वी तब अत्यन्त दुःखी होकर विकल हो जाती है, उस समय आसमान रूपी उसके नेत्रों से आँसू झर कर उसके सूखते हुए होठों को जल प्रदान करके ठंडक पहुँचाते हैं।

अलंकार—(१) रूपक—गगन-नयन। (२) रूपकातिशयोक्ति—शिशिर।

विशेष—१. छन्द (क) के समान।

२. सामान्यतः कविजन रात्रि समय में विरहिणी की विरह-व्यथा को बढ़ता हुआ देखते रहे हैं। निरालाजी ने दिन की गरमी को यह स्थान प्रदान कर दिया है।

३. तुलना कीजिए—

विरह आग उर ऊपर जब अधिकाइ।
ये अँखियाँ दोउ बैरिन देंहि बुझाइ।

—गोस्वामी तुलसीदास

द्रष्टव्य—कविता का रचनाकाल सन् १९३६ है।

(१७) अध्यात्म फल

(क) जब कड़ी .... वहाँ।

शब्दार्थ—मुक्ति=छुटकारा, जीवन की विषमताओं से छुटकारा। युक्ति=उपाय। चाव=उत्साह।

संदर्भ—कवि निराला कहते हैं कि जीवन का आनन्द उसी को मिलता है जो साहस के साथ जीवन में संघर्षों का सामना करता है।

भावार्थ—दिल को हिलाने वाली कड़ी मार पड़ी, परन्तु मुँह से 'चूँ' भी नहीं निकली। मुसीबतों से छुटकारे का उपाय जब मालूम हो गया, तो मैं

प्रसन्न हो गया । यह उपाय उसी को विदित होता है, जिसमें संघर्ष के प्रति रुचि होती है ।

अलंकार—(१) विशेषोक्ति—कड़ी मारें पड़ी····चूँ भी न कर पाया ।

(२) पदमैत्री—कड़ी-पड़ी, दिल हिल, मुक्ति-युक्ति, मिल खिल, भाव चाव ।

विशेष—१. कोमलकान्त पदावली का माधुर्य द्रष्टव्य है ।

२. उन दिनों हरिऔध ने भी इसी प्रकार के भावों को व्यक्त करते हुए चौपदे लिखे थे ।

(ख) खेत में पड़ गये ···· ···· सम्पदा ।

शब्दार्थ—लता=बेल । भावी=भविष्य की ।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान ।

भावार्थ—मेरे मन-रूपी मन में संघर्ष के भाव की जड़ जम गई । धैर्य-रूपी माली ने उनको आँसुओं रूपी जल से सदैव पुष्ट किया । उसमें आशा भरी सफलता रूपी बेल पल्लवित हुई और उसमें भविष्य के वैंभव रूपी फूल सदैव फूलते हुए दिखाई देते थे ।

अलंकार—(१) साँगरूपक । (२) पदमैत्री—पड़ जड़, गड़, धीर नीर । (३) छेकानुप्रास—सींचा सदा ।

विशेष—पूर्व छन्द के समान ।

(ग) दीन का ···· ···· अंग का ।

शब्दार्थ—दीन=दुखी । रंग=आनन्द ।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—दुखी का तो यह कुसमय ही है जो सुख-समूह के आनन्द को नष्ट कर देता है, अर्थात् दुखी के लिए तो सुख का सवाल ही नहीं उत्पन्न होता है । दुःख तो सम्पूर्ण अंगों एवं वैभव से युक्त राजसी सुखों को भी बड़े ही रहस्यात्मक ढंग से भीतर खून पीता रहता है ।

अलंकार—(१) अनुप्रास—सुख-समाज-सौरभ । (२) पदमैत्री—दीन-हीन, रंग-भंग-संघ, भेद-छेद । (३) मानवीकरण—हीन वक्त ।

विशेष—१. तुलना कीजिए—

फिकर बुरी फाकौ भलौ, फिकर फकीरी होय ।

२. पूर्व छन्द (क) के समान ।

(घ) काल की .... **अकूल में ।**

शब्दार्थ—हूलें=कसक । शूल=काँटे । त्राण=रक्षा ।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—समय के प्रभाव से सब फूल मुरझा गये और दुःख रूपी काँटों की कसक शेष रह गई । इन काँटों रूपी कष्टों का फल हमें आत्मबल के रूप में प्राप्त हुआ । हे मन ! इस अपार संसार सागर में उसी आत्म-बल ने मेरी रक्षा की है ।

अलंकार—पदमैत्री—काल चाल, फूल हूल, शूल मूल, फल बल, प्राण त्राण ।

विशेष—१. लाक्षणिक पदावली का प्रयोग है ।

२. आत्म-बल की महिमा है—

रंग लाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद ।
सुर्ख रू होता है इन्साँ ठोकरें खाने के बाद ।

(ङ) मिष्ट है .... **एक है ।**

शब्दार्थ—मिष्ट=मीठा । इष्ट=चाहा हुआ । नेक=ठीक, सही, श्रेष्ठ । मही=पृथ्वी ।

संदर्भ—कवि निराला ने इन पंक्तियों में जीवन के उदात्त उद्देश्य का प्रतिपादन किया है ।

भावार्थ—आत्मबल-रूपी फल मीठा होता है । परन्तु जो लोग ऊपर से तो शिष्टता बरतते हैं, परन्तु उनका लक्ष्य श्रेष्ठ नहीं होता है, उनको इसकी प्राप्ति नहीं हो पाती है । वे लोग इसके सुन्दर प्रभाव की निन्दा सारी दुनिया में करते फिरते हैं, परन्तु नैतिकतापूर्ण आचरण करने वालों के लिए वह सदैव अखण्डरूप से आनन्दप्रद होता है ।

अलंकार—१. सभंग पद यमक—सरस रस । इष्ट मित्र ।

२. पद मैत्री—मिष्ट, इष्ट, शिष्ट जभीष्ट, स्वाद अपवाद ।

विशेष—आत्म-बल आन्तरिक पवित्रता सापेक्ष है । तुलना कीजिए—

निर्मल मन जो जन मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

× × ×

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी । तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥

× × ×

अति खल जे विषयी बग कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥

× × ×

करि न जाइ सर मज्जन पाना । फिर आवइ समेत अभिमाना ॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा । सिर निंदा करि ताहि बुझावा ॥

—श्रीरामचरितमानस

(१८) अधिवास

(क) **कहाँ** .... **आवेश ।**

शब्दार्थ—अधिवास = निवास-स्थान । **मैं** शैली = व्यक्तिवादी शैली, वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति की शैली ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की कविता **अधिवास** से उद्धृत हैं । इस कविता का संकलन निराला की प्रथम चरण की रचना 'परिमल' में से लेकर **राग-विराग** में किया गया है । कवि अपने निवास-स्थान, अपने असली घर के बारे में जिज्ञासा प्रकट करता है ।

भावार्थ—मेरा निवास स्थान कहाँ है ? प्रश्न है कि कवि की चेतना की गति कहाँ आश्रय प्राप्त करती है ? क्या कहते हो—कि कवि की चेतना का अधिवास वहाँ है जहाँ जाकर समस्त गति रुद्ध हो जाती है । ठीक है, परन्तु तुम ही सोचो कि कवि की चेतना की गति कहीं रुक सकती है ? जब तक कवि की वाणी में करुणा के स्वर—परदु:ख कातरता के स्वर-जगाती रहेगी, तब तक उसकी चेतना का गत्यवरोध सम्भव नहीं है ।

अलंकार—गूढ़ोत्तर—समस्त छन्द ।

विशेष—(i) लक्षणा—करुण स्वर । (ii) व्यंग्य यह है कि कवि की वाणी की सार्थकता करुणा की अभिव्यक्ति में है । इसमें दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति है । (iii) चेतना-विकास की कोई सीमा नहीं है । चेतना का अधिवास परदु:खकातरता है । विश्व 'चेतना अथवा संश्लिष्ट चेतना ही कवि की चेतना का वास्तविक स्वरूप अथवा अधिवास है । (iv) इस कविता में कवि वस्तुतः आत्मालोचन करता हुआ दिखाई देता है ।

(ख) **मैंने मैं शैली अपनायी** .... **गति रुक जाए ?**

शब्दार्थ—मैं की शैली = व्यक्तिपरक शैली । धाय = दौड़कर । निरुपाय = उपाय रहित, विवश ।

संदर्भ—पूर्ववत् ।

भावार्थ—मैंने व्यक्तिवादी अथवा आत्मपरक शैली अपनाई, अर्थात् मैंने अपने व्यक्तिगत सुख-दु:ख को अभिव्यक्त किया। परन्तु जब मैंने अपने एक भाई को दु:खी देखा, तो उसके दु:ख ने मेरे हृदय को प्रभावित किया और तुरन्त ही मेरे हृदय में उसके प्रति करुणा जाग्रत हो गई। मैं दौड़ कर उसके पास गया और मैंने उसको अपने गले से लगा लिया अर्थात् मैंने उसके दु:ख को अपना दु:ख बना लिया। मैं सांसारिक व्यक्तियों के दु:खों में स्वभावत: फँस गया हूँ। ऐसी स्थिति में तुम ही कहो कि मेरे जीवन और भाव-लोक की गति किस प्रकार रुक सकती है।

अलंकार—(i) चपलातिशयोक्ति—दु:ख की छाया—आयी। (ii) वक्रोक्ति—कैसे गति रुक जाए ?

विशेष—(i) शैली वर्णनात्मक हो गई है। (ii) हाथ—पादपूर्णार्थक प्रत्यय है। (iii) फंसा माया—निरुपाय। कवि चाहता तो यह था कि संन्यास ले ले, परन्तु करुणा के कारण संसारियों के प्रति आकर्षित होने के लिए विवश हो गया। इसी को वह माया में विवश फँसना कहता है। भक्त जन भी मोक्ष की कामना न करके लोक-सेवा का वरदान माँगते हैं। वे सायास लोक-सेवा का मार्ग अपनाते हैं, परन्तु निराला जी न चाहते हुए भी लोक-सेवा के मार्ग पर आ गये थे। (iv) कवि अपनी कविता में आने वाले नवीन मोड़ की ओर संकेत करता है। छायावादी कविता आरम्भ में प्राय: व्यक्तिवादी थी, परन्तु धीरे-धीरे उसमें देशभक्ति एवं परदु:खकातरता के भावों का समावेश होता गया।

(ग) उसकी .... त्रास।

शब्दार्थ—करुणाचल=करुणा भरा हृदय। प्रगति=उन्नति, विकास। अनन्त=जिसका अंत न हो। विमर्ष=विचारणा। त्रास=भय।

संदर्भ—पूर्व छंद के समान।

भावार्थ—उस दु:खी भाई की आँसुओं से भरी हुई आँखों का स्पर्श मेरे करुणापूर्ण हृदय ने किया अर्थात् उसके दु:ख को मैंने आत्मसात् करके अपने भाव-जगत में धारण किया। उस करुणा का स्पर्श ही मेरी अनन्त प्रगति का रहस्य है अर्थात् करुणा की अभिव्यक्ति के कारण ही मैं श्रेष्ठ कविता लिख सका हूँ, परन्तु फिर भी मैं अपने भावों को ही सब कुछ नहीं मानता हूँ। यदि कहते हुए यदि अधिवास (आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठा) से मेरा सम्बन्ध विच्छेद हो, तभी मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है।

अलंकार—(i) विशेषोक्ति की व्यंजना—करता मेरी····विमर्ष तथा छूटता—त्रास ।

विशेष—(i) कवि अपनी बौद्धिकता की ओर संकेत कर रहा है । भावुकता उसे करुणा के क्षेत्र में ले जारही है और उसकी चेतना के विकास का मार्ग प्रशस्त कर रही है, परन्तु फिर भी कवि बौद्धिक स्तर पर मूल्यांकन की पद्धति का परित्याग करने के लिए प्रस्तुत नहीं है । (ii) शेष पूर्व छन्दों के समान ।

विशेष—इस कविता में कवि निराला का व्यक्तित्व मुखर है । उनके भावुक एवं बौद्धिक दोनों व्यक्तित्व प्रायः समान ही हैं ।

(१६) ध्वनि

(क) **अभी** ···· ···· **मनोहर ।**

शब्दार्थ—मृदुल=सुन्दर । प्रत्यूष=प्रभात ।

सन्दर्भ—कवि निराला जीवन के प्रति आस्था और दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हैं ।

भावार्थ—अभी मेरे जीवन का अन्त नहीं होगा क्योंकि मेरे जीवन में अभी तो वसन्त रूपी नवीन उत्साह का संचार हुआ है, ये हरे-भरे पत्ते रूपी नवीन भाव तथा कोमल डालियाँ रूपी प्रेरणाएँ तथा कोमल शरीर वाली कलियाँ रूपी आशाएँ अभी-अभी तो प्रस्फुटित हुई हैं ।

मैं स्वप्न रूपी अपना कोमल हाथ फेर कर सोई हुई कलियों में एक मनोहर प्रभात को जगाऊँगा ।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—अभी-अभी, हरे-हरे । (२) रूपक—स्वप्न कर । (३) पदमैत्री—डालियाँ कलियाँ । (४) मानवीकरण—निद्रित कलियाँ ।

विशेष—(१) कोमलकान्त पदावली का प्रयोग है । (२) प्रतीक-विधान है । (३) प्रकृति के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति है । (४) स्वप्न रूपी करों के द्वारा प्रभात जगाने का तात्पर्य यह है कि कवि अपने आदर्श के अनुरूप आचरण करके समाज के दुःख को दूर करके सुख का वातावरण उत्पन्न करना चाहता है ।

(ख) पुष्प-पुष्प .... मेरा अन्त ।

शब्दार्थ—तन्द्रालस = उनींदा, नींद के कारण आलस्य से भरे हुए । अनन्त = भगवान ।

सन्दर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—मैं प्रत्येक फूल रूपी किशोर का उनींदेपन से उत्पन्न आलस्य दूर कर दूँगा । अपने नव उत्साह से प्राप्त होने वाले को लोकमंगल-रूपी अमृत हैं, उससे मैं सबको सिक्त कर दूँगा और फिर उनको वह मार्ग दिखा दूँगा जहाँ परमार्थ स्वरूप भगवान निवास करते हैं । अभी मेरे जीवन का अन्त नहीं होगा ।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश – पुष्प-पुष्प । (२) रूपक—जीवन का अमृत । (३) अनुप्रास—द्वार दिखा दूँगा ।

विशेष – छन्द (क) के समान ।

(ग) मेरे जीवन .... मेरा अन्त ।

शब्दार्थ – कल्लोलों = चंचल लहरों । राग = गीत, मोह । दिगन्त = दिशाएँ ।

संदर्भ = पूर्ववत् ।

भावार्थ—अभी तो मेरे जीवन का आरम्भ ही है । इसमें मृत्यु के लिए स्थान नहीं है । इसमें तो जीवन ही जीवन है, अर्थात् कर्मठता के प्रति जागरूक उत्साह है, और काम करने के लिए अभी तो सारी जवानी पड़ी हुई है । इसी कारण मेरा बालकों जैसा भोला मन स्वर्ण सदृश चमकती हुई किरणों की चंचल लहरों के प्रति आकर्षित होता है । हे बन्धु ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे ही उन गीतों के द्वारा, जिनका पूर्ण विकास होने वाला है—समस्त दिशाओं में (चारों ओर) पूर्ण विकास होगा । अभी मेरा जीवन समाप्त नहीं होने वाला है ।

अलङ्कार—(१) वक्रोक्ति—कहाँ मृत्यु । (२) रूपक – स्वर्ण-किरण-कल्लोलों । (३) सभंगपद यमक—अविकसित, विकसित । (४) विभावना की व्यंजना – अविकसित राग से·······विकसित होगा ।

विशेष—छन्द (क) के समान ।

द्रष्टव्य—कविता का रचना-काल सन् १९२३ है ।

(२०) विस्मृत भोर

(क) जीवन की गति .... कोई वाद-विवाद ।

शब्दार्थ—कुटिल=टेढ़ी-मेढ़ी, जो सीधी-सच्ची न हो। रश्मि=किरण। स्वर्णालंकृत=सुनहरी किरणों से सजी हुई। पुलकाकुल=पुलक से आकुल, रोमांच से उत्तेजित। अलि=भ्रमर, भँवरे। मुकुल=कलियाँ। विपुल=बहुत से। प्रखर प्रपात=तेजी से बहने वाले झरने। अलग विचुम्बित=केशों को छूती हुई। वात=वायु। निरंजन=निराकार।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की कविता **विस्मृत भोर** से संकलित हैं। यह उसके प्रथम दौर की रचना है। इस कविता में कवि अपने जीवन प्रभात का अंकन निराशावादी ढंग पर करता है।

भावार्थ—मेरे जीवन की गति टेढ़ी-मेढ़ी एवं कठोर है। ऊपर से मेरे जीवन को दुःख-निराशा के अन्धकार के जाल ने चारों ओर से घेर रखा है। मैं इसी अंधकार के जाल में उलझ-भटक कर रह जाता हूँ और हे प्रियतम ! मैं तुम्हें प्राप्त नहीं कर पाता हूँ। प्रकाश की सुनहली किरणों से सज्जित एवं प्रकाशमान मेरा बचपन तथा तरुणाई का प्रकाश न जाने कहाँ पीछे छूट गया है, उसकी स्मृति तक विलुप्त होने लगी है। उस जीवन में रोमांचों से उत्तेजित भँवरे, कलियों एवं हिलते हुए पत्तों से युक्त अनेक वृक्ष थे। वे सब सुखदायी स्मृति बन कर रह गए हैं। केशों को स्पर्श करके लहरा देना वायु मेरे चारों ओर व्याप्त था अर्थात् मेरा वातावरण सभी प्रकार से उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द था। उस वातावरण के प्रत्येक कदम पर तुम्हारा एक निर्मल-निराकार (अव्यक्त) आशीर्वाद साथ रहा करता था, जिसमें किसी प्रकार का भय, कोई विघ्न-बाधा और वाद-विवाद नहीं था, वे सब बातें अब केवल एक स्मृति बनकर रह गई हैं।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—अंधतम जाला (ii) पद-मैत्री=चमत्कृत स्वर्णालंकृत। कुल, मुकुल विपुल। भरित सरित। (iii) विशेषण विपर्यय—रश्मि चमत्कृत—नवल प्रभात (iv) छेकानुप्रास—प्रखर प्रपात, वादविवाद। (v) सभंग पद यमक—जगमग जग (vi) पुनरुक्तिप्रकाश—पग-पग।

विशेष—(i) लक्षणा—जीवन की कुटिल गति। (ii) नादयुक्त कोमल-कांत पदावली—रश्मि चमत्कृत, स्वर्णालंकृत। (iii) प्रतीकात्मक शैली—अलि मुकुल, तरु-पात क्रमशः, योगेच्छा, महत्त्वाकांक्षा तथा वैभव के प्रतीक हैं। (vi) ध्वन्यात्मकता—जगमग जग, पग-पग। (v) कवि अपने जीवन के भूले बिसरे

प्रातःकाल को पुनः प्राप्त करने का आकांक्षी है। (vi) कवि अपनी विवशताओं द्वारा पराभूत दिखाई देता है। अब तो कवि के जीवन में दुःख-निराशा का ही अंधकार रह गया है। (vii) कवि ने छायावादी शैली के अनुरूप प्रवृत्ति के माध्यम से अपने जीवन के विगत सुख और वर्तमान दुःख की झांकी प्रस्तुत की है।

(ख) बढ़ जाता .... भूलाभोर।

शब्दार्थ—श्रम=कठोर परिश्रम। कुटिल=टेढ़ा। अधीर=व्याकुल, जिसका धैर्य समाप्त हो गया हो। स्वप्न=कल्पना। तम=अँधेरा। भोर=सुबह, प्रातःकाल। अविराम=लगातार, निरन्तर। हिलोर=लहर। हेर=देख अथवा देखकर।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—यह बड़े ही दुःख की बात है कि मेरे जीवन का प्रत्येक श्वास, जीवन की प्रत्येक गति के भाग में केवल श्रम ही श्रम—कठोर परिश्रम ही रह गया है—मेरे जीवन की प्रत्येक गति कठोर श्रम की दुःखद स्थिति की ओर ही निरंतर बढ़ती जाती है। यद्यपि मेरे मन में अधिक प्राप्त करने की प्रबल आशा रहती है तथापि वास्तविक प्राप्ति बहुत कम हो पाती है। यह स्थिति उपहासजन्य है और मुझे अधीर, अशांत करके मेरे मन में एक कसक सी उत्पन्न कर देती है। मुझे जीवन में केवल अंधेरा ही दिखाई देता है। जीवन एक ऐसे वन के समान बन गया है जिसमें रास्ता दिखाई नहीं देता है, और जिसको पार करने में श्रम ही श्रम है।

सबल कहा जाने वाला विज्ञान भी स्वप्नवत् प्रतीत होता है अर्थात् वह भी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य नहीं रखता है। धर्म अंधकार के समान है तथा दर्शन नींद की दवा के समान। अफसोस है। जीवन में शांति कहीं नहीं है। जिसे हम भोर—आशा की किरण लाने वाला सुखद प्रभात कहते हैं, वह न मालूम कहाँ खो गया है। ऐसी स्थिति में मन में मचलने वाली आशा की लहरों के लिए अवसर या स्थान ही कहाँ है? मेरी प्रत्येक इच्छा निराशा की आह में बदल रही है अर्थात् सुख की इच्छाएँ दुख बनकर सामने आ रही हैं। अतः अब मैं क्या कथन करूँ, किस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा करूँ? हे प्रभो! ऐसी विषम परिस्थितियों में मुझे मेरा भूला-बिसरा बाल्यकाल वापिस दे दो अथवा मुझे ऐसी दृष्टि दे दो कि मुझे निराशा और दुःख के स्थान पर आशा और सुख का दर्शन होने लगे।

अलंकार—(i) वीप्सा—केवल श्रम केवल श्रम। (ii) वृत्यानुप्रास—केवल कर्म कठोर। (iii) छेकानुप्रास—अधीर अशांत, अन्तहीन, अविराम। (iv) विशेषण विपर्यय—अधीर प्रशांत मरोर। (v) पदमैत्री—स्वप्न, दर्शन, विज्ञान। (vi) क्रम—विज्ञान—शांति। (vii) गूढ़ोत्तर—कहाँ—आहों में।

विशेष—(i) जीवन का चित्रण निराशावादी शैली पर है। (ii) सुखद प्रभात व्यतीत हो जाने के उपरान्त जीवन में केवल कठिन परिश्रम एवं निराशा ही शेष हैं। (iii) कवि की कण्ठा मुखर है। (iv) हाय हा—पादपूर्णार्थक प्रत्यय हैं। (v) कवि का आत्म-निरीक्षण दृष्टव्य है। (vi) विज्ञान, धर्म, दर्शन कोई भी जीवन के क्षणों को स्थायी नहीं बना सकते हैं और न जीवन के प्रवाह को रोक ही सकते हैं। (vii) स्वर-मैत्री—दृष्टव्य है। (viii) छन्द अतुकान्त है, परन्तु पद्यात्मकता अक्षुण्ण है। (ix) नयनों में लक्षणा का चमत्कार दृष्टव्य है। यदि बचपन वापिस नहीं आ सकता है, तो बुढ़ापे में ज़िंदादिली के द्वारा बचपन का उत्साह तथा बचपन की निरीहता का अनुभव तो किया ही जा सकता है। (x) इस प्रकार की कविताओं में कवि निराला के जीवन की प्रति-च्छाया बहुत ही उभरे रूप में दिखाई देती है।

(२१) वृत्ति

देख चुका .... **भले गये।**

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की कविता **वृत्ति** से उद्धृत हैं। इस कविता में कवि ने जीवन की अनवरत नश्वरता और निराशा का भावपूर्ण वर्णन किया है।

भावार्थ—मैंने इस जीवन के क्रम को भली प्रकार देखा, परखा और समझा है। जीवन का सत्य मात्र इतना है कि जो भी भले-बुरे, छोटे-बड़े लोग आए, अन्त में सभी यहाँ से चले गये। यहाँ थोड़ी देर के लिए भाषा में—वाणी के द्वारा, अपनत्व प्रकट किया गया, नई-नई अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ की गईं और अन्त में काल के कठोर हाथों द्वारा सब लोग उसी प्रकार मसल डाले गए जिस प्रकार कोमल शाखाओं में उगने वाले कोमल पत्ते पतझड़ में झड़कर नष्ट हो जाते हैं।

जीवन में अनेक प्रकार की चिन्ताएँ और बाधाएँ आती ही हैं वे आएँ—हमें उनका स्वागत करना चाहिए। हमारा हृदय अज्ञान के अंधकार द्वारा

आवृत्त है; चिन्ताएँ जितने प्रकार के भी कठोर बन्धन ला सकती हैं, वे अवश्य लाएँ। हमें उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए। एक अकेले मेरी ही क्या बात है? यहाँ तो आज तक जितने भी लोग आए हैं, सांसारिक चिन्ताओं एवं बाधाओं ने सभी के साथ छल किया है। तभी मेरे समस्त मित्र और शत्रु, जो भी यहाँ आए, उन सबको जाना पड़ा।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—जो-जो, नव-नव।

(ii) उपमा—पल्लव से।

विशेष—(i) कवि के विचार से जीवन नश्वर है तथा छलना मात्र है। (ii) स्थिरता दम्भ मात्र है। काल के गाल में सभी को जाना पड़ता है। (iii) कवि के व्यक्तित्व का प्रतिफलन स्पष्ट है। (iv) **लक्षणा**—निष्ठुर कर, बन्धन निर्दय। (v) कवि ने एक आध्यात्मिक तथ्य का निरूपण यथार्थवादी शैली में बहुत ही सफलता के साथ किया है। इस प्रकार की यथार्थवादी अभिव्यक्ति कबीर में मिलती है। उदाहरणत: "फूला फूला फिरै जगत में रे मन कैसा नाता है" आदि पद।

(vi) **जो जो आये थे चले गये** तुलना करें—

हाय दई! यह काल के गाल में फूल से फूलि सबै कुम्हलाने।
देव-अदेव बली-बलहीन चले गये मोह की हौंस हिलाने।
या जग बीच बचे नहिं मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने।
रूप-कुरूप गुनी-निगुनी जे जहाँ जनमे ते तहाँ ही बिलाने।

(कवि देव)

(vii) **मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे छले गये**। तुलना करें।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद परिहार्ये ऽ र्थै न त्वं शोचितुमर्हसि।

श्रीमद्भगवद्गीता २/२७।

(२२) हिन्दी के सुमनों के प्रति

(क) मैं जीर्ण साज .... **महाराज।**

शब्दार्थ—जीर्णसाज=पुराना साज-समान, छिन्न शोभा वाला। बहुछिद्र =अनेक दोष, बहुत-सी बुराइयाँ। सुदल=अच्छी पंखुड़ियों वाले। सुरंग =अच्छे रंग वाले। सुवास=अच्छी गन्ध वाले। पदतल आसन=आसन के नीचे गिरा हुआ, जिसका वक्त अब बिगड़ गया है। सहज=सुख से।

संदर्भ—निराला जी अपने उपेक्षित जीवन की चर्चा करते हुए हिन्दी के कवियों को हिन्दी-संसार की कृतघ्नता के प्रति सावधान करते हैं।

भावार्थ—निरालाजी हिन्दी के साहित्यकारों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि मैं तो अब एक ऐसा फूल हूँ जो पुराना हो गया है, जिसकी शोभा नष्ट हो चुकी है तथा जिसमें छेद हो गए हैं। तुम लोग उन फूलों के समान हो जिनकी पंखुड़ियाँ सुन्दर हैं, जिनका रंग सुन्दर है तथा जिसमें से मोहक गंध आती है। मैं तो अब उस व्यक्ति के समान हूँ जो अपने उच्च आसन से गिर पड़ने पर सबके पैरों तले रौंदा जा रहा है। आप लोग आसनों पर सुख-पूर्वक विराजमान हैं।

अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है। मैं तो अब पैरों के नीचे बिछने वाला आसन (पैंरपोश) हूँ और तुम लोग सिंहासन पर विराजमान हो।

द्वितीय पंक्ति का लाक्षणिक अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि तुम पार्टीबाज (सुदल) हो, तुम्हारा आजकल खूब रंग (लोकप्रियता) है तथा तुम्हारे पास रहने के लिए अच्छे भवन (सुवास) हैं।

अलंकार—अनुप्रास—सुदल सुरंग सुवास सुमन।

विशेष—(१) प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है। (२) 'महाराज' में तीखा व्यंग्य है। (३) कवि की हीनत्व भावना मुखर है। (४) हिन्दी-संसार की कृतघ्नता के प्रति आक्रोश व्यक्त है।

(ख) ईर्ष्या .... पार्श्वच्छवि।

शब्दार्थ—पार्श्वच्छवि = पीछे की शोभा।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान।

भावार्थ—यद्यपि मैं ही हिन्दी संसार में नव काव्य धारा रूपी वसंत ऋतु को लाने वाला हूँ, तथापि मेरी स्थिति ब्राह्मण-समाज में अछूत के समान हो गई है, और मेरा साहित्य भी पीछे पड़ जाने वाली शोभा—उपेक्षित बन गया है, तथापि मुझे तुमसे कोई ईर्ष्या नहीं है।

अलंकार—उदाहरण—ब्राह्मण-समाज में अछूत पार्श्वच्छवि।

विशेष—१. निराला जी की हीनत्वभावना मुखर है।

२. वह भले ही स्वीकार न करें, परन्तु उनके मन की ईर्ष्या सिर पर चढ़कर बोल रही है; अन्यथा ईर्ष्या की बात ही मुँह पर क्यों आती?

३. इसमें सन्देह नहीं है कि निराला जी ही छायावाद के अग्रदूत थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम नव-स्वरों में, नव-छन्दों में नव-सौन्दर्य का संगीत प्रस्तुत किया था। उन्होंने ही यह संदेश दिया था कि रंग-बिरंगी कान्ति एवं सुगन्ध भरा वसंत आने वाला है। इन पंक्तियों में निराला जी कहना यह चाहते हैं कि नव-काव्य धारा का मार्ग तो प्रशस्त किया उन्होंने और उसके कारण पुष्ट होने वाले वैभव एवं यश के अधिकारी बन गये और लोग। कदाचित् निराला जी भूल गए कि पौधों को लगाने वाला होता है माली, परन्तु उनके फल खाने वाले अन्य लोग ही होते हैं। वह यदि ब्राह्मण और अछूत के स्थान पर जमींदार और किसान का उदाहरण प्रस्तुत करते तो कहीं अधिक उपयुक्त रहता। निराला जी अन्तिम समय तक उपेक्षा भावना से प्रताड़ित बने रहे थे। इसी कारण वह विक्षिप्त भी हो गए थे। पता नहीं अर्थ और यश की यह कुण्ठा उनके भीतर इतनी गहरी क्यों कर बैठ गई थी ?

(ग) तुम मध्य भाग .... रंग-राग।

शब्दार्थ—महाभाग = सौभाग्यशाली। प्रशस्त = विस्तृत, फैले हुए। न्यस्त = नष्ट हुआ, फेंका हुआ। अलि = भौंरा।

सन्दर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान।

भावार्थ—हे महान भाग्यशालियो ! तुम लोग आजकल साहित्यरूपी वृक्ष के मध्यभाग, अर्थात् तने के समान महत्त्वपूर्ण बन रहे हो। तुम्हारा ही आधार पाकर इस साहित्य-रूपी वृक्ष का गौरव बना हुआ है। मैं तो उस पत्र के समान हूँ जिसको पढ़कर फेंक दिया गया हो अथवा मैं उस पुराने पत्ते के समान हूँ जो पुराना पड़ कर वृक्ष की डाली से टूट कर एक ओर उपेक्षित पड़ा हुआ है। तुम उस नव-विकसित फूल के समान हो जिससे नवीन रस प्राप्त करके भौंरे प्रेम-भरा संगीत गुजारते हैं, अर्थात् आज साहित्य-प्रेमी तुमको देखकर नवीन रस की अनुभूति करते हैं और प्रेम-संगीत द्वारा ओत-प्रोत हो जाते हैं।

अलंकार—उपमा—आद्यन्त।

विशेष—(१) पूर्व छन्दों के समान। (२) नवीन उपमानों का विधान द्रष्टव्य है

(घ) देखो .... सम्बल।

शब्दार्थ—अन्तर = हृदय। सम्बल = सहारा।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान।

भावार्थ—परन्तु यह तो भविष्य ही बताएगा कि तुम्हें अपने इस समस्त प्रयत्न का क्या फल मिलता है। क्या यह साहित्य-रूपी फल ऐसा होगा जो काव्य-रसिकों के हृदयों को नितान्त नवीन प्रकार की रसानुभूति द्वारा सिक्त कर सकेगा ? क्या वह काव्य ऐसा होगा जो तुम्हारे हृदय तल की गहराइयों से प्रकट होगा और साहित्य-रूपी वृक्ष को सहारा दे सकेगा, अर्थात् क्या वह स्थायी होगा।

अलंकार—(१) श्लेष—फल। (२) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—'तरु'।

विशेष—पूर्व छन्दों के समान।

(ङ) फल .... **बीज**।

शब्दार्थ—नायाव = अद्वितीय, अप्राप्य। कटु = कड़वा। बीज = जो अभी पल्लवित नहीं हुआ है।

भावार्थ—क्या तुम अपने परिश्रम का वह अद्वितीय फल पुष्ट कर सकोगे जिसमें वृक्ष की भावी परम्परा के बीज निहित होते हैं, अथवा फूल के भीतर स्थित उन रंगीन डोरों के समान ही होकर रह जाओगे जो पराग वितरित करके अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं ? या तुम्हें भी उसी प्रकार त्याग दिया जाता है। मेरा आलोचक तो अभी एक बीज के रूप में है, अर्थात् मेरे साहित्य का वास्तविक मूल्यांकन भविष्य के आलोचक करेंगे।

विशेष—प्रतीकात्मक शैली है। अस्पष्ट भावाभिव्यक्ति के फलस्वरूप कविता दुरूह हो गई है। रंगा धागा से तात्पर्य है शृंगारिक रचनाएँ।

द्रष्टव्य—इस कविता की रचना सन् १९३६ में हुई थी। यह छायावाद का अवसान समय था। सन् १९३७ में प्रगतिवाद का आगमन हो चुका था।

इस कविता में निराला जी ने अपनी अवहेलना एवं उपेक्षा से उत्पन्न मानसिक क्षोभ एवं तिक्तता की अभिव्यक्ति की है। निराला जी सम्भवतः नवीन साहित्यकारों से यह कहना चाहते हैं कि हिन्दी के पाठक बड़े ही कृतघ्न हैं। तुम्हें भी अपने साहित्य का कहीं वैसा ही कटु तिक्त फल न मिले जैसा कि मुझे मिला है। निरालाजी की धारणा थी कि उनके साहित्य के गर्भ में बीज रूप जो नवीन सृजन-शक्ति निहित थी, उसको आलोचकगणों ने कड़वा और त्याज्य समझ कर फेंक दिया था।

(२३) सच है

यह सच है .... **यह सच है।**

शब्दार्थ—अथच = अथवा । क्षार = राख । अविकच = अविकसित, बिना खिला हुआ ।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के कविता-संग्रह **राग-विराग** से संकलित है । इसका शीर्षक है **सच है ।**

भावार्थ—यह एक सर्वमान्य सत्य है कि तुम्हारे द्वारा दिया गया दान ही वास्तविक दान है । उसी के द्वारा हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य का हित-साधन सम्भव हो सकता है। अतः वह दान, तुम्हारे द्वारा दी हुई प्रतिभा वस्तुतः अभिमान की वस्तु है । चाहे वह व्यक्तिपरक ज्ञान ही क्यों न हो, फिर भी वह सच्चे अर्थों में कल्याणकारी है ।

जीवन में अनवरत परिश्रम, संघर्ष करके भी मुझे बारम्बार हार ही प्राप्त हुई है। मैंने जब अपनी हार रूपी धूल में हार का कारण खोजने की चेष्टा की, तो अवमानना या उपेक्षा की धूलि ने उड़कर मेरे सारे कर्मरूप तन को भर दिया । सारांश यह है कि जनता ने मेरी उपेक्षा की और उसको मैंने अपनी हार समझा । मेरे जीवन-रूपी डाली पर सुख-सम्मान रूपी कोई फूल नहीं है । मेरा जीवन और साधना तो अविकसित हैं—यह एकमात्र सत्य है ।

अलंकार—पुनरुक्ति प्रकाश—बार बार, हार हार । **पदमैत्री**—हार क्षार—रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—धूलि ।

विशेष—यह कविता भी **हिन्दी के सुमनों के प्रति** शीर्षक कविता के समान कवि की निराशा को व्यक्त करती है। कवि का क्षोभ मुखर है। कवि के व्यक्तित्व का प्रतिफलन द्रष्टव्य है ।

(२४) युक्ति

काल वायु .... यौवन धूम ।

शब्दार्थ—काल-वायु = समय अथवा मृत्यु की हवा। स्खलित होना = झड़ना, गिरना । कनक = स्वर्ण के । प्रसून = फूल । गत = बीते हुए । राग = प्रेमपूर्ण सम्बन्ध । गतरागों = बीते जीवन के प्रेमपूर्ण सम्बन्ध । सर्वसृजन = सब प्रकार की रचना । तम-कण = दुःख रूपी अन्धकार । यौवन = जवानी । धूम = धूमधाम ।

संदर्भ—यह कविता **युक्ति** कविवर निराला द्वारा विरचित है । इस छोटी सी कविता में कवि जीवन व्यापी नश्वरता और निराशा को व्यक्त करता है ।

भावार्थ—क्या कालरूपी वायु के झोकों से ये सुनहले फूल नहीं झड़

जाएँगे ? क्या यौवन की धूमधाम—ये जोशेजवानी—हमारी आँखों पर हमेशा विचरण करती रहेगी ?

मेरे जीवन के समस्त प्रेमपूर्ण सम्बन्ध समाप्त हो गए हैं, और इससे मेरा हृदय सूना हो गया है, फिर भी मेरे जीवन का प्रत्येक पल सुखदायी है। यह सुखानुभूति मेरे जीवन में यौवन के प्रभाव को भी पूर्ण कर देगी, क्योंकि मन ही तो सब प्रकार के सुख-दुःख की रचना करता है।

मोह के कारण हमारा पतन होता है। उस पतन में हम लोग दुःख और निराशा रूपी अन्धेरे के कणों को गले लगाए रहते हैं। तब फिर यदि हम चाहेंगे तो यौवन की यह धूमधाम ऐसी ही सदैव क्यों नहीं बनी रह सकती है ?

अलंकार—(i) रूपक—सम्पूर्ण छंद। (ii) वक्रोक्ति—प्रथम, द्वितीय एवं अन्तिम चरण। (iii) विरोधाभास—सूना अन्तर—तब भी सुखकर।

विशेष—(i) इस कविता में कवि निराला का आशावादी स्वर मुखर है।

(ii) कवि प्रश्नात्मक शैली में, वक्रोक्ति अलंकार के माध्यम से यौवन की धूमधाम को अस्थायी बताता है, परन्तु "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत" को लक्ष्य करके कहता है कि यदि मन स्वस्थ हो, तो फिर जीवन में जवानी ही जवानी है। दर्शन भी यही कहता है कि संसार हमारे मन की सृष्टि का ही नाम तो है। अस्तु।

(२५) परलोक

नयन मुंदेंगे .... **आलिंगन ?**

शब्दार्थ—पुलकित=रोमांचित। प्लुत=ढका हुआ। प्यालाकर्षण=जीवन रूपी प्याले का आकर्षण। विद्युत=बिजली। अतिहत=बाधित, बाधापूर्ण। अप्रतिहत=बाधा-रहित, अबाध।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला विरचित **परलोक** शीर्षक कविता है। जीवन में पीड़ित रहने पर भी कवि परलोक में प्रिय के दर्शन एवं सामीप्य-लाभ की आशा करता है।

भावार्थ—हे हमेशा से मेरे प्रिय ! क्या आप मरने पर ही परलोक में ही मुझे दर्शन देंगे। सैंकड़ों, हजारों जीवनों से रोमांच उत्पन्न करने वाले तथा व्यापक आकर्षण के केन्द्र, ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी मनोकामना मरने के बाद ही पूर्ण होगी। प्रिय के चरणों की धूलि मृत्यु पर्यन्त स्वरमय (प्रेरणाप्रद) रहेगी। क्या मैं प्रिय में उसी प्रकार समा जाऊँगा, जिस प्रकार बिजली बादल

में समा जाती है ? अनेक बाधाएँ रहते हुए भी बिना किसी विरोध के क्या मुझे प्रिय का आलिंगन सुलभ हो सकेगा।

अलंकार—विरोधाभास—अंतिम चरण।

विशेष—(i) लक्षणा—पूरे छन्द में। (ii) लौकिक प्रेम का पारलौकिक प्रेम में पर्यवसान है। लौकिक प्रेम की निराशा भी अभिव्यक्त है।

(२६) पतनोन्मुख

हमारा **दिनमान**

शब्दार्थ—पतनोन्मुख = गिरने वाला। दिनमान = सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय का मान। गरल = विष। अनल = आग। हिम-हत = पाले का मारा हुआ। पल्लव-प्रण = प्राण रूपी पत्ता।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ निराला कवि विरचित कविता **पतनोन्मुख** से उद्धृत हैं। इसमें क्षण-क्षण क्षय होने वाले जीवन की दर्द भरी कहानी कही गई है।

भावार्थ—हमारा जीवन रूपी समय डूब रहा है अर्थात् जीवन समाप्त हो रहा है। हे समय रूपी सूर्य ! तुम मेरे जीवन में प्रत्येक क्षण, प्रत्येक दिन तथा प्रत्येक पास विष और अग्नि ही उगलते रहते हो। उस विषैली अग्नि में असफलताओं से भरा यह जीवन निरन्तर जल रहा है। जिस प्रकार पाले के मारे हुए पत्ते पीले पड़ने से (समय से) पहले ही नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार मेरा जीवन भी दुःख एवं निराशाओं के कारण असमय ही जलकर निष्क्रिय, चेतना रहित, होता जा रहा है। इस जीवन रूपी वृक्ष की डालियों से प्राण-रूपी पत्ते अब झड़ ही जाना चाहते हैं। इस प्रकार हमारे जीवन का सूर्य प्रतिपल अस्ताचल की ओर बढ़ता जा रहा है।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—दिनमान। (ii) पुनरुक्ति-प्रकाश—मास-मास, दिन-दिन। (iii) रूपक—गरल-अनल, पल्लव-प्राण। (iv) उपमा—हिमहत पातों सा।

विशेष—(i) लक्षणा का प्रयोग द्रष्टव्य है।

(ii) जीवन की निराशाजन्य वेदना मुखर है। कवि के दुःखी और निराश व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट है।

(iii) इस कविता में इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया गया है कि दुःख और निराशाएँ जीवन को असमय में ही नष्ट कर देती हैं।

(२७) प्याला

(क) **मृत्यु-निर्माण** .... **मर हुए अमर ।**

शब्दार्थ—निर्माण = सृष्टि । द्वन्द्व = संघर्ष । स्वच्छन्द = बन्धन रहित । तरंगों = इच्छाएँ । जंग = युद्ध, जीवन-संग्राम ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की कविता **प्याला** से उद्धृत हैं । कवि कहता है कि जीवन में संघर्ष करने वाले ही अमर होते हैं ।

भावार्थ—मृत्यु और सृष्टि, प्राणों का संचार और नाश, यही जीवन का क्रम है । इस शरीर रूपी प्याले को जीवन-मरण के चक्र से युक्त कौन कर देता है ? इस जीवन में मृत्यु अनेक बाधाएँ उत्पन्न करती रहती है तथा इस जीवन में संघर्ष के अनेक अवसर आते हैं । परन्तु स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति अनेक प्रकार की आकांक्षाएँ लेकर उन्हें पार कर जाते हैं । जो जीवन-संग्राम में विजयी होते हैं । वे मर कर भी अमर हो जाते हैं, ऐसे व्यक्तियों का शरीर भले ही नष्ट हो जाता है, परन्तु उनका नाम सदैव बना रहता है ।

अलंकार—(i) पदमैत्री—निर्माण, प्राण । (ii) पुनरुक्तिप्रकाश—भर-भर । कर कर । (iii) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—प्याला । तरंगों । (iv) गूढोत्तर—कौन देता । (v) सभंग पद यमक तथा विरोधाभास—मर हुए अमर ।

विशेष—(i) स्वच्छन्दता का प्रतिपादन है । छायावादी काव्य की मूल प्रेरणा स्वच्छन्दता ही थी ।

(ii) अनवरत संघर्ष में ही जीवन की जीत और अमरता है ।

(ख) **गीत अनगिनित** .... **हैं झर-झर ।**

शब्दार्थ—अनगिनित = जिसकी गणना न हो सके, बहुत अधिक । नव = नवीन । विविध = नाना प्रकार के । शृंखल = बंधन । शत = सैकड़ों । मंगल = शुभ । वन्द = बन्धन । विपुल = वहुत से, अनेक । पुलकित = रोमांचित, प्रसन्न ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ निराला कृत कविता **प्याला** से संकलित हैं । कवि नित्य नवीन गीतों की रचना करता रहता है ।

भावार्थ—नित्य नवीन छन्द, विविध प्रकार के नियमबद्ध छन्दों में सैकड़ों मंगल गीत, तथा अनेक प्रकार की रसानुभूति से पूरित अगणित गीत मधुर एवं कोमल स्वरों में नित्यप्रति इस जीवन में निरन्तर प्रवाहित होते रहते हैं ।

अलंकार—छेकानुप्रास—नित्यनव, पुनरुक्ति प्रकाश—झर-झर, वृत्यानुप्रास—झरता झर-झर ।

विशेष—(i) कवि का कहना है कि नित्य नए-नए अनेक गीतों की रचना करता रहता है।

(ii) पद-विन्यास की संगीतात्मकता द्रष्टव्य है।

(iii) कवि की व्यक्तिवादिता मुखर है। **नव छन्द** घोषित करता है कि कवि निराला ने प्राचीन मान्यताओं को अस्वीकार करके नवीन छन्दों में कविता करना आरम्भ कर दिया था।

(ग) नाचते ग्रह .... समर।

शब्दार्थ—पलक में=पल भर में। धरा=धरती। गुणत्रय=तीन गुण-सत्त्व, रज तथा तम। समर=युद्ध, संघर्ष।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—निरन्तर चलने वाले जीवन-चक्र के प्रति संकेत करते हुए कवि निराला कहते हैं कि ग्रह और तारागण के समूह आकाश में निरन्तर घूमते रहते हैं, वे पल भर में ऊपर-नीचे होते रहते हैं, यह धरती भी अपने चंचल स्वभाव के कारण निरन्तर घूमती रहती है। यह त्रिगुणात्मक काल चक्र इस जीवन संग्राम में भय रहित होकर घूमता रहता है, अर्थात् जीवन का संघर्ष चलता रहता है, परन्तु तीनों गुणों आरोह-अवरोह के चक्र में निरन्तर बरतते रहते हैं।

अलंकार—छेकानुप्रास—पलक प्रतिपल, घिर घूम।

(घ) काँपता है .... सागर।

शब्दार्थ—वासंती=वसन्त ऋतु वाली। वात=वायु। कुसुम-वसन=फूलों के डसने से। तरुपात=वृक्षों के पत्ते। विधुप्लावित=चन्द्रमा की चाँदनी द्वारा सिंचित। मधु-रात=चैत्रमास की रात। पुलकप्लुत=रोमांचित। आलोड़ित=मथित, हिलोरित। सागर=समुद्र।

संदर्भ—ऊपर के समान।

भावार्थ—वसंत ऋतु की मादक हवा चारों ओर से कम्प उत्पन्न करती है। खिले हुए पुष्प काटते हुए प्रतीत होते हैं और वृक्षों के पत्ते आनन्दातिरेक से नाचते रहते हैं। फिर प्रातःकाल हो जाता है, चन्द्रमा की चाँदनी से सिंचित रात्रि व्यतीत हो जाती है। सागर भी रोमांचित एवं मथित होता है।

अलंकार—(i) विशेषण विपर्यय—प्रथम दो पंक्तियों में।

(ii) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द।

विशेष—(i) इस छन्द में प्रकृति के उद्दीपक रूप का वर्णन है। वसन्त के चैत्रमास की प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ कामोद्दीपक है। हवा कम्प सात्त्विक अनुभव उत्पन्न करती है, पुष्प विरह भावना को अत्यधिक तीव्र करते हैं। इसमें जड़ पदार्थ भी काम द्वारा पीड़ित हैं। सागर को भी मन्मथ मथ डालता है और अपने फेनों के रूप में वह अपना पुलक अनुभव व्यक्त करता है।

(ii) प्रकृति का इस प्रकार व्यापक कामोद्दीपक प्रभाव रीतिकालीन कवियों की याद दिला देता है। प्रसाद ने भी लिखा है—"पत्र लता पड़ी सरिताओं की शैली के गले समरथ हुए इत्यादि।"

(iii) ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अपने जीवन के आनंद को प्रकृति के आनंद के साथ सम्बद्ध करके उसका सजीव चित्रण किया है।

(२८) रे कुछ न हुआ, तो क्या ?

(क) रे कुछ न हुआ .... तो क्या ?

शब्दार्थ—धोका = धोखा। छाया = माया, भ्रम।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला कृत कविता रे कुछ न हुआ तो क्या ? कविता से ली गई हैं। इस कविता में कवि ने जीवन की वास्तविकता के सम्मुख अपनी विवशता व्यक्त की है।

भावार्थ—रे मन, यदि तू कुछ कर न सका, तो क्या किया जाए ? यह संसार यदि एक धोखा है, तो भी रोने से इसमें क्या मिलने वाला है ?

यह समस्त संसार माया की छाया के समान है। इस छाया के प्रभाव के कारण ही आकाश नीले रंग वाला दिखलाई देता है। इसमें घटना, बढ़ना, जाना-आना निरन्तर लगा रहता है। परन्तु इससे क्या होता है ? और किसी को यह भी पता नहीं है कि इस जीवन के उपरान्त क्या होगा। यह संसार यदि सारतः कुछ भी न हो, तबभी क्या होता है ?

अलंकार—(i) गूढ़ोत्तर—प्रथम दो एवं अन्तिम दो पंक्तियाँ।

(ii) यमक—छाया से छाया।

विशेष—(i) संसार भ्रम की छाया है। इस छाया के संसार को जानना बहुत दुस्तर है इसमें कुछ भी करना और न करना बराबर है। अतः सफलता न मिलने पर अफ़सोस करने की आवश्यकता नहीं है।

(ii) प्रकारान्तर से कवि की निराशा की अभिव्यक्ति है।

(ख) चलता तू थकता तू .... हुआ तो क्या ?

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू इस संसार के काम धन्धों में लगा रहता है और थकता रहता है । कई बार तुझे रुकना भी पड़ता है, परन्तु तू फिर कुछ न कुछ करने के लिए बक-बक करने लगता है । जब तू जानता है कि इस प्रकार का व्यवहार करना मानव की सहज स्वाभाविक दुर्बलता है, तब फिर तू इसके विरुद्ध कर भी क्या सकता है ? जो पहले से धुला हुआ है, सारहीन है, उसके प्रति तू कर भी क्या सकता है ? अतएव यदि तू जीवन में कुछ न कर सका, तो क्या हुआ, क्योंकि यहाँ करने से कुछ भी हाथ आने वाला तो है नहीं ।

अलंकार—वक्रोक्ति एवं गूढोत्तर की व्यंजना—सम्पूर्ण छन्द ।

(२९) कौन तम के पार ?

(क) कौन तम के पार .... धार (रे कह) ।

शब्दार्थ—अखिल = सम्पूर्ण । पल = समय, जीवन । स्रोत = उद्गम ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की कविता **तम के पार** से ली गई हैं । इस कविता में कवि सर्वव्यापी परम तत्त्व के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है ।

भावार्थ—मुझे कोई बतादे कि दृष्टिपथ के पार वह कौन है, जो समस्त जीवन का उद्गम स्थल है तथा जो जल-धारा के समान जग को निरन्तर गतिशील रखता है तथा जो आकाश से बादलों की जल धारा की वर्षा करता है ।

विशेष—(i) इसमें रहस्यभावना की अभिव्यक्ति है । कवि अज्ञात के प्रति जिज्ञासा प्रकट करता है ।

(ii) दृष्टि पथ तक तो प्रकाश है । जहाँ दृष्टि रुक जाती है, वहाँ व्यावहारिक दृष्टि से अंधकार ही कहा जाता है । इसी से **'तम के पार'** का प्रयोग किया गया है ।

(ख) गन्ध व्याकुल .... बारम्बार (रे, कह) ।

शब्दार्थ—उर-सर = हृदयरूपी सरोवर । कच = केश । स्पर्श-शर = स्पर्श रूपी वाण, स्पर्श की तीव्रता । सर = सरोवर अथवा सरोवर का पानी ।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—जिसके हृदय रूपी सरोवर से जीवन रूपी कमलों की व्याकुल करने वाली सुगन्ध हर समय फैलती रहती है, जिसके कमल रूपी मुख पर

लहर-रूपी केश सदैव फैले रहते हैं, भ्रमरों की गुंजार जिसके हर्ष को प्रकट करती है, जिसका स्पर्श रूपी वाण जीवन-जल में बारम्बार प्रतिध्वनित होता है, वह कौन है ?

अलंकार—(i) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द । (ii) रूपक—उर-सर, लहर-कच, कमल-मुख, हर्ष-अलि, स्पर्श-शर । (iii) विशेषण विपर्यय—व्याकुलगंध ।

विशेष—(i) स्वर-वर्ण मैत्री दृष्टव्य है ।

(ii) रहस्यभाव की अभिव्यक्ति है । अज्ञात के प्रति जिज्ञासा मुखर है ।

(iii) विभिन्न रूपों, शब्दों आदि में उसी एक ही सत्ता का आभास पाकर कवि चमत्कृत हो उठता है । तुलना करें—

नयन जो देखा कमल भा, निर्मल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन ज्योति नग हरि ।।

—जायसी

(ग) उदय में .... **असार (रे, कह)** ।

शब्दार्थ—तम-भेद = अंधेरा मिटाने वाला । दल = पंखड़ियाँ । कल = सुन्दर । उर-शयन = हृदय पर सोना ।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—सूर्योदय में ही उसके सारे संसार के अंधकार को दूर करने वाले सुन्दर नयन हैं । सूर्यास्त के रूप में उसकी पंखुड़ियों-सी कोमल पलकें बन्द होकर अपने ही सुन्दर तन को ढक लेती हैं । प्रकाश के देवता सूर्य ! उसे बता कि रात रूपी प्रिय (परमात्मा) के हृदय पर सोने का सुख रूपी धन सारपूर्ण है अथवा असार है ?

अलंकार—(i) विशेषण विपर्यय—प्रथम पंक्ति । (ii) रूपक—निशा-प्रिय-उर । (iii) सभंग पद यमक—सार कि असार । (iv) गूढ़ोत्तर—सार कि असार ?

विशेष—(i) इस जगत में होने वाले प्रकाश एवं अंधकार का क्रम उस परम सत्ता का ही परिचायक है ।

(ii) जिज्ञासा एवं रहस्य का भाव स्पष्ट है ।

(iii) स्वर-वर्ण-मैत्री की छटा दृष्टव्य है ।

(घ) बरसता .... **नीहार (रे, कह)** ।

शब्दार्थ—आतप=धूप । कलुष=पाप, अंधकार । अशिव=अशुभ । उपलाकार=ओलों जैसे आकार वाला । नीहार=हिम, लक्षणा से ओस ।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—सूर्य समान उस तेजस्वी सत्ता से धूप या प्रकाश पानी के समान बरस कर सारे संसार को अन्धकार रूपी पाप से छुटकारा दिलाकर सहृदय, कोमल और उज्जवल बना देता है । सांसारिक जीवन के जितने भी अशुभ कृत्य हैं, ओलों के समान जितने भी भयानक, विनाशकारी अमांगलिक पदार्थ हैं, वे सब उसके सम्मुख गलकर सुखद ओसकण बन जाते हैं बताओ तो सही, ऐसा वह कौन और कैसा है ?

अलंकार—(i) उपमा—यथाजल । अशिव उपलाकार ।

विशेष (i) जिज्ञासा एवं रहस्य का भाव स्पष्टतः व्यक्त है । कवि ने प्रकृति के अवयवों के माध्यम से प्रतीकात्मक-शैली में अलक्ष्य-ईश्वरीय सत्ता का बहुत ही भावपूर्ण वर्णन किया है ।

(ii) **लक्षणा**—बरसता आतप ।

(iii) कविता का सारांश यह है कि वह परम तत्त्व ही अपनी शक्ति द्वारा जगत का मंगल विधान करती है ।

(iv) यह कविता रहस्यभाव युक्त छायावादी कविता का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है । कवि पंत ने भी इस प्रकार के भाव कई स्थानों पर व्यक्त किये हैं । तुलना करें ।

(३०) अस्ताचल रवि

(क) अस्ताचल रवि .... पुरातन ।

शब्दार्थ—अस्ताचल रवि=अस्त होता हुआ सूर्य । छल-छल छवि= सुन्दरता बिखरी पड़ रही है । स्तब्ध=मौन । उन्मन=अनमना । परिमल= सुगन्ध । पुरातन=प्राचीन, पुरानी ।

संदर्भ—कवि निराला अस्त होते हुए सूर्य तथा उस समय के वातावरण के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—सूर्य अस्त होने वाला है । उसकी छलकती हुई शोभा जल में दिखाई दे रही है । समस्त कोलाहल शान्त है । जीवन में उदासी है । पवन मन्द-मन्द बह रहा है । उसको रह-रहकर फूलों की सुगन्ध याद आती है । पवन धीमे-धीमे बह कर सुगन्ध को चारों ओर बिखेर रहा है, मानो वह

प्रातःकाल के समय परिमल के साथ की गई अपनी क्रीड़ाओं की पुरानी कथा कह रहा है।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—छल-छल, रह-रहकर। (२) अनुप्रास—छल-छल छवि। (३) पदमैत्री—अस्ताचल, जल, मन्द, पवन। (४) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द।

विशेष—(१) इस कविता में प्रकृति का वर्णन आलम्बन रूप में किया गया है। (२) कोमलकान्त पदावली का माधुर्य द्रष्टव्य है। (३) प्रकृति के प्रति आकर्षण स्पष्ट है। (४) 'छल-छल छवि, मन्द पवन, कहता कथा पुरातन' आदि की ध्वन्यात्मकता के कारण भाषा बहुत ही हृदयग्राही बन गई है।

(ख) दूर .... नूतन।

शब्दार्थ—प्रतनु = क्षीण। सित = सफेद। गेह = घर। नूतन = नवीन।

सन्दर्भ—कवि नदी में चलती हुई दूरस्थ नौका का वर्णन करता है।

भावार्थ—नदी में दूर पर एक बहती हुई सुन्दर नाव दिखाई देती है। वह मन्द ध्वनि से सुनाई देने वाले मधुर संगीत के समान मनोहारी लगती है। वह नौका ऐसी प्रतीत होती है, मानो क्षीण काया वाली प्रेम की मूर्ति बनी हुई कोई सुन्दरी घर छोड़कर वहाँ बैठी हो।

अलंकार—(१) उपमा—ज्यों स्वर। (२) उत्प्रेक्षा—अन्तिम चरण। (४) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द।

विशेष—१. छायावादी कोमलकान्त पदावली है।

२. प्रकृति में नारी का दर्शन है। प्रकृति के माध्यम से कवि के इतर भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

१. स्वर-गति के साथ नौका की मृदुतर गति को उपमित करना कवि की कोमल कल्पनाशीलता द्योतित करता है।

तुलना कीजिए—

सिन्धु-सेज पर धरा वधू,
तनिक संकुचित बैठी सी।
प्रलय निशा की हल चल स्मृति में,
मान किए सी ऐंठी सी। —**प्रसाद:कामायनी**

(ग) ऊपर शोभित .... कर-अर्पण।

शब्दार्थ—छत्र = छाया। सित = श्वेत। अमित = अपार। दोलित = उद्वेलित, चंचल।

सन्दर्भ—कवि सूर्यास्त के समय नदी में पड़ी हुई दूरस्थ नौका की शोभा का वर्णन करता है।

भावार्थ—ऊपर आकाश में श्वेत बादलों के रूप में छाता सुशोभित है। नीचे नीले रंग वाली अपार जलराशि प्रवहमान है। वह नौका उस सुन्दरी के समान प्रतीत हो रही है जो अपने नेत्रों में प्रियतम की मूर्ति धारण करके मन में उसका चिन्तन करती हुई पूर्णतः मग्न हो। अस्ताचलगामी सूर्य ने अपनी अन्तिम किरणें उसको अर्पण कर दीं, अर्थात् अस्ताचलगामी सूर्य की अन्तिम किरणों में वह अन्तिम वार चमक उठी।

अलंकार—(१) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द। (२) रूपक—मेघ छत्र। (३) पदमैत्री—ध्यान-नयन मन प्राणधन।

विशेष—१. प्रकृति के माध्यम से कवि के भावों की अभिव्यक्ति हुई है। सूर्य के माध्यम से कवि नौका के रूप में अपनी कल्पित प्रेयसी को अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है।

२. भाषा कोमलकान्त पदावली युक्त एवं संस्कृतनिष्ठ है।

३. प्रकृति में कवि दाम्पत्य भाव की व्याप्ति देखता है।

द्रष्टव्य—इस कविता का रचना-काल सन् १९३२ है।

(३१) दे, मैं करूँ वरण

(क) दे, मैं .... समुपकरण।

शब्दार्थ—पद-राग-रंजित = चरणों के प्रेम से युक्त। वरण = अंगीकार, स्वीकार। भीरुता = कायरता। पाश = बन्धन। छिन्न हों = टूट जाएँ। अनुसरण = पालन। रोध = अवरोध, रुकावट। लांछना = अपयश, बदनामी। ईंधन = अग्नि। अनल = अग्नि। अविरल = लगातार। पारकर = त्यागकर। भक्ति-नत-नयन = शक्ति से नेत्र नीचे किये हुए। समुपकरण = समस्त उपकरण, समस्त सामग्री (साधन)।

सन्दर्भ—कवि निराला माता से उदात्त गुणों के लिए—संतोचित वृत्तियों की उपलब्धि हेतु प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे माता! मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं समस्त दुःखों को दूर करने वाले तेरे चरणों के प्रेम में अनुरक्त होकर मृत्यु को सहज प्रसन्नतापूर्वक

का आँगन छोड़कर बाहर गया, तब तू अपने पिता के घर में पूर्ण स्थिर-भाव से बनी रही। जाने क्यों तेरे उस रूप को देखकर मेरी आँखों में आँसू छलक आए। मैं तेरी कोई भी इच्छा पूरी नहीं कर सका, इस बात की कचोट मन में ही दबाकर तू छोटी-छोटी साँसें लेकर कुछ कहती थी। मैं मन की उस कसक को समझता था। मैं जैसे-जैसे अपने मार्ग पर आगे की ओर बढ़ता था, तू मेरी तरफ अपनी दृष्टि जमाकर बार-बार उसे हटा लेती थी।

विशेष—शैली वर्णनात्मक है।

(छ) तू सवा साल .... ऊर्मि धवल।

शब्दार्थ—चरित=चरित्र, खेल-कूद, क्रीड़ाएँ। उत्पल-दल-दृग=कमल की पंखुड़ियों जैसी आँखें। सैकत=बालू, रेती। हासोच्छल=हँसी के द्वारा उज्ज्वल बना हुआ। प्रसार=फैलाव। ऊर्मि धवल=श्वेत या निर्मल लहरें।

संदर्भ—छन्द (च) के समान।

भावार्थ—जब तू सवा साल की कोमल बालिका थी, तभी से अपनी माँ के मुख को पहचानने लगी थी। इससे तेरी ज्ञानार्जन की चंचल वृत्ति प्रकट होती थी। तेरी माँ तेरी इस क्रिया को देखकर बार-बार तेरे मुख को चूम लेती थी और उनके जीवन में नवीन उमंगों की सृष्टि हो उठती थी। जब तेरी माँ अपने सम्पूर्ण सांसारिक कार्य समाप्त करके इस संसार को छोड़कर चली गई, तब तू अपनी नानी की गोद में पलने के लिए चली गई।

तू वहीं अपनी नानी के पास रह कर अपनी बाल-क्रीड़ाएँ करती रही और अपनी इन क्रीड़ाओं के द्वारा नानी के घर में रात-दिन आनन्द की सृष्टि करती रही। जब तेरा भाई तुझे मारता था तो तू व्याकुल होकर रोने लगती थी और कमल की पंखुड़ियों के समान तेरे सुन्दर नेत्रों से छलछल आँसू टपकने लगते थे। तेरे उन आँसुओं को देखकर तेरा भाई तुझको पुचकार कर मना लेता था। फिर तुम दोनों भाई-बहिन गंगातट की रेती में घूमने के लिए चले जाते थे। तू भाई का हाथ पकड़ कर चंचल गति से उसके साथ उछलती-कूदती हुई चलने लगती थी। गंगातट पर पहुँच कर अपने आँसुओं से धुले एवं हास्य के उज्ज्वल बने अपने मुख द्वारा तू गंगा की लहरों के विस्तार को देखती रहती थी।

विशेष—(१) शैली वर्णनात्मक है। (२) सम्पूर्ण वर्णन के ऊपर विषाद की गहरी छाया है।

(ज) तब भी मैं .... पूजा उन पर ।

शब्दार्थ—समस्त = पूर्णरूपेण । निरानन्द = उदासीन, अप्रसन्न । प्रांतर = आँगन । सत्वर = शीघ्र ।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—जब तू नानी के घर बाल-क्रीड़ाओं में मग्न बनी रहती थी, तब भी मैं अपने कवि-जीवन को सफल बनाने के कार्य में व्यर्थ ही व्यस्त बना रहता था । मैं बिना रुके हुए मुक्त छन्द में कविता लिख रहा था और सम्पादक गण जल्दी से पढ़ कर एक-दो पंक्ति में उत्तर लिख कर उन्हें उदासीन भाव से वापस लौटा देते थे । मैं अपनी वापस आई हुई रचनाओं को लेकर उदास मन से विभिन्न दिशाओं एवं आकाश की ओर ताकता रहता था । मैं अपने आँगन में बैठा हुआ सम्पादक-गणों के गुणों का स्मरण करता हुआ घण्टों व्यतीत कर देता था । अपने पूर्वाभ्यास के अनुसार पास की घास को नोंचता हुआ मैं यों ही बिना सोचे-समझे हुए घास के तिनकों को इधर-उधर फेंकता रहता था । मानो वे लोग घास डालकर मेरी रचनाओं की पूजा करके उन्हें वापस लौटा देते थे ।

विशेष—१. सम्पादकों द्वारा रचनाएँ लौटा देने पर निराला जी को जो मानसिक वेदना होती थी, उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।

२. शैली वर्णनात्मक है । वर्णन सजीव एवं मनोवैज्ञानिक है ।

(झ) याद है .... के प्रति अशंक ।

शब्दार्थ—सुरूप = सुन्दर । दूरस्थित = दूर पर । परी चपल = परी के समान चंचल । प्रवास = देश । दीर्घ गाथा = लम्बी कहानी । अशंक = निर्भय भाव से । भाग्य अंक = भाग्य में लिखा हुआ, प्रारब्ध ।

संदर्भ—छन्द (च) के समान ।

भावार्थ—मुझे याद है कि प्रातःकालीन सुन्दर धूप तेरे ऊपर पड़ रही थी और तू परी के समान चंचल बनी हुई खेल रही थी । मैं दो वर्ष बाद दूर अपने प्रवास-स्थान से चल कर तुम दोनों बालकों को अपनी आँखों से देखने के लिए वहाँ गया था । मैं बाहर आँगन में फाटक के भीतर मोढ़े पर बैठा था । मेरे हाथ में लम्बी जीवनगाथा कहने वाली मेरी जन्म-कुण्डली थी । उसमें अपने दो विवाहों का शुभ योग पढ़ कर मैं हँसता था और मन में भाग्य के इस लेख

को झूठा सिद्ध करने की प्रबल इच्छा थी। मैंने पूर्ण निश्चित होकर अपने भविष्य के कार्यक्रम पर विचार किया।

अलंकार – उपमा—परी चपल।

विशेष—१. शैली वर्णनात्मक है।

२. निराला के अदम्य साहस, दृढ़ निश्चय एवं पुरुषार्थ की अभिव्यक्ति है।

(ञ) **इससे** .... **सुनकर।**

शब्दार्थ—आत्मीय स्वजन = सगे सम्बन्धी। परिणय = विवाह के प्रस्ताव। मंगली = ऐसे ग्रहों में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति जिसका जीवन ज्योतिषशास्त्र के अनुसार संकटों एवं असफलताओं से परिपूर्ण माना जाता है। मंगली लड़के का विवाह मंगली लड़की के साथ करने से अशुभ योग का परिहार हो जाता है—ऐसी ज्योतिषशास्त्र की मान्यता है। एन्ट्रेन्स = दसवाँ दर्जा, जिसे आज कल हाईस्कूल कहते हैं।

संदर्भ—निराला जी से लोग दूसरा विवाह करने का प्रस्ताव करते थे। निराला जी अपने आपको मंगली बताकर उन्हें चुप कर देते थे।

भावार्थ—इसके पहले मेरे अनेक सगे-सम्बन्धी स्नेह के साथ मुझसे कह चुके थे कि मैं किसी पढ़ी-लिखी सुन्दर लड़की से विवाह कर लूँ। इससे मेरा जीवन सुखी हो जाएगा। इस प्रकार विवाह के मेरे पास अनेक प्रस्ताव आए थे, परन्तु मैंने उन सबको विनम्रतापूर्वक लौटा दिया था। जो मेरा उत्तर सुनकर भी अनुकूल उत्तर पाने की आशा से अपनी आँखों से याचना-भाव भर कर अड़कर खड़े हो जाते थे, उनसे जब मैं यह निस्संकोच होकर कह देता था कि मैं मंगली हूँ, तब मुड़कर चुपचाप चले जाते थे।

विशेष—१. शैली वर्णनात्मक है।

२. ज्योतिष की बातों पर अन्धविश्वास के प्रति कटाक्ष है।

(ट) **इस वार एक** .... **संचित टुकड़ों पर।**

शब्दार्थ—हतोत्साह = निराश। स्नान-शेष = स्नान करके। उन्मुक्त केश = खुले हुए बाल। रहस्य-स्मित = रहस्यभरी हँसी। अजीत = निश्चल। अखिन्न = प्रसन्न। संचित = इकट्ठे। सुवेश = सुन्दर वेश में।

संदर्भ—निराला जी विवाह के लिए तैय्यार हो जाते हैं। परन्तु सरोज को देख कर उनका निश्चय पूर्ववत् हो गया।

भावार्थ—इस बार एक ऐसे सज्जन मेरे विवाह का प्रस्ताव लेकर आए

जो किसी भी प्रकार निराश होकर लौटने को तैयार नहीं थे। बड़ी दिक्कत का सामना था। मेरे मन में उनके द्वारा प्रस्तावित कन्या के नयनों का आकर्षण भर उठा। मेरी सास ने मुझसे कहा—"भैया, वे बड़े भले आदमी हैं, वह लड़की भी ऐण्ट्रेन्स पास है।" वह सज्जन मेरी ओर संकेत करके बोले, "तुम्हारी अवस्था छब्बीस ही तो है। वर की यह अवस्था सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि लड़की की अवस्था १८ वर्ष है।" फिर वे सज्जन हाथ जोड़ कहने लगे कि कैसे खेद की बात है। ये विवाह नहीं कर रहे हैं। यह शिष्ट एवं सज्जन हैं। अच्छे कवि हैं, अच्छे विद्वान् हैं, इनका बड़ा नाम है। लड़की भी रूपवती है। सासूजी ने कहा, आपके लिए यही उचित होगा कि आप विवाह करलें और हर तरह से सुखी रहें। वे लोग इस सम्बन्ध में बात पक्की करने के लिए कल आएँगे।

सास की बात सुनकर मेरी नजर ढीली पड़ गई, अर्थात् विवाह करने के लिए मेरा मन हो उठा। उसी समय पुतली के समान तू खिलखिला कर हँसती हुई मेरे पास आई। मेरी चेतना तुरन्त वापस लौट आई और मैं विवाह के बंधन पर विचार करने लगा, अर्थात् मैं यह सोचने लगा कि विवाह मेरे लिए बन्धन बन जाएगा।

मैंने अपनी जन्मकुण्डली तुझको दिखाते हुए कहा—"यह लो।" उसे देखकर तू मेरे पास आई। तेरे हाथ में अपनी कुण्डली देते हुए मैंने कहा—"खेल बेटी खेल।"

इसके बाद सासजी स्नान करके अपने बाल खोले हुए, सुन्दर वेश धारण किए हुए तथा मुख पर रहस्यभरी मुसकान छिटकाए मेरे पास कल होने वाली बातचीत के सम्बन्ध में बातें करने के विचार से आईं। मैंने अविचलित भाव से, प्रसन्न मुद्रा में संकेत कर उन्हें उस ओर देखने को कहा, जहाँ वह जन्म-कुण्डली टुकड़े-टुकड़े हुई पड़ी थी। वे आश्चर्यचकित होकर उस ओर देखने लगीं। तू उन टुकड़ों को इकट्ठा करके उन पर बैठी हुई थी।

विशेष—निराला जी अपनी प्यारी बेटी की एक मुसकान पर अपने भविष्य का सब सुख न्यौछावर कर देते हैं ?

(ठ) धीरे-धीरे .... किसलय दल।

शब्दार्थ—केलियों = क्रीड़ाओं। प्रांगण = आँगन। कुंज-तारुण्य-सुधर = यौवन रूपी सुन्दर कुंज। लावण्य = सौन्दर्य। मालकोश = एक प्रकार का

मधुर राग। नैश=रात्रि का। जागरण छन्द=जाग्रति भर देने वाले काव्य के समान। आलोक=प्रकाश। दिक् प्रसार=दिशाओं का विस्तार।

संदर्भ—कवि निराला 'सरोज' के यौवनागम का भावपूर्ण वर्णन करते हैं।

भावार्थ—फिर तू जीवन के चरण धीरे-धीरे बढ़ाती हुई बचपन की क्रीड़ाओं के आँगन को पार करके यौवन के सुन्दर कुंज में प्रवेश कर गयी—तू नवयुवती बन गई। तेरे शरीर में यौवन का सौंदर्य थर-थर काँपने लगा, अर्थात् तुझमें यौवनोचित चंचलता आ गई। माथे की नववीणा पर मालकोश के कोमल स्वर झंकृत हो उठे थे। तू रात्रि के सुकुमार स्वप्न के समान मन्द गति से उषा के जागरण छंद के समान गुंजरित हो उठी। अपने ही सौन्दर्य के भार से तू काँप उठी। तेरे उस उज्जवल सौन्दर्य का स्पर्श प्राप्त करके समस्त दिशाएँ और वन प्रकम्पित हो उठे। सम्पूर्ण आकाश, पृथ्वी, वृक्ष, कलियाँ और कोपलें तेरे उस सौन्दर्य से सौन्दर्यशाली बन कर तेरे सौन्दर्य का परिचय देने लगे।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—धीरे-धीरे। थर-थर। मंद-मंद। (२) रूपक—केलियों का प्रांगण, कुंज-तारुण्य। (३) उपमा—ज्यों मालकोश। नैश स्वप्न ज्यों। (४) मानवीकरण—काँपी··· दल।

विशेष—कवि छायावादी शैली पर अपनी पुत्री के सौन्दर्य का रहस्यात्मक वर्णन करता है।

(५) फ्रायडिन विचारधारा के अनुयायी कुछ भी कहें, परन्तु हमें तो इन पंक्तियों में एक स्नेहशील पिता के वात्सल्य की धारा बहती हुई दिखाई देती है।

(६) तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से सौन्दर्य वर्णन को देखें—

> भूषन भार सम्हारिहैं क्यों यह तन सुकुमार।
> सूधें पाँय न धरि परैं, सोभा ही के भार॥ —**बिहारी**

(ङ) क्या दृष्टि ···· ···· मौन प्रान्तर।

शब्दार्थ—अतल=गर्भ से। शिक्त-धार=जल की धारा। भोगावती=नदी। ऊर्ध्व को=ऊपर को। सलील=क्रीड़ारत। साथ-साथ=सम्हल-सम्हल कर, धीरे-धीरे। हर=लेकर। दृप्त धार=ओजभरी धारा। उत्कलित=खिली हुई। तन्वि=क्षीणकाय, छरहरे बदन वाली। वह्नि=अग्नि। प्रान्तर प्रदेश। पिक=कोयल।

सन्दर्भ—छन्द (ठ) के समान। यहाँ सरोज की गौरवभरी दृष्टि और उसके मधुर दृप्त स्वर का विशेष रूप से वर्णन है।

भावार्थ—तेरी नजर कैसी थी ? वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो पृथ्वी के गर्भ से स्नेह भरी शीतल धारा विशाल नदी के रूप में फूट पड़ी थी अथवा क्रीड़ारत नीला जल टलमल-टलमल मधुर स्वर करता हुआ ऊपर की ओर उमड़ता चला आ रहा हो। परन्तु तेरे यौवन की धारा शरीर के दिव्य बाँध में बँधी हुई थी, अर्थात् तेरी यौवनरूपी जलधारा सदैव संयमित थी, ऐसा नहीं था कि जवानी तेरे रोके रुक न रही हो। तेरी दृष्टि से कभी-कभी उसकी हल्की सी झलक मिल जाती थी।

तेरे कण्ठ से कैसा मधुर स्वर फूट निकला था ? तेरे उस स्वर में माँ की सम्पूर्ण मधुरिमा एवं कोमलता तथा पिता के ओज भरे स्वर का सम्पूर्ण गौरव समाहित हो उठा था। तेरे स्वर को सुनकर ऐसा लगता था मानो तेरे स्वर की अग्नि जैसी तेजी तेरे स्वर में सहज स्वाभाविक सुन्दर गायिका के रूप में साकार हो उठी थी। तेरे उस संगीत-भरे स्वर को सुनकर मैंने समझा था कि क्या मेरे ही संगीत के प्रबल-प्रखर संस्कार जन्म के साथ ही तुझ में फूट पड़े हैं ? आज तक इस पृथ्वी पर ऐसा देखने में नहीं आया कि संगीत की शिक्षा पाए बिना ही किसी के स्वर में ऐसा संगीत प्रकट हो गया हो बस, मैं तो केवल एक कोयल की बालिका के बारे में यह जानता हूँ कि वह अन्य पक्षी (कौआ) के घोंसले में पलती है और जब उड़ने में समर्थ हो जाती है, तो अपने मधुर स्वर से अपने चारों ओर के शांत प्रदेश को गुंजरित करने लगती है।

अलंकार—(१) उत्प्रेक्षा—ज्यों अपार। (२) संदेह—उमड़ता ··· सलील। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—नील-नील। साध-साध। (४) पदमैत्री —जल टलमल नील-नील। (४) रूपक—देह से बाँध।

विशेष—(१) छायावादी काव्य-शैली की कोमलकांत, संगीतपूर्ण एवं ध्वन्यात्मक पदावली है। (२) शैली लाक्षणिक है।

(ढ) तू खिची .... मैं तेरा जीवन।

शब्दार्थ—उन्मन = मंद। कलिदल = कलियों का समूह। वात = पवन।

संदर्भ—छन्द (ठ) के समान।

भावार्थ—तेरी सुन्दरता मेरी आँखों में समा गई और तू मेरे काव्य की प्रेरणा बन गई। एक अज्ञात वायु सम्पूर्ण कुंजों, वृक्षों, पत्तों और कलियों के

विशाल समूहों को आन्दोलित करती हुई, उसमें एक मन्द गुंजार भरने लगी। वह वायु तेरे बालों को और नवीन यौवन से पूर्ण तेरे सुन्दर शरीर को चूमने लगी। तू इन क्रियाओं को टकटकी बाँध कर देखने लगी, अर्थात् यौवनागम-सुलभ तेरी चंचलता प्रकट हो उठी। मैं समझ गया कि तेरे जीवन की आवश्यकता क्या है।

विशेष—वर्णनात्मक शैली है।

(ण) सास ने कहा .... छाया-तल।

शब्दार्थ—धन्य धाम=अच्छा घर। शुचि वर=श्रेष्ठ वर। धर्मोत्तर=अत्यन्त धार्मिक। सहोत्साह=उत्साह सहित।

संदर्भ—सास-द्वारा अपनी पुत्री सरोज के विवाह का सुझाव देने पर कवि निराला उसे अपने साथ लिवा लाए।

भावार्थ—एक दिन सास ने अवसर देखकर मुझ से कहा—भैया! अब हमारा वश नहीं रहा। सरोज को पालना-पोसना हमारा काम था, सो हमने पूरा कर दिया। अब तो अच्छा घर देखकर सरोज को किसी कुलीन वर को दे दें। अब तो यह काम तुम्हारा है। तुम्हारा यह काम अत्यन्त पुण्य का होगा अब तुम कुछ दिन इसे अपने साथ लेकर अपने कुल-शील के अनुरूप कोई वर ढूँढ कर दो। उसमें हम उत्साहपूर्वक तुम्हारी सहायता करेंगे।

उनकी बात सुनकर और समझकर मैं चुपचाप ही रहा, मैंने कुछ भी जबाब नहीं दिया। न हाँ कहा और न ना कहा। मैं तुझको अपने कलेजे से लगाकर ले चला जैसे कोई भिखारी सोना लेकर चलता है। तू मेरे जीवन की स्वर्ण-झंकार के समान बहुमूल्य थी। निर्मल प्रकाश के समान उज्जवल तुझको मैं अपने घर की छत की छाया के नीचे ले आया।

विशेष—वर्णन में इतिवृत्तात्मकता है।

(त) सोचा मन में .... निराधार।

शब्दार्थ—हत=धिक्कार का भाव। कुलांगार=कुल में आग लगाने वाला, कुल को नष्ट करने वाला। कर=हाथ। विषय-वेलि=जहर की बेल। शोभन=शोभनीय। गो=यद्यपि। भीति=भय। गत=विगत। सौहार्द बन्धन=स्नेह का बन्धन।

संदर्भ—मैंने तेरे विवाह के बारे में बार-बार सोचा, परन्तु कान्यकुब्जों का विचार आते ही मन में बार-बार धिक्कार का भाव जाग्रत हो उठा। मैंने

सोचा कि ये कान्यकुब्ज लोग अपने को मिटाने वाले होते हैं। ये जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं। उनके हाथ में अपनी लड़की को देना दुःख का ही हेतु होगा, क्योंकि विष की बेल में विष के ही फल लगेंगे। कान्यकुब्ज बालक तो कान्यकुब्जों की परम्पराओं द्वारा ग्रस्त होगा। यह कान्यकुब्ज समाज तो जलते हुए रेगिस्तान के समान प्राणों का लेने वाला है। इसमें शान्ति एवं शीतलता प्रदान करने वाली शीतल-जलसदृश सज्जनता कहाँ आई ?

फिर मैंने सोचा कि मेरे लिए यही मार्ग शोभनीय होगा, जिस पर मेरे पूर्वज चलते आए हैं। अतः पुरुषों की रीति के अनुसार कन्या के विवाह की रस्म अदायगी कर देनी चाहिए। यद्यपि मुझको पुरानी विचारधारा के विरुद्ध आचरण करने में किसी प्रकार का भय नहीं लगता था, तथापि मैं पुरानी रीति-नीति का भार उठाने में भी अपने आपको असमर्थ पाता था। यह निश्चित है कि मैं अपने भीतर ऐसी विजय की भावना नहीं उत्पन्न कर सकूँगा जो व्यर्थ ही बन्धु-बान्धवों के साथ स्नेह के सम्बन्ध में बाँधने में समर्थ होती है; अर्थात् मुझको उन लोगों की सब बुराइयाँ सहन ही न की जायेंगी। फिर बात बिगड़ जाएगी।

विशेष—१. निराला जी का अन्तर्द्वंद्व अभिव्यक्त है।

२. लोकोक्तियों का प्रयोग है—जिस पत्तल में खाएँ उसी में छेद करें। विष-बेलि में विष-फल ही लगते हैं। देशी प्रयोग भी है—

जैसे जाके बाप-महतारी, वैसे बाके लरिका।
जैसे जाके नदी-नारे वैसे बाके भरिका॥

(थ) वे जो यमुना .... नहीं चाह।

शब्दार्थ—कछार=नदी किनारे की कटी-फटी जमीन। चमरौंधे जूते=देशी जूते जो गाँव वाले पहनते थे। सकेल=ठेलना। कल घ्राण-प्राण=सुन्दर गन्ध और हवा।

संदर्भ—निराला जी सोचते हैं कि वह कान्यकुब्जों में अपनी बेटी को न ब्याह सकेंगे।

भावार्थ—इन कान्यकुब्जों के फटे हुए पैरों में यमुना के कटे-फटे किनारों जैसी बिवाइयाँ होती हैं, यह हराम की कमाई खाने वालों जैसे होते हैं, इनके पैर तैल से भरे हुए देशी चमड़े जूते को एक ओर ठेल कर बाहर निकलते हैं। उनके पैर जूतों की घोर दुर्गन्ध से युक्त होते हैं और उनसे आने वाली दुर्गन्ध प्राण-लेवा होती है। मुझसे यह कभी नहीं हो सकेगा कि मैं सुन्दर गन्ध और

सुगन्धित वायु से अपरिचित अन्धे व्यक्ति के समान इन लोगों के ऐसे पैरों को पूज सकूँ। मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि मैं अपनी पार्वती सदृश सुन्दरी सरोज का विवाह शिव सदृश किसी औघड़ व्यक्ति के साथ कर दूँ।

विशेष—पूर्व उत्तर प्रदेश में रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के रहन-सहन का यथार्थ चित्रण है।

(द) फिर आई याद .... कुल धन्या का।

शब्दार्थ—नैमित्तिक = संयोग मात्र। इंगित = संकेत। अभिनन्दनीय = सत्कार के योग्य। रिक्त हस्त = खाली हाथ। सामाजिक योग = सामाजिक बन्धन। लग्न = विवाह। कुल धन्या = कुल को धन्य करने वाली।

संदर्भ—निराला जी अपने एक परिचित साहित्यिक नवयुवक को बुलाकर उससे सरोज के विवाह का प्रस्ताव करते हैं।

भावार्थ—फिर मुझे एक नवयुवक का ध्यान आया, जो मुझे पहले मिल चुका था। वह सज्जन, विद्वान् अच्छा साहित्यकार है। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण है, परन्तु उसके कान्यकुब्ज होने में सम्भवतः कुछ दैवी विधान रहा होगा। उस युवक को आत्मीय एवं अभिनन्दनीय बनाने में ही मेरी भलाई होनी चाहिए। बस, उसी पर मेरा सारा ध्यान जम गया और उसके प्रति मेरे मन में स्नेह का स्रोत बह निकला। मैंने तुरन्त आकर मिलने के लिए उसको पत्र लिखा। मेरा पत्र प्राप्त करके वह नवयुवक प्रसन्न-वदन और स्फूर्त भाव से आकर मुझसे मिला। मैंने उससे कहा कि इस समय मेरा हाथ खाली है। मेरा पूरा समय साहित्यिक विवेचन में चला जाता है और मैं ठीक प्रकार धनोपार्जन नहीं कर पा रहा हूँ। मैं यदि पूर्वजों से मिले हुए समस्त धन को अर्पण कर दूँ तो धन के लोभी रईस कान्यकुब्जों के यहाँ विवाह कर सकता हूँ। परन्तु मेरी ऐसी इच्छा नहीं है। मैं नहीं चाहता हूँ कि दहेज देकर मूर्ख बनूँ। बरात बुलाकर उसकी खातिरदारी में मैं व्यर्थ व्यय करूँ, इसके लिए मेरा समय उपयुक्त नहीं है। मेरी इच्छा है कि तुम सरोज के साथ विवाह कर लो। मैं विवाह सम्बन्धी सामाजिक नियमों को तोड़ता हूँ। यदि पंडित जी विवाह न कराने की उद्दण्डता दिखायेंगे, तो मैं स्वयं ही वैवाहिक मन्त्र पढ़ दूँगा। वैसे मेरे पास जो कुछ है, वह सब निश्चय ही अपने कुल को धन्य करने वाली मेरी इस कन्या का ही है।

विशेष—निरालाजी की स्वच्छन्द प्रकृति का संदेश द्रष्टव्य है। उनमें अपार साहस था।

(ग) **आए पण्डित जी .... थर-थर-थर।**

शब्दार्थ—प्रजावर्ग=जनता के लोग। ससर्ग=मित्रों सहित। आमूल=पूरी तरह से। स्पन्द=लहराना। अशब्द=मौन।

संदर्भ—कवि निराला सरोज के विवाह का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—तेरे विवाह में पण्डित जी आए, जनता के लोग आए, निमंत्रित साहित्यकार आदि सभी इष्ट-मित्रों सहित पधारे। उन्होंने पूर्णरूप से नवीन पद्धति वाले इस विवाह को देखा। तेरे ऊपर कलश का पवित्र जल छिड़का गया। मेरी ओर देखकर तू धीरे से मुसकराई और तेरे होठों पर स्पन्दन की एक लहर बिजली की तरह लहर गई। तेरे उर में अपने पति की सुन्दर छवि भर कर फूल रही थी और तेरा दाम्पत्य भाव मुखर हो रहा था। एक गहरी निश्श्वास लेकर तू मानो खिल उठी। तेरा एक-एक अंग भविष्य के विश्वास की आशा में बँध कर निश्चल हो उठा। नीचे की ओर झुके हुए तेरे नयनों से प्रकाश की रेखा उतर कर तेरे होठों पर थर-थर काँपने लगी।

विशेष—१. सात्त्विक अनुभावों का विधान दृष्टव्य है।

२. सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देखते ही बनता है।

(न) **देखा मैंने .... बना मही।**

संदर्भ—कवि निराला नवपरिणीता सरोज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैंने अपनी निराकार श्रृंगार-भावना को तेरे रूप में साकार रूप प्राप्त करते हुए देखा।

भावार्थ—मैंने तेरी उस धैर्यवान् मूर्ति को देखा। वह मेरे प्रथम यौवन के श्रृंगार के स्फुरण के समान थी। मैंने उसमें उस श्रृंगार के दर्शन किए जो निराकार रह कर मेरी कविता में रस की उमड़ती हुई धार के समान प्रस्फुटित हो उठा था। उसमें वह संगीत गूँज रहा था, जिसको मैंने अपनी पत्नी के साथ मिल कर गाया था। वह संगीत आज भी मेरे प्राणों में राग-रंग भर रहा था। मेरी वही श्रृंगार-भावना तेरे रूप में साकार हो उठी थी। आज आकाश अपने ऊपर रहने के स्वभाव को छोड़कर नीचे आकर पृथ्वी के साथ एक हो गया था, अर्थात् समस्त प्रकृति दाम्पत्य भाव से आपूरित प्रतीत हो रही थी।

अलंकार—स्मरण—गाया.......प्रिया संग।

विशेष—१. भावों एवं जड़ पदार्थों पर मानवीय भावनाओं का आरोप है।
२. स्मृति संचारी भाव की व्यंजना है।

(प) हो गया ब्याह .... यह अन्य कला।

संदर्भ—सरोज को विदा करते समय निराला जी का मन भारी हो उठता है।

भावार्थ—तेरा विवाह हो गया। उसमें हमारे सगे-सम्बन्धी नहीं आए, क्योंकि उनको निमन्त्रण नहीं भेजा गया था। घर न तो विवाह के गीतों से गुंजायमान हुआ था और न दिन-रात का जागरण ही किया गया था। हाँ, एक मौन संगीत जीवन के स्वर में आकर अवश्य धरती पर अवतरित हो रहा था। मैंने तुझको विवाह के समय माता की सभी शिक्षाएँ दीं। तेरे फूलों की शैय्या मैंने ही बनाई थी। मैंने मन में सोचा था कि कण्व ऋषि के समान मैं भी अपनी शकुन्तला को विदा कर रहा था। परन्तु मेरी कन्या शकुन्तला से भिन्न थी—मैंने तुझको भिन्न प्रकार की शिक्षा दी थी।

(फ) कुछ .... महामरण।

शब्दार्थ—समोद = प्रसन्नतापूर्वक। जलद = बादल। न्यस्त = रक्षक, साथी। वह लता = सरोज की माँ। महामरण = मृत्यु।

संदर्भ—ननसाल में सरोज की मृत्यु हो जाती है।

भावार्थ—कुछ दिन ससुराल में रह कर तू प्रसन्नतापूर्वक अपनी नानी की स्नेहमयी गोद में जा बैठी। वहाँ तेरे मामा-मामी तुझको अपने स्नेह से उसी प्रकार आप्लावित करते रहे, जैसे बादल धरती को अपार जल देते हैं। वे ही सुख-दुख में तेरे साथी और रक्षक रहे और सब तरह से तेरे हित-साधन में व्यस्त रहते थे। वह लता रूपी तेरी माता भी वहीं की थी, जिसमें तू कली के रूप में खिली थी। तू उन्हीं लोगों के स्नेह की गोद में पली थी और उन्हीं लोगों से सब प्रकार हिल गई थी। अन्तिम समय में तूने इसी स्नेहमयी गोद में शरण ली और अपने सुन्दर नेत्रों को बन्द करके तू महाप्रयाण कर गई।

अलंकार—उदाहरण—जलद धरा को ज्यों—

(ब) मुझ भाग्यहीन .... तेरा तर्पण।

शब्दार्थ—सम्बल = सहारा। युग वर्ष = दो वर्ष। शतदल = कमल। गत = विगत।

संदर्भ—कवि निराला अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर अपनी समस्त वेदना एवं पीड़ा उँड़ेले देते हैं।

भावार्थ—हे बेटी ! तू मुझ भाग्यहीन का एक मात्र सहारा थी। आज दो वर्षों बाद तेरी स्मृति में व्याकुल होकर मैं वह बात प्रकट कर रहा हूँ जो बात मैंने आज तक कभी नहीं कही। दुःख ही मेरे जीवन की कहानी है। मेरा धर्म यदि बना रहे, तो मेरे सम्पूर्ण कृत्कर्म पर भले ही बिजली टूट पड़े। मैं सदा अपने दीन जीवन के धर्म का निर्वाह इसी प्रकार करता हूँ। मेरे समस्त कार्य शिशिर ऋतु में मुरझा जाने वाले कमल की पंखुड़ियों की भाँति भले ही नष्ट हो जाएँ। हे बेटी ! मैं अपने पुराने जन्मों के समस्त पुण्य कर्मों को अर्पित करके तेरा श्राद्ध करता हूँ—तुझको जलांजलि भेंट करता हूँ।

विशेष—निराला के जीवन की सम्पूर्ण निराशा, वेदना, अभाव एवं हाहाकार ने सिमिट कर उनके दुख-दग्ध हृदय की पीड़ा को घनीभूत रूप में अभिव्यक्त किया है।

भाग्य के अंक को मेटने का दम भरने वाला निराला इस वज्रपात के कारण मर्महत होकर टूट जाते हैं। संतान-शोक ऐसा ही होता है।

(४२) राम की शक्ति पूजा

(क) रवि .... रावण सम्बर।

शब्दार्थ—पत्र = कागज। ज्योति के पत्र पर = दिवस के हृदय पर। अपराजेय = जो हराया न जा सके। समर = युद्ध। तीक्ष्ण शर विधृत = धारणों किए गए प्रखर वाण। क्षिप्र = शीघ्र, तीव्रगामी। शत-शेल-सम्बर-शील = सैकड़ों भालों को रोकने में समर्थ। वेग = गति। व्यूह = घेरा, सेना की रचना। भेद = छिन्न-भिन्न करना, भेद। नील-नभ-गर्जित-स्वर = नीले आकाश में गरजता हुआ स्वर। राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह = राक्षसों की व्यूह-रचना का भंग। प्रत्यूह = प्रत्याक्रमण। हूह = कपि ध्वनि, बन्दर की आवाज। विच्छुरित = विकीर्ण। राजीव = कमल। लोहित = लाल। मदमोचन = उन्माद अथवा दर्द को नष्ट करने वाले। हत लक्ष्य = लक्ष्य भ्रष्ट। वह्नि = अग्नि। राजीव-नयन-हत-लक्ष्य-वाण = कमल नयन राम अपने वाणों को लक्ष्य भ्रष्ट देखकर। महीयान = श्रेष्ठ। लाघव = कौशल, लघुता। वारण = प्रत्याक्रमण, अवरोधन, हाथी। राघव = राम। गतयुग्म प्रहर = दोपहर व्यतीत हो जाने पर। उद्धत = अभिमानी, उद्दण्ड। लंकापति = रावण। मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तार = वानर सेना के विस्तार को कुचल डाला।

अनिशेष=निष्पलक। विश्व-जिह्विय शर=विश्व विजय करने वाले वाण अर्थात् दिव्य वाण। शर-भंग भाव=वाणों के भंजित होने का भाव। विद्धांग=आहत अंगों वाले, बिधे हुए अंग। बद्ध को दण्ड मुष्टि=धनुष पर कसी हुई मुट्ठी। खर रुधिर स्राव=तीव्र रूप से प्रवाहित होने वाला रक्त। दुर्गा=अप्रतिरोध्य। प्रलयाब्धि=प्रलय काल का सागर। प्रबोध=ज्ञान, चेतना क्षुब्ध=क्रुद्ध। उद्गीरित=उगलती जाती हुई, निगलती हुई। भीम=भयंकर। चतुःप्रहर=चारों पहर। जानकी-भीरु-उर-आशा-भर=सीता के लिए भयत्रस्त हृदय में आशा और विश्वास का संचार करने वाले। सम्बर=युद्ध।

सन्दर्भ—कवि निराला राम-रावण के अनिर्णीत संग्राम का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—[दिन भर राम-रावण के घमासान युद्ध के पश्चात] सूर्य अस्त हो गया। दिन के हृदय पर आज की पराक्रमपूर्ण रण-गाथा सदा के लिए अंकित हो गई। राम-रावण का युद्ध अनिर्णीत रहा। दोनों ओर के योद्धा तीव्रगति से प्रहार करने वाले, तीक्ष्ण वाणों को अपने हाथों में धारण करते हुए अत्यन्त तेजी के साथ एक दूसरे पर चलाते थे। वे सैनिक सैकड़ों भालों के एक ही साथ होने वाले आघातों को रोकने में समर्थ थे और उनके गर्जन से नीला आकाश गुंजायमान था। प्रत्येक क्षण नवीन प्रकार की व्यूह-रचना की जाती थी। उसमें विपक्षियों के घेरों को तोड़ने की अद्भुत कुशलता थी। क्रुद्ध वानरों के समूह अपने विरोधी रावण की सेना के राक्षसों के आक्रमणों को विफल करने के लिए भयंकर गर्जन कर रहे थे। कमल नयन भगवान राम ने अपने तथा अपने साथ के वीरों द्वारा छोड़े गये वाणों को जब लक्ष्य-भ्रष्ट (विफल) होते देखा, तो उनके नेत्रों से क्रोध की अग्नि निकलने लगी। उधर क्रोधोद्धत रावण के नेत्रों से दर्प एवं कोप का उन्माद प्रकट होने लगा। श्रेष्ठ राम अत्यन्त कुशलता के साथ आक्रमण करते थे और रावण उनके आक्रमण को विफल कर देता था। इस प्रकार [उनके मध्य युद्ध होते हुए] दो पहर बीत गये। दुस्साहसी रावण विशाल वानर-सेना के बल का विनाश कर रहा था। विश्व को जीतने की सामर्थ्य रखने वाले राम अपने दिव्य वाणों की लक्ष्य-भ्रष्टता आश्चर्य-चकित होकर देख रहे थे। राम का शरीर रावण के वाणों से बिंधा हुआ था, उन्होंने धनुष की मूँठ को अपने हाथों से दृढ़तापूर्वक पकड़ रखा था और उनके शरीर के विभिन्न अंगों से रक्त की तेज धार बह रही थी। वानरों की सेनाएँ रावण के दुर्निवार—अत्यन्त

भयानक प्रहारों को न सह सकने के कारण विकल हो रही थीं। सुग्रीव, अंगद, गवाक्ष, नल आदि वीर सेनानी मूर्च्छित हो गये थे। लक्ष्मण और जाम्बवान के प्रहारों को रावण बीच में ही अपने बल से रोक देता था। रण-क्षेत्र में मारो-काटो का ऐसा कोलाहल हो रहा था, मानो प्रलय काल का समुद्र उद्वेलित होकर गर्जन कर रहा हो। उस कोलाहल के बीच केवल हनुमान ही ऐसे थे जिनकी चेतना ठिकाने पर थी। उनके क्रोधपूर्ण मुख को देखकर ऐसा लगता था मानो किसी विशाल ज्वालामुखी पर्वत से अग्नि की लपटें निकल रही हों। इस प्रकार हनुमान चार पहर तक रावण के साथ निरन्तर युद्ध करते रहे और भयभीत जानकी के लिए आशंकित राम के हृदय में आशा का संचार करते रहे।

अलंकार—(१) रूपक—ज्योति के पत्र, राजीवनयन। (२) उत्प्रेक्षा—उद्गीरित वह्नि। (३) अनुप्रास एवं पदमैत्री—प्रायः सम्पूर्ण छन्द। (४) सभंग-पद यमक—राघव-लाघव। (५) प्रत्यनीक—लंकापति मर्दित कपि दल बल विस्तर।

विशेष—१. लाक्षणिक शैली है। भाषा नवीन विच्छित्ति मंडित है।

२. भाषा में ध्वन्यात्मकता है। व्यूह, समूह, प्रत्यूह, हूह, प्रभृति शब्द ध्वनि-प्रधान बिम्बों के निर्माण के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

३. सामासिक तत्सम शब्दावली है।

४. आदि कवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रवर्तित राम-कथा की संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में एक दीर्घ परम्परा है। क्षात्र धर्म और औदात्यपूर्ण संस्कृति के चित्रण के लिए भारतीय इतिहास में मर्यादा पुरुषोत्तम राम कदाचित् सर्वाधिक उपयुक्त एवं सर्वश्रेष्ठ आलम्बन हैं। इसी परम्परा में निराला-प्रणीत 'राम की शक्ति पूजा' एक अभिनव प्रयत्न है।

५. भाषा विषयानुकूल है और संस्कृत-निष्ठ होने पर भी अर्थ प्रतीति बाधित नहीं होती है।

६. राम-रावण के युद्ध का सजीव एवं चित्रात्मक वर्णन है। यह वर्णन वीरगाथा-काव्य के वीररसात्मक वर्णनों का स्मरण कराता है।

७. युद्ध के वातावरण को सजीव बनाने के लिए जिस नाद-व्यंजना की अपेक्षा होती है उसे संयुक्ताक्षरों, 'ट' वर्ग के अक्षरों, महाप्राण ध्वनियों, श्रुत्यनु-प्रासों द्वारा मुखरित किया गया है।

८. भाषा में ओजगुण की दीप्ति द्रष्टव्य है।

९. वीर, रौद्र तथा भयानक रसों की संश्लिष्ट सबलता देखते ही बनती है।

१०. एक आलोचक के शब्दों में, "इस काव्य के नायक राम के चरित्रांकन में कवि ने उपचेतना में ही अपने व्यक्तित्व को भी संग्रथित कर दिया है। जैसी वीरता, उदारता तथा सकरुणता 'निराला' के व्यक्तित्व में रही है, वैसी उन्होंने राम के व्यक्तित्व में अंकित कर दी है और तदनुसार ही कविता में रस-व्यंजना परिलक्षित होती है।"

११. भावाभिव्यक्ति के अनुसार छन्द का प्रयोग उल्लेखनीय है। यह एक सर्वथा नवीन छन्द है। प्रसाद के आँसू काव्य में प्रयुक्त आँसू छन्द की भाँति हम इसे 'शक्ति पूजा' छन्द कह सकते हैं।

१२. रावण-वारण के वर्ण-विपर्यय द्वारा दोनों पक्षों की सेना का आगे बढ़ना तथा घूमते हुए पीछे हटने का भी कवि ने संकेत किया है।

१३. इस कविता की रचना सन् १९३६ में हुई थी। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह कविता आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रगति की सीमा मानी जा सकती है। इसमें राम-रावण के युद्ध का वर्णन है। महाशक्ति रावण को संरक्षण प्रदान करती है। फलस्वरूप राम के समस्त शस्त्र विफल होते हैं—सब वार खाली जाते हैं। जब राम निराश होने लगते हैं, तब जाम्बवान राम को परामर्श देते हैं कि वह भी तप द्वारा महाशक्ति को वश में करें। राम ऐसा ही करते हैं। तप की सिद्धि की अन्तिम दशा के समय दुर्गा आकर राम का अन्तिम कमल चुरा ले जाती है। राम द्विविधा में पड़ जाते हैं। आसन छोड़ते हैं तो तप अपूर्ण रहता है और यदि आसन छोड़कर कमल प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं होते हैं, तो तप भंग होता है। इसी समय उन्हें याद आता है कि उनकी माताजी उन्हें कमल-लोचन कहा करती थीं। वह कमल के स्थान पर अपनी एक आँख चढ़ाने के लिए तैयार होते हैं। उसी समय दुर्गा आकर उनका हाथ पकड़ लेती हैं और उन्हें विजय का वरदान देती हुई उनके मुख-तेज में समा जाती हैं।

१४. कविवर हरदयाल ने भी रावण को महत्त्व देते हुए 'दैत्यवंश' और 'रावण' महाकाव्यों की रचना की है।

(ख) लौटे युग दल .... कहीं पार।

शब्दार्थ—बिन्ध = गुँथकर । टलमल = कम्पित । महोल्लास = महान

हर्ष । वाहिनी=सेना । स्थविर=बौद्ध संन्यासियों का समूह । शिविर=डेरे । प्रशमित=शांत । नमित=नत, झुका हुआ । अवनी=पृथ्वी । नवनीत=मक्खन । श्लथ=शिथिल । धनुगुण=धनुष की डोरी, प्रत्यंचा । कृटिबन्ध=पेटी । स्रत=खिसकी हुई । तूणीर=तरकस । विपर्यस्त=बिखरा हुआ । लट=केश । पृष्ठ=पीठ । नैशान्धकार=रात्रि का अँधेरा ।

संदर्भ—कवि राम-रावण के युद्ध का वर्णन करता है । राम की सेना युद्ध से विरत होकर अपने शिविर की ओर गमन कर रही है । इसी समय का अवसादपूर्ण चित्रण है ।

भावार्थ—दोनों सेनाएँ अपने-अपने डेरों की ओर लौटीं । राक्षसगण अपने भारी पैरों से पृथ्वी को कंपा रहे थे । उनके महान हर्ष के भारी कोलाहल से गुँथकर आकाश बार-बार विकल हो रहा था । बन्दरों की सेना उदास और दुःखी थी । वह अपने स्वामी श्री राम के चरण-चिह्नों को देखकर इस प्रकार शान्ति के साथ लौट रही थी, जैसे बौद्ध साधुओं का कोई दल दीन असहाय दशा में अपने निवास-स्थान की ओर जा रहा हो ।

वातावरण एकदम शान्त था । संध्या के समय झुके हुए कमल के समान मुख झुकाए हुए चिन्तातुर लक्ष्मण चले जा रहे थे और उनके पीछे समस्त वानर वीर चल रहे थे । आगे-आगे राम अपने मक्खन के समान कोमल चरणों को पृथ्वी पर टेकते हुए चले जा रहे थे । राम के धनुष की डोरी ढीली पड़ी हुई थी, तरकश रखने का कमरबन्द भी ढीला हो गया था । कसकर बाँधा गया जटाओं का मुकुट भी अस्त-व्यस्त हो चुका था । उनके बालों की प्रत्येक लट खुल गई थी तथा उनकी पीठ पर, बाहुओं पर और विशाल वक्ष-स्थल पर बाल बिखर रहे थे, मानो किसी दुर्गम पर्वत पर रात्रि का अन्धकार उतर आया हो । पर्वत के पीछे दूर से मन्द-मन्द चमकने वाले तारों की भाँति राम की उदास आँखें चमक रही थीं ।

अलंकार—(१) पदमैत्री—दल तल टलमल, गुण धाण । (२) पुनरुक्ति-प्रकाश—बार-बार । (३) मानवीकरण—आकाश विकल, नैशान्धकार । (४) अनुप्रास—वानर वाहिनी, चरण चिह्न, वानर वीर । (५) रूपक—मुख, सांध्यकाल । (६) चरण—उपमा स्थविर दल ज्यों । (७) उत्प्रेक्षा—उतरा ज्यों.......कहीं पार ।

विशेष—(१) प्रायः छन्द (क) के समान । (२) इस छन्द में बिम्ब-योजना

विशेष रूप से द्रष्टव्य है। (३) विशेषण विपर्यय—प्रशमित वातावरण। (४) संध्या के वातावरण की पृष्ठभूमि में राम के मन का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित है। यह छायावादी कविता के अमूर्त्त विधान की विशेषता है। सांकेतिक शैली द्वारा प्रकृति का रूपायन किया गया है। (५) अनुभवों का चित्रण द्रष्टव्य है। (६) स्थविर दल ज्यों—जिस प्रकार बौद्ध भिक्षु संसार के मिथ्यात्व को देखकर उदास होते हैं, उसी प्रकार की उपरामता उस समय राम और उनके दल को घेरे हुए थी। अतः यह उपमा द्रष्टव्य है। (७) 'टलमल' जैसे शब्दों का प्रयोग 'पन्त' में भी पाया जाता है। ऐसे शब्दों की अभिनव सृष्टि निराला जी की शब्द-सर्जना का परिचय देती है। (८) धरती और आकाश का बिधना तथा व्याकुल होना संस्कृत तथा हिन्दी के वीर-काव्य और युद्ध-चित्रण की बरबस याद दिला देते हैं। चंदवरदाई तथा भूषण ने भी इसी प्रकार युद्ध के वर्णन किए हैं।

(ग) आये .... आश्रय-स्थल।

शब्दार्थ—सानु=चोटी। मन्थर=मंद गति। समाधान=विचार-विमर्श, उपाय। फेर=पहुँचा कर। आश्रय-स्थल=शिविर, ठहरने का स्थान।

संदर्भ—कवि राम तथा उनकी सेना के शिविर में लौट आने के पश्चात् का वर्णन करता है।

भावार्थ—पर्वत-शिखर पर स्थित शिविर में (राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि) सब लौट आए। सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त आदि तथा विविध सेनाओं के वानर-समूह, सेनापतिगण—अंगद, हनुमान, नल, नील, गवाक्ष आदि प्रमुख वीर वानरों की सेनाओं को उनके विश्राम करने के स्थलों पर पहुँचा कर रावण से अगले दिन युद्ध करने के उपायों पर विचार करने के लिए राम से मंत्रणा करने के लिए आये।

(घ) बैठे रघुकुलमणि .... देश।

शब्दार्थ—कर-पद=हाथ-पैर। क्षालनार्थ=धोने के लिए। पटु=कुशल। तीर=किनारा। सत्वर=शीघ्र। भल्ल=जाम्बवान। प्रान्त=स्थान। पादपद्म=चरण-कमल। जित-सरोजमुख श्यामदेश=अपने मुख-प्रदेश की श्यामलता से नीलकमल को भी तिरस्कृत करने वाले। यूथपति=सेनापति। निर्निमेष=एकटक।

संदर्भ—पूर्व छन्द (ग) के समान।

भावार्थ—रघुकुल के मणि श्री राम श्वेत पत्थर की शिला पर बैठ गये। चतुर हनुमान हाथ-पैर धोने के लिए स्वच्छ पानी ले आए। अन्य वीर संध्याकालीन विधान तथा ईश्वरोपासना करने के लिए तालाब के किनारे पर चले गये और वहाँ से शीघ्र ही लौट आए। वे राम को घेरकर बैठ गए और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। पीछे लक्ष्मण थे, सामने विभीषण, धर्यवान जाम्बवान तथा सुग्रीव थे। भगवान राम के चरण-कमलों के समीपस्थ हनुमान विराजमान थे। अन्य सेनापति यथास्थान बैठे हुए थे। वे सब-के-सब राम के उस मुख को एकटक देखने लगे, जिनके मुख की श्यामलता नील कमल को भी तिरस्कृत करने वाली थी।

अलंकार—(१) रूपक—पाद-पद्म। (२) प्रतीप—जित सरोज मुख। (३) स्वाभावोक्ति—पूरा छन्द।

विशेष—(१) हनुमान की दास्य भक्ति अभिव्यंजित है। (२) नाम-परिगणनात्मक शैली का प्रयोग है। (३)वर्णन में नाटकीयता है।

(ङ) **है अमानिशा .... जलती मशाल।**

शब्दार्थ—अमा-निशा=अमावस्या की रात। गगन=आसमान। घन=गहरा। स्तब्ध=शान्त, रुद्ध। चार=संचरण। अप्रतिहत=अनवरत, लगातार। अम्बुधि=सागर। भूधर=पर्वत।

संदर्भ—राम अपने सेनापतियों के साथ मन्त्रणा कर रहे हैं। उस अवसर पर रात्रि का वर्णन कवि निराला करते हैं।

भावार्थ—अमावस्या की रात है। आसमान गहरा अन्धकार उगल रहा है। अँधेरे के कारण दिशाओं का ज्ञान नष्ट हो रहा है, अर्थात् यह नहीं मालूम पड़ता है कि कौन किधर है। हवा का बहना शांत है, अर्थात् चारों ओर सायं-सायं भरा सन्नाटा है। पीछे की तरफ विशाल समुद्र लगातार गर्जन कर रहा है। पर्वत किसी ध्यान-मग्न तपस्वी की भाँति शान्त है और वहाँ केवल एक मशाल जल रही है।

अलंकार—(१) मानवीकरण—गगन, अम्बुधि एवं भूधर। (२) स्वभावोक्ति—पूरा छन्द। (३) उपमा—ज्यों ध्यान-मग्न।

विशेष—(१) आलम्बन रूप में प्रकृति का भयंकर रूप चित्रित है।

२. भयानक रस की व्यंजना है। वातावरण की भयानकता सजीव हो उठी है।

(च) **स्थिर राघवेन्द्र** .... **हार-हार।**

शब्दार्थ—स्थिर=स्वभावतः शांत। रिपुदम्य=शत्रु द्वारा दमित। श्रान्त =थकित। अयुत=दस हजार। लख=एक लाख। दुराक्रान्त=दुर्दमनीय।

संदर्भ—कवि निराला अवसादग्रस्त राम के अन्तर्द्वन्द्व का अंकन करते हैं।

भावार्थ—स्वभाव से ही शांत रघुवंश में इन्द्र के समान राम को युद्ध में पराजित हो जाने की शंका बार-बार विचलित कर देती है। वे इस जग के जीवन में रावण की विजय के भय से काँप उठते हैं। शत्रुओं का दमन करने वाला राम का हृदय जो आज तक कभी विचलित नहीं हुआ था और जो अकेला ही दस-दस सहस्र और लाखों शत्रुओं के बीच दुर्दमनीय बना रहा, यह सोच-सोच कर आकुल व्याकुल हो रहा था कि कल रणभूमि में किस प्रकार युद्ध कर सकेगा। उनका मन बार-बार लड़ने को तैयार होकर भी बार-बार अपने आपको असमर्थ मानकर अपनी पराजय स्वीकार कर रहा था।

अलंकार—(१) परिकरांकुर—राघवेन्द्र। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—फिर फिर, बार-बार (३) वीप्सा—रह रह, हार हार। (४) स्वभावोक्ति—पूरा छन्द।

विशेष—१. राम को मानव के रूप में ग्रहण किया गया है।

२. मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से यह स्थल अत्यन्त मार्मिक है।

३. भावानुकूल पद-विन्यास द्रष्टव्य है।

४. इन पंक्तियों में अभिव्यक्ति हेतु ग्रहण की हुई संवेगात्मक विधि व्यक्ति की भावप्रवणता की द्योतिका है।

५. राम के माध्यम से वस्तुतः कवि ने अपने जीवन की अवसादनिराशा को व्यक्त किया है।

(छ) **ऐसे क्षण** .... **कम्पन तुरीय।**

शब्दार्थ—अच्युत=राम। पृथ्वी तनया=सीता। निष्पलक=एक टक। विदेह=राजा जनक। लतान्तराल=लताओं के बीच में। समुदाय=हर्ष सहित। मलय वलय=चन्दन के वृक्षों का समूह। ज्योति=सूर्य का प्रकाश। प्रपात=झरना। स्वीय=अपनी। तुरीय=तुरीयावस्था, समाधि की स्थिति।

संदर्भ—निराशा के क्षणों में राम को यकायक अपने और सीता के प्रथम मिलन की याद आ जाती है। कवि निराला इसी का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—निराशा और अवसाद के इन क्षणों में यकायक राम को कुमारी जानकी की सुन्दरता का स्मरण उसी प्रकार हो आया, जिस प्रकार गहरे काले बादलों के मध्य यकायक बिजली चमक जाती है। इन्हें राजा जनक का वह उपवन याद आ गया जिसमें वह सीता को एकटक देखते रह गये थे। वहीं लताओं के झुरमुट के मध्य उनकी आँखें चार हुई थीं तथा उनके नेत्रों ने ही प्रेम की कथा को एक-दूसरे से कहा था पहली बार ही वे पलकें प्रेम से भरी नवीन पलकों के रूप में उठी थीं और झुकी थीं। वहाँ छोटे-छोटे पत्ते हिल रहे थे। पराग हर्षपूर्वक झर रहा था। प्रातःकालीन सूर्य का प्रकाश ऐसा लग रहा था, मानो स्वर्ण का कोई झरना झर रहा था। सीता के सुन्दर नयनों में इस प्रथम मिलन के कारण एक प्रकार की पुलक दौड़ गई थी, जो तुरीयावस्था के समान आत्मविस्मृत करने वाली थी।

अलंकार—(१) उपमा—जैसे विद्युत। (२) परिकरांकुर—अच्युत। (३) विभावना—नयनों का नयनों से सम्भाषण। (४) अनुप्रास—पलकों·······पतन। (५) मानवीकरण—अन्तिम पंक्तियाँ। (६) पदमैत्री—किसलय, समुदय, परिचय, मलय, वलय।

विशेष—१. यहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार रस की व्यंजना है। स्मृति, संचारी भाव के माध्यम से 'स्मरण' दशा का अंकन किया गया है।

२. राम के माध्यम से कवि ने अपनी विरह-वेदना का वर्णन किया है।

३. अंधकारपूर्ण रात्रि को उद्दीपन विभावान्तर्गत ग्रहण किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी ऐसा ही वातावरण समुपस्थित होने पर विरही राम को व्याकुल दिखाया—

घन-घमंड गरजत नभ घोरा। प्रियाहीन डरपतु मन मोरा ॥

४. विदेह का·······सम्भाषण। तुलना कीजिए—

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥

× × × ×

लता ओट सब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥

× × × ×

थके नयन रघुपति छवि देखें। पलकन्हि हूँ परिहरीं निमेषैं ॥

(ज) **सिहरा तन .... मुक्त दल ।**

शब्दार्थ—हर=शिव । पुनर्वार=दुबारा । स्मिति=हँसी । मन्त्रपूत=मंत्रों से पवित्र किए हुए । शलभ=पतंगे । रजनीचर=राक्षस । भीमा=भयानक । आच्छादित=ढका हुआ । समग्र=समस्त । ज्योतिर्मय=अग्नि से युक्त । महानिलय=अत्यन्त विशाल । अतुल=अतुलनीय ।

संदर्भ—सीता की कुमारिका छवि की झाँकी पाते ही राम को अपने पराक्रम का सहज स्मरण हो आता है । कवि निराला इसी मनोवैज्ञानिक स्थिति का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—सीता की छवि का स्मरण आते ही राम का समस्त तन रोमांचित हो गया, उनका मन हर्षातिरेक से भर गया और उनका हाथ अपने आप ही इस प्रकार ऊपर को उठ गया, जैसे वह फिर दुबारा शिव के धनुष को तोड़ना चाहते हों । सीता के ध्यान में निमग्न राम के होठों पर सहसा ही [आशा और विश्वास की] मुस्कान प्रकट हो गई और उनके हृदय में विश्व-विजय की भावना भर आई । उन्हें अपने उन दिव्य और मन्त्रों द्वारा पवित्र किए हुए अगणित वाणों की याद आ गई जो आकाश में उसी प्रकार उड़े थे, जिस प्रकार अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए देवदूत उड़ते हैं । अपनी कल्पना में तब राम ने देखा कि ताड़का, सुबाहु, विराध, त्रिशिरा, दूषणखर आदि समस्त राक्षस उनके वाणों की आग में पतंगों की भाँति जल रहे थे । इसके बाद उन्हें वह विशाल मूर्ति याद आई जो आज उन्होंने रण में देखी थी । वह मूर्ति अपनी विशालता से समस्त आकाश को ढके हुए थी और जिसमें लग-लग कर उनके समस्त अग्निवाण नष्ट हो गये थे—क्षीण होकर बुझ गये थे । वे वाण उस प्रलय-रूपी विशाल मूर्ति के तन में क्षण-भर में समा गये थे । इस दृश्य को देखकर अपार बलशाली तथा विष्णु के अवतार राम अपनी पराजय की शंका से व्याकुल हो उठे और उनकी आँखों में सीता के वे नेत्र झाँकने लगे, जिनमें राम की मूर्ति समाई हुई थी, अर्थात् वह सोचने लगे कि अब मैं अपनी प्रेमिका सीता को कैसे प्राप्त कर सकूँगा । इसके बाद उन्हें अपने सामने विजय दृप्त रावण का खल-खल करता हुआ अट्टहास सुनाई पड़ा । भावातिरेक के कारण राम के नेत्रों से मोती जैसे दो आँसू टपक पड़े ।

अलंकार—(१) उत्प्रेक्षा—ज्यों उठा हस्त । (२) उपमा—उड़े ज्यों देव-दूत, ज्यों पतंग । (३) रूपक—तन महानिलय में । (४) दृष्टान्त—महानिलय

····लीन। (५) पुनरुक्तिप्रकाश—बुझ-बुझ कर। (६) विरोधाभास—शंकाकुल, अतुल बल, शेष नयन। (७) वीप्सा—खल-खल। (८) उदात्त—खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।

विशेष—१. इन पंक्तियों में वीर एवं रौद्र रस शृंगार रस के सहायक होकर आए हैं। उनके पश्चात् भयानक रस में पर्यवसान बहुत ही सटीक बन गया है।

२. राम के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण सर्वथा मनोवैज्ञानिक है।

३. अवसाद और नैराश्य के क्षणों में प्रियतमा की मूर्ति का बादलों में बिजली के समान चमक जाना बहुत ही सार्थक है।

४. प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप में है। 'स्मरण' दशा है। 'स्मृति' संचारी भाव की व्यंजना है। Flash back पद्धति द्वारा सीता के प्रथम मिलन का वर्णन किया गया है।

५. प्रस्तुत छन्द में सीता का चित्रण राम की शक्ति के रूप में किया गया है। सीता की स्मृति मात्र से राम का खोया हुआ विश्वास और टूटता हुआ पौरुष लौट आते हैं।

६. महाशक्ति चण्डी के विकराल रूप में रावण के साथ युद्ध कर रही थी। यह चण्डी ही प्रलयस्वरूपा थी जो राम के समस्त आयुधों को विफल कर देती थी।

७. छायावादी कवि नारी को प्रेयसी और प्रेरणा मानते हैं। इन पंक्तियों में सीता का यही रूप चित्रित है।

८. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "दुःख में जो स्थिति 'भय' की है, आनन्द में वही स्थिति 'उत्साह' की है।" निराला जी ने दुःख के क्षणों में भय के द्वारा राम को क्रियाशील बनने की प्रेरणा प्रदान की है। पुरुष-सिंह राम दूने उत्साह के साथ अपनी परिस्थितियों पर काबू पाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं।

९. राम को मानव-रूप में ग्रहण किया गया है। राम के चरित्र को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए कवि ने उनके चरित्र की मानवोचित दुर्बलता का भी तन्मयता के साथ चित्रण किया है।

(झ) बैठे मारुति ···· ···· निश्चेतन।

शब्दार्थ—मारुति = हनुमान। चरणारविन्द = चरण-अरविन्द, चरण रूपी

कमल। अस्तिनास्ति=अस्ति न अस्ति, है अथवा नहीं है। उपनिषदों में इस शब्दावली का प्रयोग ब्रह्म-निरूपण के संदर्भ में किया गया है। गुण-गुण=गुणों का समूह। अनिन्द्य=निर्दोष, प्रशंसनीय। वाम=बाईं। कर=हाथ। दक्षिण=दाहिना। विश्रामधाम=मुक्ति लोक। सभक्ति=भक्ति सहित। विभक्त हो=द्वैतभाव से। श्यामा=कालिका, महाशक्ति। हीरक=हीरा। कौस्तुभ=एक मणि-विशेष। चिर प्रफुल्ल=सदैव प्रसन्न रहने वाला। निश्चेतन=चेतना रहित, मूर्च्छित। अजपा=एक विशेष प्रकार का जप, हंस मंत्र, सोऽहम का जप—इसका उच्चारण श्वास के भीतर-बाहर आने-जाने मात्र से किया जाता है। यह ध्यानावस्थित दशा का जप है।

संदर्भ—सीता के ध्यान में मग्न राम को हनुमान जी भक्ति विह्वल होकर देख रहे हैं। कवि निराला इसी स्थिति का निरूपण करते हैं।

भावार्थ—हनुमान बैठे हुए राम के चरण-कमलों को देख रहे थे। वे अपनी सम्पूर्ण गुण-गरिमा के कारण अनिन्द्य शोभा से युक्त थे। ये दोनों चरण सम्पूर्ण ब्रह्म चिंतन का प्रतिनिधित्व करते हैं या नहीं। ये चरण साधक को समरसता का संदेश देने वाले हैं। यह सोचकर हनुमान ने राम की ओर देखा। राम का बायाँ हाथ दाहिने पैर पर तथा दाहिने हाथ की हथेली पर बाँया पैर रखा हुआ था। तात्पर्य यह है कि राम पदमासन लगाकर. बैठे हुए थे। हनुमान राम के इस स्वरूप को देखकर गद्‌गद्‌ हो रहे थे—उन्हें राम के इस स्वरूप-दर्शन में सत्‌-चित्‌-आनंद स्वरूप 'ब्रह्म' की उपलब्धि हो रही थी। भगवान राम का यह पावन स्वरूप हनुमान जी के लिए परम शान्तिदायक मुक्तिलोक बना हुआ था। राम की इस भावमयी तथा गम्भीर मुद्रा को देखकर हनुमान भक्ति-भावना के साथ द्वैत मूलक उपासना में तल्लीन थे। यद्यपि तत्त्वतः ब्रह्म और जीव के अभिन्नत्व के कारण वह राम से पृथक नहीं थे, तथापि व्यवहारतः वह उनसे पृथक्‌ होकर द्वैतमूला भक्ति में लीन होकर सहज भाव से—स्वतः सम्भूत रूप से—राम-नाम का जप कर रहे थे।

इसी समय हनुमान ने देखा कि उनके आराध्य राम के चरणों पर उनकी वेदना-विकल आँखों से आँसुओं की दो बूँदें टपक पड़ीं। आँसुओं को देखकर हनुमान को ऐसा प्रतीत हुआ मानो आकाश में तारों का समूह चमक उठा हो। हनुमान को प्रतीत होता था कि वे चरण राम के न होकर स्वयं देवी शक्ति—

कालिका के शुभ चरण हैं और उनके मध्य में गिरकर सुशोभित होने वाली आँसुओं की दो बूँदें दो हीरे हैं अथवा दो कौस्तुभ मणियाँ हैं ।

हनुमान के ध्यान का तार टूटा, अर्थात् उनकी तल्लीनता भग्न हुई और उगका स्थिर मन विकल हो उठा । उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ । उन्होंने आँखें ऊपर उठा कर देखा । वहाँ पर वे ही कमल-लोचन राम निश्चल भाव से विराजमान थे, परन्तु उनकी आँखों में आँसू उमड़ रहे थे और उनका सदैव प्रसन्न रहने वाला मन कुछ-कुछ व्याकुल और मुर्झाया हुआ था ।

अलंकार—(१) रूपक—चरणारविंद, कमल-लोचन । (२) संदेह—अस्ति-नास्ति, हीरक या कौस्तुभ । (३) विरोधाभास—जपते····रामनाम, टूटा तार स्थिर मन हुआ चिर प्रफुल्ल मुख निश्चेतन । (४) उपमा—ज्यों तारादल । (५) अपह्नुति—ये चरण नहीं राम के । (६) पुनरुक्तिप्रकाश—गद्गद्, व्याकुल-व्याकुल । (७) विषम—चरणारविन्द के मध्य हीरक । (८) पदमैत्री—गुण गण, विश्राम धाम, कर पर कपिवर ।

विशेष—१. हनुमान की परम्परागत दास्य भाव की भक्ति का चित्रण अत्यन्त सहज रूप में किया गया है ।

२. राम की मुद्राओं का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक है ।

३. देवी शक्ति के प्रति कवि की आस्था स्पष्टतः अभिव्यक्त है ।

४. छन्द में धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिवेश का सहज समावेश है ।

५. अस्ति-नास्ति, सच्चिदानन्द, अजपा आदि शब्द पारिभाषिक हैं । इसके कारण 'अप्रतीत्व' दोष आ गया है ।

६. हनुमान के चिन्तन द्वारा छायावादी कवि निराला की रहस्यात्मक जिज्ञासा की स्पष्ट ही अभिव्यक्ति हुई है ।

(ञ) ये अश्रु ···· ···· अट्टहास ।

शब्दार्थ—उद्वेल=उत्तेजित । शक्ति-खेल-सागर=शक्ति के साथ के खेलने वाला तथा सागर के समान अथाह हनुमान । पवन उनचास=प्रलय काल के समय चलने वाले पवन । तुमुल=भयंकर । पितापक्ष=पूर्वजों की ओर । शतघूर्णावर्त=सैकड़ों भयंकर चक्कर लगाते हुए । तरंग भंग=लहरों की गति । प्रतिसन्ध=सीमा, मर्यादा । स्फीत वक्ष=फैला हुआ (विस्तृत) वक्ष, विशाल हृदय । महाराव=भीषण जयघोष । देश-भाव=स्थान का ज्ञान ।

अनिल=पवन। वज्रांग=वज्र सदृश कठोर अंग वाले। क्षुब्ध=क्रुद्ध। पक्ष=पंख। वाष्प=रोमांच जनित स्वेदकण।

संदर्भ—राम के क्लेश का कारण शक्ति को अनुमानित करके हनुमान जी शक्ति से इसका प्रतिशोध लेने का निश्चय करते हैं।

भावार्थ—राम की आँखों में आँसू हैं—बस, इतना-सा विचार मन में आते ही अपार शक्ति के साथ खेलने वाले तथा सागर सदृश अथाह बलशाली हनुमान उत्तेजित हो उठे। उनकी उत्तेजना द्वारा प्रेरित होकर उनके पिता 'मरुत' की ओर से भयंकर गर्जन करते हुए उनचासों पवन एक साथ मिलकर चलने लगे। समुद्र के विशाल वक्षस्थल पर एकत्र वाष्पराशि को उन पवनों ने उड़ा दिया, अर्थात् समुद्र पर एकत्र समस्त भाप उड़कर बादल रूप में घिर आई, और सैकड़ों भयंकर चक्कर लगाती हुई भवरें चलने लगीं। पानी की लहरें पहाड़ों की तरह उठती थीं और वे एक दूसरे के ऊपर पछाड़ खाकर गिरती थीं। पानी का यह अथाह प्रवाह पृथ्वी की सीमा को तोड़ कर सागर के हृदय (फाट) को विस्तृत करने लगा। सागर शक्तिशाली होकर दिग्विजय करने के लिए प्रतिक्षण आगे की ओर बहने लगा, अर्थात् सागर मर्यादाहीन हो गया और चारों ओर पानी-ही-पानी दिखाई देने लगा। समुद्र का जल सैकडों वायुओं के तीव्र वेग से बहने लगा और स्थान का ज्ञान समाप्त हो गया, अर्थात् कहीं पर भी जमीन नहीं दिखाई देती थी। जलराशि को मथता हुआ वायु भयंकर शब्द कर रहा था। इस प्रकार भयंकर दृश्य उपस्थित हो जाने पर वज्र के समान दृढ़ अंग वाले तथा एकादश रुद्र के अवतार हनुमान जी क्रुद्ध होकर अट्टहास करते हुए वायु को अधिकाधिक भयंकरता प्रदान करके महाकाश में पहुँच गये।

अलंकार—(१) मानवीकरण—जलराशि। (२) रूपक—एकादश रुद्र।

विशेष—१. प्रकृति के भयंकर रूप का आलम्बन रूप में वर्णन किया गया है। हनुमान और क्रुद्ध सागर के प्रलयंकर रूप का संश्लिष्ट चित्र अंकित किया गया है। इसमें वाह्य प्रकृति और आभ्यन्तर प्रकृति का सुन्दर सामंजस्य है।

२. हनुमान की राम-भक्ति एवं विपुल शक्ति का सजीव चित्रण है।

३. भाषा का नाद-सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

४. भयंकर रस के व्यंजक महाप्राण शब्दों का चयन कवि के भाषाधिकार का साक्षी है।

५. हनुमान के पराक्रम को व्यक्त करने के लिए कवि ने दीर्घ सामासिक पदावली का सफल प्रयोग किया गया।

६. वीर तथा रौद्र तथा भयानक रसों की मिली-जुली छटा इन पंक्तियों में विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(ट) रावण महिमा .... दूर रोध।

शब्दार्थ—श्यामा = शक्ति, काली। विभावरी = रात्रि। दशास्कन्ध पूजित = रावण के द्वारा पूजित। रुद्र = शिव। वन्दन = वन्दना। प्रताप = ऐश्वर्य अग्नि। कूजित = कीर्तित। मन्द्र स्वर = मेघ निर्घोष के समान गम्भीर वाणी। सम्वरो = नियन्त्रित करो, रोको। शृंगार युग्मगत = शृंगारिक भावना से नारी के साथ आबद्ध, प्रेयसी के प्रेमालिंगन में बद्ध। अनन्य = एकनिष्ठ। दिव्य भावधर = अलौकिक भावनाओं से युक्त। प्रबोध = ज्ञानोपदेश। रोध = रुकावट—लक्षणा से संकट। अक्षय = जो कभी क्षीण या नष्ट न हो, अनश्वर।

संदर्भ—आकाश में ऊपर जाकर हनुमान देखते हैं कि वह कौन-सी शक्ति है जो रावण के लिए विजय-कवच का काम कर रही थी।

भावार्थ—हनुमान ने महाकाश में पहुँचकर देखा कि वहाँ एक ओर तो रावण की महिमा को बनाए रखने वाली तथा रात के अन्धकार के समान श्यामवर्ण वाली महाशक्ति थी, तथा दूसरी ओर अपने प्रभु राम के तेजस्व और प्रतापाग्नि का प्रसारण करने वाले रुद्र-रूप-धारी हनुमान थे। उस ओर राम के द्वारा पूजित शिव की शक्ति थी और इस ओर राम के द्वारा उच्चारण की हुई शिव की वन्दना थी, जिसके बल पर होकर हनुमान समस्त आकाश को निगलने का साहस कर रहे थे। भावी महानाश को देखकर अचल शिव क्षण-भर के लिए चंचल हो गए और काली के पदतल का भार धारण करने वाले शिव मन्द स्वर में बोले—"हे देवि! अपना तेज रोको। यह वानर नहीं है। यह कभी काम द्वारा पीड़ित होकर किसी नारी के प्रेम-पाश में आबद्ध नहीं हुआ है। यह महावीर है। यह राम की शरीर धारिणी साक्षात् अखण्डित अर्चना है। इसका ब्रह्मचर्य अखण्ड है। ये एकादश रुद्र के समान धन्य हैं अर्थात् उन्हीं के अवतार हैं। ये मर्यादापुरुषोत्तम राम के एकनिष्ठ, सर्वोत्तम और अनन्य भक्त हैं। यह उनकी लीला के सहचर हैं और यह दिव्य भावों को धारण करने वाले हैं। हे देवि! इन पर प्रहार करने से तुम्हारी बुरी तरह हार होगी। तुम इस समय विद्या का

सहारा लेकर इनको ज्ञानोपदेश दो। बन्दर हनुमान झुक जायगा और तुम्हारे मार्ग की बाधा दूर हो जाएगी।"

अलंकार—(१) रूपक—रावण महिमा....प्रसार पदतल, भार। (२) विरोधाभास—अचल चंचल। (३) अपह्नुति—नहीं वानर। (४) उल्लेख—महावीर....दिव्य भावधर। (५) विशेषोक्ति की व्यंजना—प्रहार....हार। (६) पदमैत्री—ग्रस्त समस्त, वन्दन रघुनन्दन, अचल, चंचल।

विशेष—१. हनुमान के वर्चस्व तथा तेजपूर्ण व्यक्तित्व का निरूपण सबल भाषा में किया गया है।

२. तमोगुण के ऊपर सत्त्वगुण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

३. रावण और रावण की शक्ति का अंकन किया गया है। राम का बल अर्चना रूप सात्त्विक है और रावण का बल अन्धकार स्वरूप तमोगुणी है।

४. भाषा भावानुकूल तथा मधुर है।

(ठ) **कह हुए .... प्रभु पद हुए दीन।**

शब्दार्थ—पवन-तनय=हनुमान। अनर्थ=अनुचित कार्य। असम्भाव्य=अनुचित कार्य—जो सम्भावित जन के अनुरूप न हो। गह=ग्रहण करके। धार्य=धारण करने योग्य, स्वीकार्य।

संदर्भ—शिव की शक्ति शिवजी के मतानुसार मातृरूप धारण करके हनुमान के सम्मुख उपस्थित होती है।

भावार्थ—इतना कह कर शिवजी चुप हो गए। हनुमान के मन में विस्मय भाव भरती हुई यकायक आकाश में हनुमान की माता अंजना के रूप का प्रादुर्भाव हुआ। माता अंजना कहने लगी, जब पहले तुमने सूर्य को निगल लिया था, तब तुम निरे बालक थे और तुमको उस समय [औचित्यानौचित्य का] ज्ञान नहीं था। वही बचपना तुम्हें परेशान कर रहा है। तुम्हारी उस उद्दंडता के कारण मुझको लज्जा आती रहती है। तुम क्या यह चाहते हो कि मैं जन्म भर तुम्हारी उद्दंडताओं के कारण लज्जा से मरती रहूँ? यह महाकाश है जहाँ उन शिवजी का निवास स्थान है, जिनकी पूजा तुम्हारे आराध्य श्रीराम भी करते हैं। तुम उसी महाकाश को निगलने के लिए अग्रसर होकर क्या अनुचित कार्य नहीं कर रहे हो? तुम अपने मन में तो विचार करो। क्या राम ने तुमको यह कार्य करने की आज्ञा दे दी है? तुम राम जी के सेवक हो। तुम सेवक धर्म का परित्याग करके यह कार्य कर रहे हो। इस अनुचित कार्य को

क्या राम स्वीकार कर सकेंगे ? बन्दर हनुमान तत्काल विनीत बन गए। उसी क्षण अंजना माता रूपी शक्ति अन्तर्द्धान हो गई। हनुमान धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतर आए और उन्होंने अत्यन्त दीन भाव से प्रभु राम के चरणों को ग्रहण कर लिया।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—रह-रह, सह-सह, धीरे-धीरे। (२) वक्रोक्ति—क्या नहीं कर रहे अनर्थ, क्या दी आज्ञा रघुनन्दन ने, क्या असम्भाव्य ....धार्य। (३) स्वभावोक्ति—कार्य हुए....दीन। (४) विषम—शिव निर्मल.... ग्रसने।

विशेष—१. आकाश में अंजना माता की मूर्ति के उदय को माध्यम बनाकर कवि ने वस्तुतः हनुमान के अन्तर्द्वन्द्व की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। हनुमान का मानसिक संघर्ष सजीव हो उठा है।

२. इन पंक्तियों में वीर, भयानक तथा वात्सल्य रसों की सुन्दर व्यंजना है। अन्त में इनका पर्यवसान 'भक्ति' में दिया गया है।

(ड) राम का विषण्णानन .... धिक्-धिक्।

शब्दार्थ—विषण्णानन = उदास या दुःखी मुख। वदन = मुख। निर्जर = वार्द्धक्य रहित, अमर, शक्ति-सम्पन्न। भल्लूक = भालू। विगतश्रम = थकान से रहित, स्फूर्त। तूण = तरकस। प्रमन = प्रसन्न। जितरण = युद्ध में जीतने वाले। सुमित्रानन्दन = सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण। ताराकुमार = अंगद। अप्रतिभट = अद्वितीय योद्धा। अर्बुद = दस करोड़। दक्ष = कुशल। पीठ फेरना = पराजय स्वीकार करना। भाव-प्रहर = निराशा के भाव का उदय। कल्मष = पाप। गताचार = आचारहीन। कलकूजित पिक = मधुर वाणी में बोलती हुई कोयल। पाद प्रहार = पैर की ठोकर। परिषद् दल = दरबारी लोगों का समूह, सभासदों का समूह।

संदर्भ—उदास राम से विभीषण कहते हैं।

भावार्थ—राम के उदास मुख को कुछ क्षणों तक देखने के पश्चात् विभीषण बोले, हे सखा ! आपका वह प्रसन्न मुख नहीं है जिसको देखकर समस्त बन्दर और भालू आदि समस्त थकान को भूलकर जीवन की नवस्फूर्ति पुष्ट करते थे। हे रघुवीर ! तुम्हारे तरकश में आज भी वे ही सब तीर मौजूद हैं [जिनसे आपने अपने इतने दुष्टों का वध किया है]। साहस भरा हुआ वक्षस्थल भी वही है, रण-कौशल से युक्त हाथ भी वे ही हैं और तुम्हारा अपार

बल है, युद्ध में मेघनाद को जीतने वाले लक्ष्मण भी वही हैं, जाम्बवान हैं, वानरों के राजा प्रसन्न मन वाले सुग्रीव भी वही हैं, श्वेत रंग वाले-धैर्य, बल एवं महाबल को धारण करने वाले अंगद भी वही हैं, एक अरब योद्धाओं के बल को धारण करने वाले अद्वितीय सेनानी हनुमान भी वही हैं, वे ही कुशल सेनानायक भी हैं, वही युद्ध-स्थल है; तब कुसमय में तुम्हारे मन में यह निराशा का भाव क्योंकर उदय हुआ है ? हे रघुकुल के गौरव ! तुम इस समय लघुता का अनुभव करने लगे हो। जब युद्ध में विजय होने वाली है, उस समय तुम युद्ध से मुँह मोड़ रहे हो। अर्थात् स्वयं अपनी पराजय स्वीकार कर रहे हो। तुम्हारे इस प्रकार के आचरण द्वारा कितना परिश्रम (खून-पसीना) व्यर्थ हो जाएगा ? जब जानकी से मिलने का समय आया है तब तुम कठोर बनकर उनकी ओर से जानकी की मुक्ति से अपना हाथ खींच रहे हो ? और रावण ! रावण तो धूर्त्त, पापी, दुष्ट और आचार-भ्रष्ट है। उसने भले ही बात कहते हुए मुझ में पैर की ठोकर मारी थी। वह उपवन में बैठकर फिर सीता को अनेक प्रकार के दुःख देगा और अपने दरबारियों से घिरकर अपनी विजय-गाथा को सुनाएगा और वह वसन्त ऋतु में कोयल की मधुर वाणी द्वारा गुँजित उपवन में आनन्द से दिन व्यतीत करेगा। किन्तु मैं लंकापति बनता-बनता रह गया। हे राघव ! इसके लिए इतिहास आपकी विगर्हणा करेगा।

अलंकार—(१) वृत्यानुप्रास—वीर वानर वह वदन, कलकूजितपिक। (२) वक्रोक्ति—तीर सब वही—भाव-प्रहर। (३) विरोधाभास—घेर रहे···· निर्दय। (४) वीप्सा—धिक्-धिक्। (५) उपमा—अर्बुद सम।

विशेष—१. इन पंक्तियों में विभीषण को राम के एक सच्चे मित्र के रूप में चित्रित किया गया है।

२. शैली में सहजता एवं व्यंग्य का पुट है।

३. **हाथ खींचना, पीठ फेरना** आदि मुहावरों के प्रयोग के कारण शैली में वैदग्ध्य एवं प्रभावशीलता का समावेश हो गया है।

(ढ) सब सभा रही ···· ···· नहीं शक्ति।

शब्दार्थ—निस्तब्ध=आश्चर्य-स्तम्भित। विमन=अनमने। चाव=लगाव। दुराव=छिपाव। स्पन्दित=आन्दोलित। विषम—भयंकर। स्तिमित=अधखुले।

संदर्भ—विभीषण के कथन की कोई भी प्रक्रिया राम पर नहीं हुई। वह पूर्ववत् उदास बैठे रहे। कवि निराला राम की इसी उदासी का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—विभीषण के कथन करने के पश्चात् समस्त सभा आश्चर्य-स्तम्भित हो गई। राम के अधखुले नयन शीतल प्रकाश विकीर्ण करते हुए और उदास भाव को लिये हुए देखते रहे। विभीषण के शब्दों में निहित ओजस्वी भाव के प्रति राम के मन में न तो किसी प्रकार का लगाव था और न दुराव था। मानो वे मैत्री को प्रकट करने वाले शब्द मात्र थे—मानो विभीषण—अपने कथन रूप में अर्थ-रहित शब्दों का ध्वनि-समूह मात्र था। उनमें हृदय को स्पर्श करने की तथा हृदय को झंकृत करने की क्षमता ही प्रतीत नहीं होती थी।

अलंकार—१. विरोधाभास—छोड़ते शीतल प्रकाश देखते विमन।

२. विशेषोक्ति—ओजस्वी""दुराव।

३. उत्प्रेक्षा—ज्यों होवे।

विशेष—१. विभीषण की मानसिक स्थिति का सहज स्वाभाविक चित्रण करके निराला ने मानव-स्वभाव में अपनी गहरी पैठ का परिचय दिया है। राम को उदास देखकर विभीषण को सर्वप्रथम अपनी फिक्र होती है। उसके शब्दों में आत्म-रक्षाजनित स्वार्थ की गंध अधिक तीव्र है। उनमें सच्चे मैत्री भाव की सच्चाई की अभिव्यक्ति नहीं है। इसी कारण राम के ऊपर भी उनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। वह उन्हें केवल 'औपचारिकता' समझ कर सुना-अनसुना कर देते हैं।

२. विषादग्रस्त राम की मानसिक स्थिति का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण है।

३. सरल भाषा में मनोभावों के चित्रण तथा उनकी प्रतिक्रिया की सूक्ष्मता के अंकन में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

(ग) **कुछ क्षण तक .... विषम।**

शब्दार्थ—रघुमणि = राम। दृगजल = आँसू। गह-युग-पद = दोनों पैर ग्रहण करके। मसक दण्ड = पुष्ट भुजाएँ। स्पन्दित = आन्दोलित। विषम = भयंकर। शक्ति = चण्डी।

सन्दर्भ—विभीषण के वचनों की प्रतिक्रिया स्वरूप उठने वाले भावों को कवि निराला अभिव्यक्त करते हैं।

भावार्थ—कुछ क्षण तक चुप रहने के पश्चात् राम अपने सहज कोमल स्वर

से बोले, "हे मित्रवर विभीषण ! अब युद्ध में हमारी विजय नहीं होगी। यह मनुष्यों और बन्दरों के मध्य होने वाला युद्ध नहीं रह गया है। रावण का निमन्त्रण प्राप्त करके महाशक्ति उसकी सहायतार्थ अवतरित हुई है। जिधर अन्याय है उधर शक्ति है।" यह कहते हुए राम की आँखों में आँसू छलक आए और उनकी आँखों से आँसुओं की कुछ बूँदें ढलक कर गिर पड़ीं और उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया—वह आगे कुछ न कह सके। राम की यह दशा देख कर लक्ष्मण अपने प्रचण्ड तेज से चमक उठे। हनुमान राम के दोनों चरणों को पकड़ कर के [लज्जा के मारे] पृथ्वी में धँस गये और पुष्ट भुजाओं वाले जाम्बवान जहाँ-के-तहाँ रह गये। इन समस्त भावों को समझने वाले सुग्रीव व्याकुल हो गये, मानो उनके हृदय में भयंकर घाव लगा हो। विभीषण आगे का कार्यक्रम निश्चित-सा करते हुए दिखाई दिए। इस प्रकार वह समस्त वातावरण मौन रूप से स्पंदित हो उठा, अर्थात् उनका मौन ही सब कुछ कहे दे रहा था।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—छल-छल। (२) उत्प्रेक्षा—ज्यों विषम घाव। (३) विरोधाभास—अन्याय जिधर है उधर शक्ति। (४) विषम—मौन में रहा····विषम। (५) स्वभावोक्ति—पूरा छन्द।

विशेष—१. विशेषण-विपर्यय—चमका लक्ष्मण तेज।

२. विभिन्न पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का बड़ा ही सजीव एवं प्रभावशाली वर्णन है। इससे कवि राम के प्रति पाठक की सहानुभूति प्राप्त करने में समर्थ हुआ है।

३. इन पंक्तियों में राम के अनुभावों का विधान बहुत ही सफल है।

(त) निज सहज ···· ···· हुआ त्रस्त।

शब्दार्थ—सहज=स्वाभाविक। संयत=स्थिर। जानकी प्राण=राम। दैवी विधान=ईश्वरीय नियम। अपर=अन्य। योजित=नियुक्त संधान। शर-निकर=वाणों का समूह। निशित=सान पर चढ़ाया हुआ, तीक्ष्ण। संसृति =संसार। बोध=ज्ञान। धृत=धारण किए। प्रजापति=ब्रह्मा, राजा। श्रीहत=शोभा से रहित। लांछन=कलंक। शशांक=चन्द्रमा। अशंक=शंका रहित। समवृत=टोकना। वामा=नारी, पत्नी। त्रस्त=भयभीत। क्षिप्र= शीघ्र। वह्नि=अग्नि। हस्त=हाथ।

संदर्भ—विभीषण के प्रति राम के उत्तर का वर्णन कवि निराला करते हैं।

भावार्थ—राम संयत होकर अपने स्वाभाविक रूप से कहने लगे—मेरी

समझ में यह ईश्वरीय नियम नहीं आया कि रावण अधर्म में लगा हुआ है, फिर भी महाशक्ति ने उसको अपना समझा लिया है और उसके लिए मैं गैर (दूसरा) हो गया हूँ। यह युद्ध तो महाशक्ति का खेल हो गया है। हे शंकर रक्षा करो ! मैं सान पर चढ़ाए हुए उन तीक्ष्ण वाणों का बार-बार संधान करता हूँ, जिनके द्वारा सम्पूर्ण संसार को जीता जा सकता है, जो तेज के समूह हैं और जिनमें सृष्टि की रक्षा का वर्चस्व निहित है, जिनमें उद्धार करने वाली संस्कृति निहित है, जिनमें पूर्णतया शुद्ध ज्ञान है, जिनमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मन का विवेक है, जो क्षात्र धर्म का पूर्ण अभिषिक्त रूप धारण किए हुए हैं, जो प्रजापतियों के संयम द्वारा रक्षित हैं, वे ही वाण आज रण में शोभा से विहीन एवं टूक-टूक हो गये। मैंने स्वयं रण में देखा है कि महाशक्ति रावण को गोद में इस तरह लिए हुए थी जैसे आकाश-स्थित चन्द्रमा निश्शंक होकर लांछन (कालिमा) को धारण किए हुए है। मन्त्रों से पवित्र किए हुए मेरे वाणों को वह बार-बार तोड़ रही थी। मैं बार-बार शीघ्रता से अपने लक्ष्य पर प्रहार करता था, किन्तु मेरे सन्धान बार-बार व्यर्थ हो जाते थे। मैं युद्ध में वानर-समूह को विचलित देखकर क्रुद्ध होकर ज्यों-ज्यों युद्ध करता था, त्यों-त्यों उस महाशक्ति की आँखों से अग्नि निकलती थी। इसके बाद वह मेरी ओर देखने लगी। मेरे हाथ बँध गये। मुझ से धनुष नहीं खिंचा। मैं मुक्त होते हुए भी बँध गया था। इस स्थिति के कारण मैं भयभीत हो गया।

अलंकार—(१) विरोधाभास—रावण अधर्मरत⋯अपर। मुक्त ज्यों बँधा। (२) वीप्सा—शंकर शंकर। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—बार-बार। (४) विषम—लांच्छन⋯⋯शशांक। (५) अनुप्रास—निकर निशित, शक्ति शंकर शंकर, शत शुद्धि, झकझक झलकती। (६) पदमैत्री—बार-बार शर-निकर, वार पर वार। क्रुद्ध युद्ध। (७) विशेषोक्ति—हो सकती जिनसे⋯⋯खण्डित, निष्फल। होते⋯⋯वार पर वार। उदाहरण—लांछन को जैसे शशांक—अशंक। (८) विभावना—देखने लगी⋯⋯हस्त।

विशेष—१. बंगाल की संस्कृति का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है। बंगाल की काली-पूजा का प्रभाव स्पष्ट है। निराला के कवि हृदय ने सदैव शक्ति की पूजा की।

२. महाशक्ति के अंक में अशंक रावण के लिए चन्द्रमा की गोद में खेलने वाले कालिमा के कलंक-चिह्न का उपमान अत्यन्त सुन्दर और सटीक है।

(थ) कह हुए भानु .... बार-बार।

शब्दार्थ—भानुकुल भूषण=सूर्यवंश को सुशोभित करने वाले रामचन्द्र। आराधन=उपासना। वरो=प्राप्त करो। ध्वस्त=नष्ट। अशुद्ध=दुराचारी। त्रस्त=भयभीत। महावाहिनी=विशाल सेना। भल्ल=भालू। बाम=बाईं। पार्श्व=बगल, ओर। यूथपति=सेनापति। प्राण=शक्ति।

संदर्भ—जाम्बवान श्रीरामचन्द्र जी को शक्ति की पूजा करने की सम्मति देते हैं।

भावार्थ—ऐसा कहकर सूर्यवंश की शोभा श्रीराम क्षण-भर के लिए चुप हो गए। तब जाम्बवान विश्वास भरी वाणी बोले, "हे रघुवर! मेरी समझ में ऐसा कोई कारण नहीं आता है जिससे आप विचलित हों, अर्थात् मेरी राय में तो आप अनावश्यक रूप से घबड़ा गए हैं। हे पुरुषसिंह! तुम भी इस शक्ति को धारण करो। उपासना का उत्तर दृढ़ उपासना से दो, अर्थात् रावण की भाँति उपासना करके आप भी महाशक्ति को अपने वश में कर लें। आप अपनी शक्ति को संयत करके शक्ति पर विजय प्राप्त करें। यदि रावण दुराचारी होकर भी महाशक्ति को वश में करके आपको भयभीत कर सका है, तो आप महाशक्ति के द्वारा उसको नष्ट ही कर देंगे। आप महाशक्ति की नए सिरे से कल्पना कीजिए और उसकी पूजा कीजिए। हे रघुनन्दन! जब तक महाशक्ति को सिद्ध न कर लो, तब तक आप युद्ध से विरत हो जाइए—युद्ध करने न जाइए और तब तक लक्ष्मण ही इस विशाल सेना के सेनापति हो जाएँ, जो मध्य भाग में रहेंगे। श्वेत शरीर वाले अंगद दाहिने भाग में रह कर उनके सहायक होंगे। मैं भालुओं की सेना का संचालन करूँगा। बाएँ भाग में हनुमान होंगे। जहाँ भी भय का अवसर होगा (खटका होगा), वहीं नल, नील, छोटे-छोटे वानरों के समूह, उनके प्रधान सुग्रीव, विभीषण तथा अन्य सेनापति यथासमय रक्षा के लिए पहुँच जाएँगे।

अलंकार—(१) रूपक—पुरुषसिंह। (२) सम—आराधन....उत्तर। (३) अनुप्रास—प्राणों से प्राणों पर।

विशेष—१. बंगाल में प्रचलित शक्ति की उपासना का प्रभाव स्पष्ट है।

२. जाम्बवान के द्वारा कवि यह बताता है कि तामसी शक्ति की अपेक्षा सात्त्विकी शक्ति कहीं अधिक प्रभावकारी होती है।

३. निराला ने व्यूह-रचना की चर्चा करके युद्ध-वर्णन को सजीवता प्रदान की है।

४. भाषा भावानुकूल है। व्यास-शैली के प्रयोग द्वारा भावों की कुशल अभिव्यक्ति हुई है।

(द) **खिल गई .... बार-बार।**

शब्दार्थ—भल्लनाथ=भालुओं के नायक, जाम्बवान। पुलकित=रोमांचित।

सन्दर्भ—जाम्बवान का प्रस्ताव सुनकर सब प्रसन्न हो जाते हैं।

भावार्थ—जाम्बवान का प्रस्ताव सुनकर समस्त उपस्थित जनों के मुख प्रसन्नता से खिल उठे। राम ने बूढ़े जाम्बवान की बात मानते हुए मस्तक झुकाकर कह दिया, हे भालुओं के स्वामी ! आपका निश्चय सुन्दर है। राम विचार करते हुए पुनः ध्यान-मग्न हो गये। जाम्बवान के प्रस्ताव का अनुमोदन हो जाने से सब लोग बार-बार पुलकायमान हो रहे थे।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश—बार-बार।

विशेष—१. रोमांच अनुभाव का वर्णन है।

२. लक्षणा—खिल गई सभा।

(ध) **कुछ समय .... अभिनन्दित।**

शब्दार्थ—इन्दीवर-निन्दित=नीलकमल को निन्दित करने वाले। मज्जित=डूबा हुआ। विश्वास-स्थित=विश्वास से पूर्ण। विद्ध=बिंधा हुआ। महिषासुर=एक राक्षस का नाम। निष्पलक=एकटक। मातः=दुर्गा। खल=दुष्ट। मर्दित=चूर किया हुआ, दलित। जनरंजन=संसार को आनन्द देने वाले। तल=निम्न भाग। प्रतीक=परिचय चिह्न। इंगित=संकेत। अभिनन्दित=पूजित।

संदर्भ—श्री राम माता दुर्गा को सम्बोधित करते हुए शक्ति-आराधन का अपना निर्णय सुनाते हैं।

भावार्थ—कुछ समय पश्चात् नीलकमल को लज्जित करने वाले राम के नेत्र खुल गए, किन्तु उनका मन अब भी निर्निमेष रूप से भावों की गहराई में डूबा हुआ था। वह आवेग-रहित (शांत) तथा विश्वास-भरे स्वर में बोले, हे मातेश्वरी ! तुम दश भुजाएँ धारण करने वाली हो, तुम संसार को प्रकाश प्रदान करती हो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। तुम्हारी शक्ति से विंध कर महिषा-

सुर नामक राक्षस चूर हो गया था। मनुष्यों को आनन्द देने वाले तुम्हारे चरणकमलों के नीचे गर्जन करने वाला सिंह धन्य है। हे माता ! मैं तुम्हारा संकेत समझ गया हूँ। यह सिंह ही मेरा प्रतीक है, अर्थात् मैं भी इस वीर सिंह की तरह आपके चरणों में बैठ कर आपकी आराधना करूँगा।

अलंकार—१. व्यतिरेक—इन्दीवर-निंदित-लोचन।

२. रूपक—चरण कमल।

विशेष—१. राम शक्ति की पूजा रावण के समान श्याम के रूप में न करके महिषासुर-मर्दिनी, सिंह-वाहिनी के रूप में करने का निश्चय करते हैं। यही उनकी मौलिक कल्पना है। बंगाल में शक्ति की पूजा इसी रूप में की जाती है। जाम्बवान के कथन "शक्ति की करो मौलिक कल्पना" का यही संकेत था।

२. दुर्गा-स्तुति की संस्कृत और हिन्दी-साहित्य में एक दीर्घ-परम्परा रही है। निराला ने अनेक कविताओं—वसन्त श्री, आवाहन तथा तुलसीदास में—इस प्रकार के विराट् चित्रों की अवधारणा की है।

(म) **कुछ समय .... हो रहा खर्व।**

शब्दार्थ—स्तब्ध=अवाक्। ज्योतिर्दल=प्रकाशपुंज। छवि=दुर्गा की काल्पनिक शोभा। स्मित आनन=मुसकराता हुआ मुख। ध्यान-मग्न=विचारों में लीन (डूबे हुए)। भावस्थ=भाव में निमग्न। चन्द्रमुख निंदित=अपने मुख की शोभा से चन्द्रमा को तिरस्कृत करने वाले। मेघमन्द्र=मेघ की ध्वनि के समान गम्भीर। भूधर=पर्वत। पावन कंपन=सात्त्विक अनुभवों का कम्पन! शतहरित गुल्म-तृण=सैकड़ों हरे कुँज और वृक्ष। तृण=तिनके, घास। गुल्म =झाड़ी। अम्बर=आकाश। दिगम्बर=नग्न, दिशा ही हैं वस्त्र जिसके। अर्चित=पूजित। शशिशेखर=शिवाजी। मंगल=कल्याण। पद-तल=पैरों तले। खर्व=नष्ट।

संदर्भ—श्रीराम अपने द्वारा कल्पित दुर्गा के स्वरूप का वर्णन उपस्थित साथियों के सम्मुख करते हैं।

भावार्थ—राम कुछ समय तक दुर्गा की कल्पित मूर्ति की शोभा में निमग्न हुए अवाक् रहे। फिर उन्होंने प्रकाश से आपूरित कमल को पंखुड़ियों के समान एवं दुर्गा के ध्यान में लीन अपनी पलकें खोलीं। समस्त मन्त्री और सेनापति वीरासन से बैठे हुए व्याकुलतापूर्वक राम के मुस्कराहट से परिपूर्ण मुख को देख रहे थे। चन्द्रमुख को अपने मुख की शोभा से तिरस्कृत करने वरामाले

भावातिरेक के कारण अपने प्राणों में सात्विक अनुभाव—रोमांच का अनुभव करते हुए मेघ-सदृश मन्द स्वर में बोले, "हे बन्धुवर देखो ! सामने जो पर्वत स्थित है, जो सैकड़ों हरे-भरे कुंजों से शोभित है, जो श्यामल और सुन्दर है, वह पार्वती का ही काल्पनिक रूप है। उन सघन नील कुंजों तथा झाड़ियों में से परागराशि निरन्तर स्रवित होती रहती है। उस पर्वत-रूपी पार्वती के चरण प्रान्त में जो क्रुद्ध समुद्र गर्जन करता है, वह वस्तुतः समुद्र न होकर देवी पार्वती के चरणों में बैठा हुआ सिंह ही है।

दशों दिशाएँ ही दुर्गा के दश हाथ हैं; और ऊपर की ओर देखो ! वहाँ आकाश में दिगम्बर वेशधारी मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले पूजनीय शिव जी सुशोभित हैं। उनके मंगलकारी भाव को देखकर गर्व उनके चरणों के नीचे दबा जा रहा है। मानव के मन की आसुरी वृत्तियाँ रूपी राक्षस का नाश हो रहा है।

अलंकार—(१) रूपक—पलक कमल, मन का असुर। (२) व्यतिरेक—चन्द्रमुख निन्दित। (३) प्रतीप—पलक कमल ज्योतिर्दल। (४) मानवीकरण—पार्वती कल्पना, धँस रहा गर्व। (५) अपह्नुति—वह नहीं सिंधु। (६) अनुप्रास—प्राणोपवन, शशि शेखर। (७) सभंग पद यमक—अंबर दिगम्बर, समस्त हस्त। (८) परिकरांकुर की व्यंजना—पार्वती। (६) सांगरूपक—पार्वती····खर्व। (१०) उपमा—दश दिशि हस्त हैं।

विशेष—१. दश दिशाएँ—(१) उत्तर, (२) दक्षिण, (३) पूर्व, (४) पश्चिम, (५) ईषान, (६) नैर्ऋत्य, (७) आग्नेय, (८) वायव्य, (६) अधस्तल (पाताल) तथा (१०) ऊर्ध्व (आकाश)।

२. महाशक्ति तथा शंकर के चित्रण की कल्पना सर्वथा मौलिक, विराट और उदात्त है। शंकर और पार्वती के रूप को बाह्य प्रकृति में रूपान्तरित देखने का प्रयत्न सर्वथा मौलिक है।

३. 'छवि में निमग्न' द्वारा छायावादी सौन्दर्य चेतना की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है। सूक्ष्म भावों का मूर्त-विधान उल्लेखनीय है। सूक्ष्म भावों की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

४. इन पंक्तियों में प्रकृति का मानवीकरण उपदेशक रूप में किया गया है। कवि प्रकारान्तर से कहना यह चाहता है कि विशाल प्रकृति रूपी पर्वत के

सम्मुख आने पर ही ज्ञान-विज्ञान के दम्भ में चूर मानव रूपी-ऊँट को अपनी लघुता का भान होता है।

५. निराला की दृष्टि यदि हिमालय पर मान ली जाए, तो स्पष्टतः यहाँ उनकी देश-भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है। वह अपने देश के पर्वत और सागर के प्रति अपनी पूज्य बुद्धि की अभिव्यक्ति करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

६. तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा निराला जी की दुर्गा सम्बन्धी कल्पना की मौलिकता स्पष्ट हो जाती है—

(क) जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि पसुपति भामिनि माया।
सहज सुमति वरदिअ हे गुसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।
बासर रैनि सबासन मण्डित चरन, चन्द्रमणि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल कतन उगिलि कैल कूड़ा।
सामर बरन नैन अनुरंजित जलद जोग फल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पाँड़रि, निधुर फेन उठ फोका।
घन-घन घनन घुघुर कत बाजए, हन-हन कर तुअ काता।
'विद्यापति' कवि तुअ पद-सेवक पुत्र बिसरि जनि माता।

—विद्यापति

(ख) दूसह दोष दुख दलनि, करु देवि दाया।
छमुछ हेरम्ब अम्बासि जगदम्बिके संभु जायासि जै-जै भवानी।
चण्ड भुजदण्ड खण्डनि विहण्डनि महिष मुण्डमद भंगकर अंग तोरे।
सुंभ निःसुंभ कुंभीस रन केसरिनि क्रोध वारिधि अरिवृन्द बोरे।

—तुलसीदास

७. महाकवि केशवदास ने भी 'पंचवटी-वर्णन' के अन्तर्गत पार्वती के चित्र का बाह्य प्रकृति के साथ सामंजस्य प्रस्तुत किया है, उनका बिम्ब चमत्कारोत्पादक अधिक है जबकि निराला जी की यह बिम्ब-समायोजना एक सजीव सौन्दर्य की सृष्टि करती है। देखें—

भौंहैं सुरचाप चारु अमुदित पयोधर,
भूषण तड़ित ज्योति रलित रलाई है।
दूरि करी मुख-सुख-सुषमा ससी की नैन,
अमल कमल-दल दलित निकाई है।

केसौदास प्रबल करेनुका गमनहर,
मुकुत सुहंसक सदब सुखदाई है।
अम्बर बलित पति मो है नीलकण्ठ जू की,
कालिका कि बरषा हरखि हिय आई है। —**केशवदास**

(प) फिर मधुर .... सोचते हुए विजय।

शब्दार्थ—अन्तर=हृदय। इन्दीवर=नीलकमल। खींचते हुए=आकर्षित करते हुए। देवीदह=एक ताल विशेष जिसमें कमल खूब होते हैं। सींचते हुए =मन को शीतलता प्रदान करते हुए। सत्वर=शीघ्र। अवगत=परिचित। दूरत्व=दूर पर स्थित, दूरी। पदरज=पैरों की धूलि। प्रियतर=अधिक प्रिय।

सन्दर्भ—राम हनुमान से दुर्गा-पूजन में सहायक होने के लिए कहते हैं।

भावार्थ—इसके उपरान्त राम अपनी मधुर दृष्टि से हनुमान को अपनी ओर आकर्षित करते हुए अत्यन्त स्नेह-भरे स्वर से हनुमान के हृदय को आप्लावित करते हुए उनसे बोले, हमें कम-से-कम एक-सौ आठ कमल-पुष्प चाहिए। यदि अधिक हों, तो और भी अधिक सुन्दर रहे। प्रातःकाल होते ही तुम शीघ्रतापूर्वक देवीदह नामक सरोवर की ओर जाओ और वहाँ से कमल-पुष्पों को तोड़ कर लाओ, और लौटने पर विश्वासपूर्वक युद्ध करो।

हनुमान ने उस दूर पर स्थित स्थान के मार्ग की जानकारी जाम्ववान से प्राप्त की और प्रभु राम के चरणों की धूलि सिर पर धारण करके हनुमान प्रसन्नता से भर कर चल दिए। विश्राम का समय जानकर राम ने सबको विदा किया और सब लोग मन में दयालु राम की विजय कामना करते हुए चले गये।

अलंकार—स्वभावोक्ति—पूर्ण छन्द।

विशेष—१. भाषा का सरल एवं प्रवाहपूर्ण रूप द्रष्टव्य है।

२. राम का हनुमान के प्रति विश्वास द्रष्टव्य है।

३. फल-प्राप्ति का नाटकीय पूर्वाभास कवि के वर्णन-चातुर्य का द्योतक है।

४. "अधिक और हों अधिक और सुन्दर"—अधिकस्य अधिकम् फलम् लोकोक्ति का सफल रूपान्तर है।

(फ) निषि हुई विगत .... समाराधन।

शब्दार्थ—निशि=रात। विगत=समाप्त। ललाट=मस्तक। शरासन= धनुष। तूणीर=तरकश। निबिड़ जटा दृढ़=घनी जटाओं को मजबूती से बाँधा

गया। सुधी = ज्ञानी। गुण-ग्राम = गुणों का समूह। गहन = गम्भीर। समाराधन = आराधना, उपासना। हिरण = हिरण्य, स्वर्ण। सिंहनाद = सिंह जैसी गर्जना। पूजोपरान्त = पूजा के बाद। इष्ट = अभिलषित, इच्छित।

विशेष—हनुमान कम-से-कम एक सौ आठ कमल लेने के लिए देवीदह जा चुके हैं और समस्त सेनापतियों को विजय का विश्वास हो गया है। कवि निराला बताते हैं कि रात्रिकालीन अवसाद समाप्त हो रहा है तथा प्रभातकालीन विश्वास का आगमन हो रहा है।

भावार्थ—रात्रि समाप्त हुई और आकाश के ललाट पर सूर्य की प्रथम किरण चमकने लगी, अर्थात् उषा काल हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो राम के नेत्रों में से उनकी महिमा रूपी सुनहरी किरण निकल कर चारों ओर विकीर्ण हो रही थी। आज राम के हाथ में धनुष और कन्धे पर तरकश नहीं है और न आज उनके सिर पर जटाओं का कसकर बाँधा हुआ मुकुट ही शोभा दे रहा है। अपने चारों ओर युद्ध के सिंह गर्जन सदृश कोलाहल को सुन कर उनका मन उत्साहित नहीं होता है। ज्ञानी राम महाशक्ति के ध्यान में निश्चल होकर पूर्णतः निमग्न हैं। वे पूजा के बाद दस भुजाओं वाली दुर्गा के नाम का जाप कर रहे हैं और मन-ही-मन उसके असंख्य गुणों का मनन कर रहे हैं। इस प्रकार वह दिन व्यतीत हो गया। राम का मन अपनी इष्ट देवी के चरणों में एकाग्र हो गया था। उनकी आराधना क्रमशः अधिकाधिक गम्भीर होती जा रही थी।

अलंकार—(१) मानवीकरण—नाद का ललाट। (२) रूपक—महिमा ज्योति किरण। (३) स्वभावोक्ति—है नहीं........समाराधन। (४) यमक—मन मन। (५) सार—गहन से गहनतर। (६) उल्लेख—राम का वर्णन अनेक रूपों में होने से।

विशेष—१. निशि हुई विगत—प्रतीकात्मक शैली के द्वारा मानव-भावना सापेक्ष प्रकृति का वर्णन है।

२. छायावादी प्रतीकात्मक शैली है। उषा काल आशा का प्रतीक है। नभ ललाट पर किरण का चमकना नवआशा का संकेत करता है। तुलना कीजिए—

> उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी सी उदित हुई।
> उधर पराजित काल रात्रि भी नभ में अन्तर्निहित हुई।
>
> —**प्रसाद : कामायनी**

३. बिम्ब तथा चित्रमयी शैली का प्रयोग।

४. इन पंक्तियों में चिन्तन, मनन, नाम-स्मरण, नाम-संकीर्तन आदि नवधा भक्ति की कोटियों की ओर अच्छा संकेत है।

(ब) क्रम क्रम से .... प्रिय इन्दीवर।

शब्दार्थ—क्रम क्रम=उत्तरोत्तर रूप में। चक्र से चक्र=एक चक्र से दूसरा चक्र। हठयोग की साधना के अनुसार शरीर में सात चेतना-केन्द्रों की कल्पना की गई है। सबसे नीचे है मूलाधार चक्र और सबसे ऊपर है सहस्रार चक्र। साधना की सिद्धि के साथ-साथ चेतना ऊपर की ओर स्थित चक्रों में सक्रिय होती जाती है। निरलस=आलस्यहीन। पुरश्चरण=मन्त्र का जाप या स्तोत्रपाठ, किसी अभीष्ट की सिद्धि के लिए किया जाने वाला मन्त्र जाप। आज्ञा=आज्ञा चक्र, भृकुटियों के मध्य में स्थित कल्पित चेतना केन्द्र—योग साधना का एक सोपान। महाकर्षण=महान आकर्षण। त्रिकुटी=दोनों भौंहों के बीच का स्थान। विद्वल=दो दल। निःस्पन्द=निश्चल। अतिक्रम=पार। समारब्ध=संस्कार। सहस्रार=सहस्रदल कमल, सबसे ऊपर स्थित चक्र। द्विपहर=दो पहर। कर-जप=हाथ का जप अर्थात् माला फेरना।

संदर्भ—राम दुर्गा की आराधना में लीन हैं। कवि निराला योग-साधना की भाषा में राम की साधना का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—इस प्रकार दुर्गा की आराधना करते हुए एक-एक करके पाँच दिन हो गए। उनका मन पूरी तत्परता के साथ एक के बाद दूसरे चक्र रूपी सोपान पर चढ़ते हुए ऊपर की ओर बढ़ता गया, अर्थात् उनका मन क्रमशः अधिकाधिक उदात्त होता गया। वह एक माला पूरी करके कमल का एक फूल चढ़ाते थे। इस प्रकार वह अपना स्तोत्र पाठ पूरा करते जाते थे। छठे दिन उनका मन आज्ञा चक्र पर जाकर स्थिर हो गया। जैसे-जैसे जप चल रहा था, वैसे-वैसे उनके भीतर एक प्रकार की आकर्षण शक्ति विकसित होती जा रही थी। उनका ध्यान भौंहों के बीच में त्रिकुटी नामक स्थान पर आकर केन्द्रित हो गया था। दो पंखुरियों के सदृश उनके सुन्दर नेत्र देवी के चरण युगल पर लगे हुए थे। राम के मुख से निकलने वाले जप के स्वर के साथ आकाश थर-थर काँपने लगा था। राम बिना हिले-डुले दो दिन तक एक ही आसन से बैठे रहे और दुर्गा के नाम का जप करते हुए, कमल-पुष्प चढ़ाते रहे। आठवें दिन उनका ध्यान ऊपर की ओर बढ़ कर ब्रह्मा-विष्णु और महेश के चेतना-स्तरों

को भी पार कर गया। इस प्रकार राम के मन ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर विजय प्राप्त कर ली थी। राम की कठोर तपस्या को देखकर समस्त देवता आश्चर्य-चकित हो गए। इस तपस्या के द्वारा राम ने जो तप किया था, उससे उनके समस्त संस्कार—कर्म के बंधन—जल कर नष्ट हो गए, अर्थात् राम पूर्णतः जीवन-मुक्त हो गए।

अन्त में चढ़ाने के लिए केवल एक कमल-पुष्प शेष रह गया। राम का मन साधना के अन्तिम सोपान सहस्रार चक्र रूपी अवरोध को पार करने के लिए प्रस्तुत होकर आगे बढ़ने के लिए उत्सुक था। रात्रि का दूसरा पहर था। रात्रि के इस अन्धकार में दुर्गा छिप कर वहाँ साक्षात रूप में प्रकट हुई और हँस कर पूजा के लिए रखा हुआ अन्तिम कमल-पुष्प उठा कर ले गई।

अलंकार—(१) यमक—कर-कर। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—खिच-खिच थर-थर-थर। (३) सार—प्रति जप महाकर्षण। (४) मानवीकरण—अम्बर का भय में काँपना। (५) व्यतिरेक—अतिक्रम ब्रह्मा-हरि-शंकर का स्तर। (६) पदमैत्री—थर-थर····अम्बर।

विशेष—१. ध्वन्यात्मकता—थर-थर-थर।

२. बंगाल में प्रचलित दुर्गा-पूजा की आनुष्ठानिक विधि का निरूपण द्रष्टव्य है। यह तान्त्रिक अनुष्ठान है। "रस ब्रह्मरंध्र से अझर झरै" अथवा "आकासे मुख औंधा कूआ पाताले पनिहारि" आदि पंक्तियों में कबीर ने हठ-योग की इसी साधना का वर्णन किया है।

३. पुरश्चरण, त्रिकुटी, ब्रह्माण्ड, चक्र, सहस्रार आदि योगपरक पारि-भाषिक शब्दों के प्रयोग के कारण 'अप्रतीत्व' दोष आ गया है।

४. हठयोग, तान्त्रिक साधना तथा वैष्णव भक्ति का समन्वित रूप द्रष्टव्य है।

५. दुर्गा द्वारा कमल का चुरा ले जाना बड़ा नाटकीय है। वास्तव में फूल को चुराने में राम की निष्ठा की परीक्षा का भाव निहित है।

(भ) यह अन्तिम जप ···· ···· एक नयन।

शब्दार्थ—चरण युगल=दोनों चरण। असिद्धि=असफलता, साधना भंग। लगा न हाथ=पा न सकें। विमल=निष्पाप। द्वय=दोनों। भर गए=आँसुओं से आप्लावित हो गये। मन्द्रित=मंद स्वर से गरजते हुए। प्रमन=प्रसन्नता। हत चेतन=चेतना रहित। शोधन=खोज।

संदर्भ—साधना की समाप्ति के समय दुर्गा राम की पूजा का कमल चुरा कर ले जाती है। राम अपनी आँख चढ़ाकर अनुष्ठान पूरा करना चाहते हैं।

भावार्थ—यह जाप का अन्तिम भाग है—यह सोचकर राम ने दुर्गा के दोनों चरणों में ध्यान लगाया और नीला कमल लेने के लिए हाथ बढ़ाया। लेकिन उनके हाथ कुछ न लगा। राम का स्थिर मन यकायक चलायमान हो गया। उनका ध्यान भंग हो गया उन्होंने अपनी निर्मल पलकें खोलीं और देखा कि कमल वाला स्थान खाली पड़ा था। सोच कर कि यह जप के पूर्ण होने का समय है और आसन छोड़ने से साधना भंग हो जायगी, राम के दोनों नेत्रों में आँसू भर आए। वे अपने आप कहने लगे, मेरे जीवन को धिक्कार है जिसे सदैव विरोधों का सामना करते रहना पड़ा है और उन सिद्धि के साधनों को धिक्कार है जिनकी खोज में मैं सदैव प्रयत्नशील रहा हूँ। हे जानकी ! मुझे धिक्कार है कि मैं तुझ जैसी अपनी प्रिया को रावण के बन्धन से मुक्त नहीं कर सका।

कवि कहता है कि निराश होने वाला मन ऊपरी मन (Inteligent mind) काम मनस था। उनका एक अन्य मन (Intiuitive mind) बुद्धि मनस भी था, जो हतोत्साहित नहीं हुआ था। संश्लेषात्मक मन न तो पुरुषार्थहीनता जानता था और न पराजय को स्वीकार करना जानता था। वह मन माया (अज्ञान) के समस्त आवरणों को पार करके जय-पराजय, सुख-दुख आदि के विभेदों को विजय प्राप्त कर चुका था। वह शुद्ध बुद्धि के स्तर को प्राप्त हो चुका था। उनकी निष्क्रिय चेतना को बुद्धि ने झकझोर कर जगा दिया। मेघों में यकायक कौंध जाने वाली बिजली की तरह उन्हे एक दम एक उपाय सूझ गया। उस विवेक बुद्धि के जाग्रत होते ही उनका मन स्वस्थ और प्रसन्न हो गया। राम धीमे गम्भीर स्वर से कह उठे, आ गई समझ में तरकीब। संकट से उद्धार का उपाय यह है। मेरी माता मुझे सदैव कमल जैसी आँखों वाला कहा करती थीं। मेरे पास अभी तो ये दो नील कमल पुष्प शेष हैं। हे माता ! अपना एक नेत्र अर्पित करके मैं अभी इस स्तोत्र के अधिष्ठान को पूरा करता हूँ।

अलंकार—(१) भेदकातिशयोक्ति—एक और मन। (२) व्यतिरेक—जो·······जय। (३) रूपक—बुद्धि के दुर्ग, राजीवनयन। (४) उपमा—ज्यों मंद्रित घन। (५) स्मरण—कहती थीं माता।

विशेष—१. जो नहीं जानता दैन्य—विनय—अर्जुन विश्वचेतना स्वरूप

कृष्ण के अनुगामी थे। उनका भी बुद्धि मनस जागरूक रहता था, अर्थात् उनकी चेतना विज्ञानमय कोश में अवस्थित रहती थी। उनका भी यही प्रण था—

आयुर्रक्षति मर्माणि आर्युअन्नम् प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।

२. वेदान्त दर्शन तथा राजयोग साधना का सुन्दर समन्वय है।

काम मनस का स्वभाव चंचलता है, क्योंकि वह विश्लेषणात्मक है। बुद्धि मनस संश्लेषणात्मक होने के कारण स्थिर स्वभाव वाला है। प्रायः प्रथम ही क्रियाशील रहता है द्वितीय के क्रियाशील हो जाने पर जीवन की ऋतु ही बदल जाती है। नयी आँखें मिलती हैं। एक नया संसार दिखाई देने लगता है। सब आत्मीय ही प्रतीत होने लगते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने हृदय-रूपी सिन्धु में उत्पन्न होने वाली मुक्ति-रूपी मुक्ता प्रदान करने वाली सीप कहा है—

हृदय सिंधु मति सीप समान।
स्वाति सारदा कहहिं सुजान ॥

यह 'स्वाति' ही यहाँ निराला की 'स्मृति' है।

(म) कह कर देखा .... हस्त थाम।

शब्दार्थ—तूणीर = तरकश। महाफलक = बड़े फल वाला। त्वरित = शीघ्र। भगवती = दुर्गा। ब्रह्मशर = ब्रह्मबाण, ब्रह्ममंत्रों से अभिषिक्त वाण। लकलक = जगमगाता हुआ। उद्यत = तत्पर। सुमन = प्रसन्न मन। उदय = प्रकट।

सन्दर्भ—राम दुर्गा पर अपना नेत्र चढ़ाने को उद्यत होते हैं। दुर्गा प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लेती हैं। कवि निराला ने इन पंक्तियों में इसी भावपूर्ण दृश्य का मार्मिक वर्णन किया है।

भावार्थ—[मैं अपनी आँख चढ़ाकर मन्त्र का जाप पूरा करता हूँ] यह कह कर राम ने अपने तरकश की ओर देखा। उसमें ब्रह्म मन्त्रों से अभिषिक्त वाण झलक रहा था! राम ने लकलकाता हुआ वह बड़े और तेज फल वाला वाण अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने बाएँ हाथ में वह अस्त्र (वाण) पकड़ा और दाएँ हाथ में दायीं आँख ली और अपनी आँख को उस पुष्प के स्थान पर अर्पित करने के लिए प्रसन्नतापूर्वक तैय्यार हो गए। जिस क्षण वाण के द्वारा आँख को बेधने का पक्का इरादा राम ने किया, उसी समय समस्त

ब्रह्माण्ड काँप उठा और देवी दुर्गा अविलम्ब प्रकट हो गईं। देवी दुर्गा ने यह कहते हुए राम का हाथ पकड़ लिया कि—हे साधक-वीर और धर्म को सर्वस्व मानने वाले राम! तुम धन्य हो। तुम पवित्र हो। तुम्हारा कल्याण हो।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—लक-लक। (२) सभंग पद यमक—लक फलक। (३) श्लेष—सुमन, महाफलक (विशाल, धार वाला)। (४) अनुप्रास—साधु-साधु साधक, धर्म धन-धन्य। (५) वीप्सा—साधु-साधु। (६) स्वभावोक्ति—पूरा छन्द। (७) उदात्त—दक्षिणकर दक्षिणलोचन।

विशेष—१. नाटकीय कौतूहल है तथा कथानक की चरमसीमा के दर्शन होते हैं। अनेक क्रियाएँ एक साथ जल्दी-जल्दी घटित होती हैं। इससे वर्णन में गत्यात्मकता आ गई है।

२. अन्तर्बाह्य घटनाओं का समन्वय द्रष्टव्य है।

३. प्रतिक्रियाओं का रूपायन अत्यन्त स्वाभाविक है।

४. ब्रह्मशर के प्रसादन के लिए राम के दक्षिण नेत्र से अधिक सुन्दर उपयुक्त और महान् नैवेद्य और क्या हो सकता है।

(य) देखा राम .... हुई लीन।

शब्दार्थ—भास्वर=तेजस्वी, जगमगाती हुई। बाम पद=बायाँ पैर। असुर=राक्षस। स्कन्ध=कन्धा। हरि=शेर। सज्जित=सजे हुए। श्री=शोभा। रण-रंग-राग=युद्ध के राग से रंजित। पद्म=कमल। प्रणत=झुका हुआ। मन्द स्मित=थोड़ा-थोड़ा मुसकराता हुआ। कार्तिक=स्वामी कार्त्तिकेय, देवताओं के सेनापति तथा शिव-पार्वती के पुत्र।

सन्दर्भ—देवी दुर्गा राम को विजयी होने का आशीर्वाद देती हैं।

भावार्थ—राम ने देखा कि सामने परम तेजस्विनी श्री दुर्गा उपस्थित थीं। उनका बायाँ पैर महिषासुर के कन्धे पर था और दायाँ पैर सिंह के ऊपर टिका हुआ था। देवी का यह रूप अत्यन्त प्रकाशवान् था। उनके दशों हाथ विविध प्रकार के आयुधों से सुसज्जित थे। उनके मुख पर मन्द मुसकान थी। उनको देखकर समस्त विश्व की रूप लक्ष्मी लज्जित होती थी। उनकी सीधी ओर लक्ष्मी थीं और बायीं ओर सरस्वती विराजमान थीं। उनकी सीधी गोदी में गणेश थे और बाईं ओर गोदी में उनके दूसरे पुत्र कार्तिकेय थे, जिनका व्यक्तित्व रण-कौशल से युक्त था। उनके मस्तक पर शंकर विराजमान थे। श्री राघव मन्द स्वर से वन्दना करते हुए देवी दुर्गा के चरणों में श्रद्धापूर्वक झुक गये। हे

नवीन पुरुषोत्तम श्री राम ! तुम्हारी विजय होगी। तुम्हारी विजय होगी, यह कह कर वह महाशक्ति राम के मुख-मण्डल में समा गई।

अलंकार—(१) स्वभावोक्ति—पूरा छन्द। (२) रूपक—पद-पद्म। (३) मीलित—महाशक्ति वदन में हुई लीन! (४) प्रतीप—विश्व की श्री लज्जित।

विशेष—(१) महाशक्ति के मातृ पक्ष का सटीक चित्रण है। (२) कथानक को सुखांत रूप में परिघटित किया है।

द्रष्टव्य—इसका रचना-काल सन् १९३६।

(४३) मैं अकेला

मैं अकेला .... **भेला।**

शब्दार्थ—भेला=नाव। सान्ध्यबेला=अस्त होने का समय।

सन्दर्भ—कवि निराला जीवन के अवसान में अकेलेपन का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—मैं अकेला हूँ। मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि मेरे जीवन का अन्तिम समय निकट आता जा रहा है। मेरे सिर के आधे बाल सफेद हो गए हैं और मेरे कपोलों की चमक समाप्त हो गई है, अर्थात् गालों पर झुरियाँ पड़ गई हैं। मेरी टाँगें भी अब जबाव देती जा रही हैं। और मेरे पास आने वालों की भीड़ भी छँटने लगी है।

मैं जानता हूँ कि मुझे जीवन में जो कुछ कृत्कर्म करने थे, वह मैं कर चुका हूँ—मुझे जो कुछ करना था, मैं कर चुका हूँ। देखो ! यह काल मेरे ऊपर हंस रहा है, अर्थात् मुझे ले जाने को उत्सुक है। मेरे पास इस समय इससे बचने का कोई सहारा (नाव) नहीं है।

विशेष—१. निराशा जीवन का अवसाद व्यक्त है।

२. शैली प्रतीकात्मक है।

द्वितीय चरण (१९३९—४६)

(४४) नर्गिस

(क) **बीत चुका ···· ···· तरल-ताल ।**

शब्दार्थ—तारक-प्रदीप-कर=तारा रूपी दीपक धारण करने वाला हाथ । स्निग्ध=चिकनी, स्नेहमयी । शाश्वत=हमेशा रहने वाली । गत-गौरव= बीता हुआ वभव, बीते दिनों का वैभव । ललित=सुन्दर । तरल=चंचल ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कविवर निराला की द्वितीय चरण की रचना **नर्गिस** से उद्धृत हैं । यह कविता उनकी **अनामिका** नामक कृति से 'राग-विराग' में संकलित की गई है । इस कविता में कवि ने वासन्ती-सुषमा के वैभव का वर्णन किया है, जो शीतऋतु के बाद चारों ओर व्याप्त है ।

भावार्थ—शीतकाल समाप्त हो गया है । बढ़ते हुए दिनों वाले दिन का शीतकालीन वैभव अब पश्चिम में डूब गया है अर्थात् अब संध्या हो गई है । हाथों में तारे रूपी दीपक लेकर शांत एवं प्रेममयी दृष्टि वाली सन्ध्या धीरे-धीरे चलती हुई अपने प्रियतम दिन की समाधि की ओर चली गई है । घोंसला पर पक्षियों की बोली बन्द हो गई है । अब इस शांत वातावरण में शाश्वत सत्य के समान केवल बहती हुई गंगा का स्वर ही स्पष्टतः सुनाई पड़ रहा है । सुन्दर चंचल तरंगों रूपी हाथों से ताल देती हुई गंगा के साथ शीत ऋतु का विगत-वैभव रूपी दिन प्रहर-प्रहर करके (खण्ड-खण्ड होकर) बह रहा है ।

अलंकार—(१) रूपक—तारक प्रदीप, प्रहर-तरंग । (२) छेकानुप्रास—पश्चिम, प्रदीप, गतगौरव । (३) मानवीकरण—सन्ध्या । दीर्घकाल (४) पुनरुक्तिप्रकाश—मन्द मन्द; (५) उपमा—सत्य ज्यों । (६) वृत्यानुप्रास—तरंग तरल ताल ।

विशेष—१. वर्ण-मैत्री दृष्टव्य है । स्वर-वर्ण-शब्द और वाक्य-योजना में गंगा की धारा जैसा प्रवाह है । ध्वन्यात्मकता ध्वनित है ।

२. चारों ओर स्निग्ध, शांत एवं शीतल वातावरण है । इसमें बहती हुई गंगा की धार मानों शीत के विगत वैभव का गान कर रही है ।

३. गंगा के स्वर की शाश्वत सत्य के साथ तुलना कवि के विराट दृष्टिकोण एवं उसकी उदात्त परिकल्पना का परिचायक है।

४. दीर्घतर दिन—मकर संक्रांति के बाद दिन क्रमशः बड़ा होने लगता है। इसी से **दीर्घतर दिन** लिखा है—दिन जो वृद्धिगत है—क्रमशः अधिकाधिक बड़ा होने लगा है।

५. प्रिय की समाधि ओर—पश्चिम में दिन (सूर्य डूबा)। उसके उपरान्त क्रमशः सन्ध्या समाप्त हुई और रात्रि का अंधकार छाया। अंधकार पश्चिम दिशा से ही बढ़ता है। इसी कारण सन्ध्या के पश्चिम ओर जाने की परिकल्पना सर्वथा सार्थक है।

६. प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टव्य है।

(ख) **चैत्र का है .... सशरीर ज्योत्स्ना।**

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना=चाँदनी। तनु=शरीर। शुभ्र=उज्ज्वल, सुन्दर। नन्दन=स्वर्ग। धरा=पृथ्वी। विनिर्जन=एकदम जन शून्य। नैश=रात्रि। सभय=डरती हुई। सुरम्य=बहुत सुन्दर। तारतम्य=निरन्तरता। जाह्नवी गंगा। कशय=किनारे। महाम्बर=उच्च आकाश।

संदर्भ—पूर्व छंद के समान।

भावार्थ—चैत्र मास का कृष्ण पक्ष है। आज आकाश में तृतीया का चन्द्रमा उदित हुआ है। चाँदनी रूपी शरीर उज्जवल श्रृंगार से सज गया है। ऐसा लगता है कि स्वर्ग की अप्सरा पृथ्वी को एकदम जन-शून्य समझ कर रात्रि के समय गंगा-स्नान के लिए डरती हुई उतर कर आगई है। गंगा के किनारों पर अत्यन्त सुन्दर बाग-बगीचे हैं। मैं इस संसार की सघनता की निरन्तरता को चुपचाप बैठा हुआ देखता हूँ। जिस प्रकार गंगा की धारा को घेरने वाले किनारे अपने-आप ही ऊपर को उठ गए हैं, उसी प्रकार चाँदनी की प्रकाशवान धारा के माध्यम से पृथ्वी भी बहुत ऊपर को उठी हुई दिखाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी तत्व ही क्रमशः अधिकाधिक सूक्ष्म होता हुआ ऊपर को उठ गया है, और इस सूक्ष्मता तत्त्व को ही लोग आकाश के नाम से जानते हैं और अभिहित करते हैं। जिस प्रकार स्थूल अथवा यथार्थ की अपेक्षा कल्पना आदर्श बड़ी मानी जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी की अपेक्षा स्वर्ग को श्रेष्ठ मान लिया गया है। चाँदनी स्वर्ग की सृष्टि का एक स्थूल रूप है।

अलंकार—१. उदाहरण—(i) जाह्नवी.......ज्योतिर्धर।
(ii) स्वर्ग त्यों.......कल्पना।

२. मानवीकरण—ज्योत्स्ना खड़ी सशरीर।

विशेष—१. वसंतकालीन चाँदनी रात का सुन्दर-वर्णन है। चाँद थोड़ी देर के लिए ही निकलता है। चाँदनी शीघ्र ही समाप्त हो गई। मानो वह नीचे गंगा-स्नान के लिए उतर आई। हल्की एवं मंद पड़ती हुई चाँदनी में एक ऐसी स्वर्गीय अप्सरा की कल्पना दृष्टव्य है जो निर्जन भूतल पर पाँव धरते हुए डर रही हो। मैथिलीशरण गुप्त ने इसी प्रकार की बात उदयकालीन सूर्य की किरणों को लक्ष्य करके कही—

सखि नील नभस्सर में उतरा यह हंस अहा ! तिरता-तिरता।
गड़ जाएँ न कण्टक भूतल के कर डाल रहा डरता-डरता।

—**साकेत**

२. सूक्ष्मतम.......महाम्बर को—समस्त ब्रह्माण्ड एक ही तत्त्व के विभिन्न स्तरों के द्वारा निर्मित है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश आदि के नामकरण में एक ही परम तत्व का स्वर भेद मात्र है। कवि ने इसी वैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन किया है।

३. देह, कल्पना स्वर्ग और धरा में लक्षणा का प्रयोग दृष्टव्य है। इनका लक्ष्यार्थ क्रमशः यथार्थ एवं आदर्श है। जो सम्भव या प्राप्त है वह यथार्थ अथवा धरती है, जो सम्भाव्य प्राप्तव्य है, वह स्वर्ग, आकाश एवं धरती है।

४. कवि का अभिप्रेत यह है कि यह पृथ्वी ही स्वर्ग है। वासन्ती चाँदनी की शोभा ने इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग अवतरित कर दिया है।

(ग) युवती .... कढ़।

शब्दार्थ—वसन्त काल=वसन्त ऋतु के रूप में विकास का समय। दिक्कुमारियाँ=दिशारूपी कुमारियों (युवतियाँ)। अभिराम=सुन्दर। प्रणय=प्रेम। निगड़=गहरे। कढ़=निकल कर।

संदर्भ—पृथ्वी रूपी युवती का यह वसंत रूपी विकास-काल था अर्थात् पृथ्वी चारों ओर पल्लवित एवं पुष्पित हो रही थी। हरियाली उसके उन्नत स्तनों के समान थी। खिली हुई कलियों के गुच्छे स्तनों पर पड़ी हुई मालाओं के समान सुशोभित हो रहे थे। हवा चारों ओर सुगंध को फैला

रहा था। इस प्रकार वह दिशा रूपी युवतियों के मन को सुगंध का पान करा के अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो यह पृथ्वी अपने वासंती सौंदर्य से युक्त होकर स्वर्ग से होड़ कर रही हो। यह सब देखकर मैंने निरपेक्ष भाव से अपना मुख एक ओर फेर लिया। देखता क्या हूँ कि उधर नर्गिस अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य को लेकर खिल रही थी। नर्गिस का फूल ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह प्रेमभाव से उसके नेत्र एकटक देखते हुए थक गए हों। परन्तु उसके मुख से प्रकट होने वाले अविश्वास के भावों को देखकर ऐसा लगा कि उसके मनोभाव गहरे स्नेह में बँधे होने पर भी बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहे हों अर्थात् नर्गिस का फूल उन्मुक्त भावी प्रेमी की भाँति समस्त बन्धन तोड़ने को उत्सुक था।

अलंकार—(१) रूपक—युवती-धरा, हरे-भरे स्तनों, कलियों की माला, दिक्कुमारियों। (२) मानवीकरण—धरा, दिक्कुमारियाँ, पवन। (३) उत्प्रेक्षा—ज्यों कर रही हो होड़। (४) उपमा—प्रणय के ज्यों। (४) विरोधाभास—ज्यों बँधे—कढ़।

विशेष—१. वासंती शोभा का सजीव वर्णन है। ऐसा लगता है कि पृथ्वी के कण-कण में वसंत की खुमारी भर गई हो।

२. नर्गिस·······थक—नर्गिस के फूल उस वासंती शोभा को देखते हुए थक गये हों।

३. प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन है। इस वर्णन के पीछे कवि की काव्य कुंठा झाँकती हुई दिखाई देती है। पृथ्वी के स्तनों तथा दिशाओं एवं पवन के मध्य प्रेमालाप की चर्चा प्राय: अप्रासंगिक है। सम्भवत: कवि इस प्रकार के वर्णनों के लिए बहाना ढूँढता रहता है।

४. रहे हैं कढ़—छायावाद की स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति की छाप है।

(घ) कहती ज्यों नर्गिस ···· ···· मैंने दृग बंद।

शब्दार्थ—सुघर—सुन्दर, सुघड़।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—कवि कहता है कि मुझे ऐसा लग रहा था कि नर्गिस इस प्रकार कह रही थी कि इस चाँदनी के रूप में यह जो स्वर्ग की परी इस पृथ्वी पर आगई है, उसी के कारण क्या पृथ्वी का सौन्दर्य बढ़ गया है। धरती के सौन्दर्य

की जो किरण अंधकार को पार करके आकाश पर आगई है, सच-सच कहो मित्र क्या वह स्वर्ग को प्राप्त कर सकी है ? बताओ, इन दोनों में कौन अधिक सुन्दर है—पृथ्वी रूपी शरीर अथवा उस सौन्दर्य को देखने वाली नर्गिस के फूल रूपी आँखें ? इसी प्रकार यह भी बताओ कि पक्षी अधिक सुन्दर है अथवा उसको उड़ने में समर्थ बनाने वाले उसके पंख ? तब यह भी बताओ कि स्वर्ग का पृथ्वी पर अवतरित होना, अधिक सुन्दर है अथवा पृथ्वी का उठकर स्वर्ग तक पहुँच जाना अधिक सुन्दर है।

इसी समय हवा का एक झोंका आया और उसके साथ नर्गिस की सुगंध चारों ओर फैल गई। मैंने मन में अनुभव किया कि सचमुच यह पृथ्वी ही स्वर्ग है अथवा पृथ्वी का स्वर्ग का बन जाना ही श्रेष्ठ है। यह कह कर मैंने भावानुभूति में अपनी आँखें बन्द कर लीं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—नर्गिस। (२) गूढोत्तर—आयी जो········सुघर।

विशेष—१. प्रकृति का भावपूर्ण वर्णन है।

२. कवि का यथार्थवादी एवं लोकरंजनकारी दृष्टिकोण मुखर है। कवि कल्पना-लोक की बात छोड़कर पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाना चाहता है।

३. कौन अधिक सुन्दर—देह—पाँखें। इसमें कवि का उपयोगितावादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। सौन्दर्य की सार्थकता है दृष्टि का अनुरंजन तथा वन्दनीय वह है जो गति प्रदान करे। पक्षी का सौन्दर्य उसके पंख हैं जो उसके पक्षी नाम को सार्थक करते हैं, अन्यथा पक्षी आकाश में क्यों कर विचरण कर सके ?

४. स्वर्ग झुक आए········सुघर ? इस पंक्ति पर कवि के विकासवादी दृष्टिकोण की छाप है। ऊपर की चीज़ नीचे आए, प्रगति का लक्षण यह नहीं है, नीचे की चीज़ ऊपर जाए—यह प्रगति है।

(४५) वसन्त की परी के प्रति

(क) आओ, आओ फिर ···· ···· छवि-विभावरी।

शब्दार्थ—छवि=शोभा, सुन्दरता। विभावरी=तारों वाली रात। सिहारो=काँपो, नाचो। अम्बर=आकाश।

संदर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि निराला के दूसरे चरण की कविता **वसन्त की परी के प्रति** से उद्धृत हैं। इसमें वासंती रात्रि के मादक प्रभाव का वर्णन है।

भावार्थ—वासन्ती रात्रि का आह्वान करते हुए कवि निराला कहते हैं कि—सौन्दर्यपूर्ण तारों वाली वासन्ती रात रूपी अप्सरा ! तुम फिर आओ, यहाँ मेरे पास आओ। हे स्वर्ग की सुन्दरी ! तुम मुक्त-मधुर स्वरों से भरकर रोमांचित होओ तथा नाचो-गाओ।

अलंकार—(१) मानवीकरण—वसंत विभावरी। (२) वीप्सा—आओ-आओ। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—भर भर।

विशेष—(१) इस कविता में प्रकृति के प्रति कवि का प्रेम द्दष्टव्य है। (२) वासन्ती रात का मानवीकृत रूप मुखर है। (३) कवि का लक्ष्यार्थ यह है कि वासन्ती रात मन में अनेक मादक भावों एवं स्मृतियों को जगा देती है। (४) लक्षणा—सिहरो, छवि विभावरी।

(ख) **बहे फिर** .... **छवि-विभावरी**।

शब्दार्थ—चपल=चंचल। मुक्त=स्वच्छन्द। परिमल=सुगंध, पुष्प रस सजल=ओस पूरित। निस्तल=अगाध।

संदर्भ—पूर्व छंद के समान।

भावार्थ—स्वच्छन्द निर्झरी के रूप में वासंती रात रूपी परी का आह्वान करते हुए कवि कहता है कि तुम धरती पर मेरे पास आओ जिससे कल-कल ध्वनि वाली चंचल लहरें मचल कर बह उठें, चंचलता और स्वच्छन्दता से भरे नये-नये सौन्दर्य-प्रसंग निखर उठें अर्थात् पृथ्वी पर सौन्दर्य के नवीन परिवेशों का उद्‌घाटन हो। अपनी सुगंध से पूरित, स्वच्छ एवं ओस कणों से सिक्त अपने अंगों से धरती को भी स्वच्छ और स्नेह एवं सुगंध से पूरित कर दो। तू मेरे जीवन रूपी किनारों पर शीतलता प्रदान करने वाले सुखों का संचार करने वाली अथाह (गहरी) निर्झरी बन कर उतर आ।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—कल कल। नव-नव। (२) अनुप्रास—पूरित परिमल। निर्झर निर्झरी। (३) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—तट (४) स्वभावोक्ति—सम्पूर्ण छंद।

विशेष—१. लक्षणा—सजल।

२. कवि ने मानवीकृत एवं अनुप्रास युक्त स्वर-लय में प्रकृति का बड़ा ही स्वाभाविक एवं भावपूर्ण वर्णन किया है।

३. कवि को सम्पूर्ण प्रकृति में अपनी प्रेयसी व्याप्त दिखाई देती है। उसे हम कवि की काम-कुण्ठा की अपरोक्ष अभिव्यक्ति मानते हैं।

(ग) निर्जन ज्योत्स्ना .... छवि-विभावरी ।

शब्दार्थ—निर्जन=सूना । ज्योत्स्ना चुम्बित=जिस पर चाँदनी फैली हुई है। समीरण=सुगंधित वायु । निरावरन=खुली हुई, वस्त्र रहित । तटी=नाव ।

सन्दर्भ—उपर्युक्त छंद के समान ।

भावार्थ—सूने घने वनों में चाँदनी फैली हुई है और उन्हें उज्ज्वल बना रही है । सुगंधित हवा बड़े ही स्वाभाविक ढंग से वह रही है। खिली हुई कलियों को पवन अपने आलिंगन के द्वारा उभार या विकास प्रदान कर रहा है । शोभा भरी वसंत रजनी, तू मेरे मन को भी नवीन चेतना प्रदान कर दे, जिससे मेरे जीवन रूपी छोटी सी नाव भी उमंगों की लहरों पर नाच उठे ।

अलंकार—(१) पदमैत्री—वन-सघन । समीरण निरावरण (२) छेकानुप्रास—सहज समीरण । (३) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—तटी ।

विशेष—१. चाँदनी का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है ।

२. प्रकृति का वर्णन आलम्बनगत है ।

३. कवि अपने जीवन के लिए सौन्दर्य की अनवरत चेतना बनकर आने के लिए वसंत-परी का आह्वान करता है ।

४. चुम्बित, निरावरण, आलिंगन, उभार—ये शब्द कवि की काम-कुण्ठा के द्योतक हैं ।

(घ) आयी है फिर मेरी .... छवि विभावरी ।

शब्दार्थ—बेला=समय । परिणयहेला=प्रेम के खेल ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

भावार्थ—ओ छवि भरी वासन्ती रात रूपी परी, तुझे देखकर ऐसा लगता कि मेरे मानस की **बेला** के भी खिलने का समय आ गया है । 'जुही की कली' के अन्तर्गत वर्णित कोमलांगी के समान युवतियों को अपने प्रियतमों के साथ खेल खेलने का समय मानों साकार हो उठा है । एकांत में तुमसे मेरी ये बातें प्रियतमा के साथ एकांत में प्रगाढ़ मिलन-बेला की याद दिला रही हैं। इस प्रकार न जाने कितने प्रकार के भावों को मेरे मन में जगाकर तुम मेरे मन में विहार कर रही हो ।

अलंकार—(१) श्लेष—बेला । (२) वक्रोक्ति—कितने भावों । (३) छेकानुप्रास—प्रियतम से परिणय ।

विशेष—१. विशेषण विपर्यय—निर्जन बातें।

२. कवि को अपनी प्राचीन कविताओं का **स्मरण** हो आता है। उनके आधार पर वासंती चाँदनी का रूपायन नवीन पद्धति पर कवि ने किया है।

३. भाव-प्रेम-सौन्दर्य का भव्य चित्रण है।

४. इन पंक्तियों में कवि की दमित वासना उभर आई है—प्रियतम से परिणय, निर्जन बातें, सुमिलन मेला आदि शब्दों का प्रयोग इसका प्रमाण है।

(४६) अपराजिता

हारी नहीं ···· ···· देख आँखें।

शब्दार्थ—परी-नागरी=अप्सरा रूपी नगर निवासिनी चतुर नारी। नभ=आकाश। तिल नीलिमा=आँखों की काली पुतली। तरुण=युवा, नवीन एवं पुष्ट।

संदर्भ—यह छोटी सी कविता कवि निराला के द्वितीय चरण की कविता है। इसमें कवि वासंती सुषमा को एक अप्सरा के रूप में चित्रित करता है। इस वासंती शोभा रूपी नागरी अप्सरा की शोभा को बार-बार देखकर भी मेरी आँखें नहीं थकी हैं। इसके रूप-सौन्दर्य को देखकर मेरी कल्पना आकाश को भी पार कर जाती है अर्थात् मेरे मन में सौन्दर्य विषयक अनेक कल्पनाएँ जाग्रत होने लगती हैं।

भावार्थ—इसका सौन्दर्य मेरी आँखों में स्नेह भर रहा है और मेरे अन्धकार पूर्ण हृदय में एक नवीन ज्योति का संचार कर रहा है। इसके रंग (वैभव) से भरकर प्रत्येक वृक्ष की शाखाएँ तरुणाई से भरकर तन गई हैं तथा हरी-भरी हो गई हैं। इस चतुरा अप्सरा रूपी वासंती रात्रि के सौन्दर्य को निहारने वाली आँखें कभी तृप्त ही नहीं होती हैं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—सम्पूर्ण छन्द। (२) छेकानुप्रास—जग ज्योति, हरी हर। (३) वृत्यानुप्रास—तरु तरुण तान। (४) विशेषोक्ति की व्यंजना—हारी नहीं।

विशेष—१. लक्षणा—नभ, पाँखें (कल्पना के पंख) तिल नीलिमा।

२. अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का समन्वय देखते ही बनता है—रंग से भरी—शाखें।

३. प्रकृति में प्रियतमा के दर्शन कवि की काम कुण्ठा का द्योतक है—विशेषकर **तरु की तरुण-तान शाखें**।

४. स्नेह भर—। तुलना करें—

मंगल बिन्दु सुहंग केशर शशिमुख आङ् गुरू।
इक नारी लहि संग रसमय किय लोचन-जगत।

-बिहारी

५. हारी नहीं देख आँखें। तुलना करें—

ज्यों ज्यों निहारिए तेरे ह्वै नैनन त्यों-त्यों खरी।
बिकसै सी निकाई।

तथा— —मतिराम

क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाम्।

—महाकवि माघ

(४७) आये पलक पर प्राण कि—

आये .... हिये के प्यार बने तुम।

शब्दार्थ—पलक=आँख। वन्दनवार=स्वागत के द्वार, स्तुति के योग्य। उदोत=प्रकाश। हिय के=हृदय के। माया=आकर्षण, आसक्ति।

संदर्भ—यह कविता निरालाजी के द्वितीय चरण की कविता है। यह उनके कविता-संग्रह बेला से **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि अपने प्रिय को अपना सर्वस्व बताता है। उसने अपने समस्त भाव एवं अपना समस्त प्यार अपने प्रियतम को समर्पित किया है।

भावार्थ—हे प्रिय! तुम मेरी वन्दना और स्तुति के योग्य स्वागत के द्वार बन गए हो। तुम्हारी राह देखते हुए मेरे प्राण पलकों पर आगए हैं—अर्थात् नेत्रों में तुम्हारा ही रूप घूमता रहता है। मेरे कण्ठ से तुम्हारे ही प्रेम के गीत निकले और उन गीतों को गाकर मैं अपने आपको धन्य समझने लगा। देह के प्रति मेरा जो आकर्षण है, वह तुम्हारी ज्योति के ही कारण है, अर्थात् अपनी देह में मैं तुम्हारी देह का प्रकाश देखता हूँ। तुम मेरी जीभ रूपी सीप के मोती बन गए हो अर्थात् मेरी जीभ पर केवल तुम्हारा श्रेष्ठ नाम रहता है।

तुम्हारी ही चेतना का प्रकाश छन-छन कर मेरे भीतर प्रवेश करके मुझे प्रेरणा प्रदान करता रहता है। तुम वसंत के प्रफुल्लित वातावरण की भाँति मेरे जीवन में आनंदानुभूति का संचार करने वाले बन गए हो।

तुम मेरे कठोर जीवन रूपी दोपहरी में छाया के समान सुखदायक बन

गये हो। मेरा समस्त बाना अपने एकमात्र स्वामी तुम्हारे लिए है। तुमने मुझे सहारा दिया है, तुम मेरे समस्त जीवन-संगीत के स्वरों को मुखरित करने वाले तार बन गए हो—अर्थात् मेरे समस्त जीवन के प्रेरणा-स्रोत तुम्हीं हो। तुम मुझ भिखारी को दिन दूना दान देते हो, कमल रूपी मेरे जीवन के विकास के कारण-रूप जल तुम्हीं हो। हे प्रिय, तुम मेरे हृदय के समस्त अहंकार अर्थात् आकांक्षा और प्यार हो।

अलंकार—छेकानुप्रास—पलक, प्राण। वन्दनवार बने। कुल कान। रूपक—देह की माया, जीभ की सीप। वृत्यानुप्रास—दिन दूने दान।

विशेष—१. शैली प्रतीकात्मक है।

२. लक्षणा—पलक, वन्दनवार, कण्ठ के गान, माया, दुपहर, छाँह।

३. मुहावरा—गले के हार। बाँह पकड़ी।

४. प्रिय के प्रति पूर्ण समर्पण है, जो शुद्ध आराधना अथवा अनन्य भक्ति की संधि का स्पर्श करता हुआ दिखाई देता है, तुलना करें—

रावरो रूप रह्यौ भरि नैननि बैननि के रस सों श्रुति सानों।
गात में देखत गात तिहारिए, बात तुम्हारिए बात बखानौं।
ऊधो ! हहा, कहियो हरि सों तुम हौ न यहाँ, यह हौं नहिं मानों।
या तन तें बिछुरे तो कहा मन तें अनतें जु बसौ तब जानौं।

—**देव**

तथा—

सिय राम सरूप अनूप अगाध बिलोचन मीनन को जल है।
श्रुति राम कथा मुख राम को नाम हिये पुनि रामहि को थल है।
गति रामहि सों मति रामहिं सों रति राम सों रामहिं को बल है।
सब की न कहै तुलसी के मते इतनों जग-जीवन को फल है।

—**गोस्वामी तुलसीदास**

(४८) स्नेह की रागिनी बजी

स्नेह की रागिनी .... तार-तार पर।

शब्दार्थ—सुर-बहार=संगीत-साधना का एक वाद्य-यन्त्र। अयन=घर। शयन=सोना। असि की धार=तलवार की धार। मूर्छना=सातों स्वरों का क्रमशः आरोहण-अवरोहण।

संदर्भ—कवि निराला प्रणीत यह गीत **बेला** से संग्रहीत है। कवि को

प्रिय की प्रेम-रागिनी के स्वर चारों ओर सुनाई देते हैं। इसी का भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

भावार्थ—मेरे शरीर-रूपी **'सुर-बहार'** पर आज बड़े ही मधुर स्वरों में प्रिय के प्रेम की रागिनी बज रही है। प्रिय के स्नेह आँसुओं पर भी मधुर-विलास का वरदान देने वाली रागिनी बजने लगी है। आज मेरे नयन उस आलम्बन के रूप में होगए हैं जो खो गया अर्थात् मेरे नेत्र अपने बिछुड़े हुए प्रियतम के रूप से भर गए हैं। इस प्रकार हम अपनी जान पर खेलकर, अनेकानेक कठिनाइयाँ झेलने के उपरान्त प्रियतम के साथ सुख पूर्वक सोने के लिए उनके साथ एकाकार होने के लिए तैय्यार हो पाए हैं। इस सुख-शयन का समय शीघ्र ही व्यतीत होगया और कलियों पर से ओस की बूँदें टपकने लगीं तथा सूर्य उदित हो गया। स्वरों का एक नवीन प्रकार का आरोहण-अवरोहण अर्थात् एक नवीन संगीत, संसार रूपी वीणा के तार-तार पर अथवा विश्व के कण-कण में गुंजायमान हो गया।

अलंकार—(१) रूपक—देह की सुर-बहार। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—तार-तार।

विशेष—रहस्यवाद की अभिव्यक्ति है। साधक सर्वव्यापी चेतना की अनुभूति करता है। विश्व का कण-कण कवि को उसी परम संगीत की ध्वनि के कारण उन्मदिष्णु दिखाई देता है।

(४६) हँसी के तार होते हैं

शब्दार्थ—बहार=वसंत, यौवन। निगाह=दृष्टि। वेशिनी=क्यारी। समीर-सार=हवाई अथवा कल्पना की दुनिया।

संदर्भ—कविवर निराला के द्वितीय चरण की यह कविता 'बेला' से **राग-विराग** में संकलित की गई है। इस गीत में कवि ने वसन्त ऋतु के मादक प्रभाव का वर्णन किया है।

भावार्थ—वसंत ऋतु रूपी यौवन के दिन हँसी खुशी के साथ गाने-बजाने के दिन होते हैं। वासन्ती यौवन के दिन किसी के प्यार में अपना दिल हार जाने के लिए होते हैं अर्थात् यह अवस्था किसी के प्यार में अपने आपको भूल जाने की होती है। मेरी दृष्टि जैसे ही केशर की क्यारियों पर पड़ी, वैसे ही मानो लहलहाती हुई केशर ने मुझ से कहा कि वासन्ती यौवन के दिन पद्मिनी नायिकाओं के शरीर से आने वाली सुगंध के कारण झुक जाने के लिए होते हैं।

किसी कली या किसी फूल पर बैठी हुई तितली पर जब मेरी नजर पड़ी, तो वह यह कहती हुई प्रतीत हुई कि वासंती-यौवन के दिन अपने आपको सजाने के लिए (मेरे परों की भाँति रंग-बिरंगे परिधान से सज्जित होने के लिए) होते हैं।

जैसे ही वसंत की शीतल मंद सुगंध हवा चली और प्रियतम का स्पर्श उसने किया, वह मुझसे कहने लगे कि यौवन के दिन तो हवाई दुनियाँ-कल्पना-लोक में रहने के लिए होते हैं। वसंत ऋतु रूपी यौवन के आगमन पर जीवन में जैसे ही एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव हुआ कि प्रियतम से हमारी आँख चार हो गईं अर्थात् प्रियतम की आँखों से हमारी आँखें मिल गईं। उन्होंने तुरन्त हँस कर कहा कि ये दिन तो प्यार करने के लिए होते ही हैं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—पूरे छंद में। (२) छेकानुप्रास—समीर-सार।

विशेष—१. स्वरूप-विधान की दृष्टि से यह कविता 'गज़ल' है। बन्दिश ग़ज़ल की होने पर भी इसमें ग़ज़ल की गहराई का अभाव है। परन्तु इसमें अपना निजी मिठास है।

२. कवि को अपनी मस्ती संसार भर में प्रतिबिम्बित दिखाई देती है। उसका यौवन मानो कण-कण में प्रतिध्वनित हो रहा है। जड़-चेतन उसको प्यार का संदेश देते हुए सुनाई देता है। सच ही है यौवन के दिन प्रेम और सौन्दर्य के दिन होते हैं। तुलना करें—

इक भीजें चहलैं परें बूढ़ें-बहें हजा़र।
कित न औगुन जग करे नय-बय चढ़ती बार।

—बिहारी

३. लक्षणा का प्रयोग **दृष्टव्य** है—हँसी के तार, बहार, हृदय के हार, सुगन्ध-भार, नवीनता की आँखें।

४. मुहावरा—आँखें चार।

५. नवीनता की आँखें········कहा कि—। तुलना करें—

निगाह जब चार होती हैं मुहब्बत हो ही जाती है।

६. सुगंध-भार—पद्मिनी नायिका के शरीर से कमल की सुगंध आती है। वासन्ती-यौवन ऐसी श्रेष्ठ नायिका के सम्मुख नत होने का अवसर होता है।

७. **समीर-सार**—यौवन और प्रेम अंधा होता है। यौवन में व्यक्ति में स्फूर्ति एवं उत्साह की प्रचुरता होती है। इस कारण उसे बड़े-बड़े मंसूबे, हवाई

किले बनाने ही चाहिए। यौवन की मस्ती, उसके अल्हड़मन, उसकी मस्ती का थोड़ा-बहुत अनुभव सभी को होता है।

८. इस कविता में कवि का दृष्टिकोण एकदम यथार्थवादी एवं भोगवादी हो गया है।

(५०) वन-बेला

(क) वर्ष का प्रथम .... सुकृत मान।

शब्दार्थ—उरोज=कुच, स्तन। मंजु=सुन्दर। निरुपम=अद्वितीय। पिक=कोयल। प्रणय=प्रेम। प्रखर=तेज। उर्जित=शक्तिशाली। भास्वर=दिव्य। रसा=पृथ्वी। दिनकर=सूर्य। क्षोभ=क्रोध। सुकृत=पुण्य करने वाला, भाग्यशाली।

संदर्भ—कवि ग्रीष्मकालीन प्रकृति का वर्णन करता है।

भावार्थ—वर्ष का प्रथम चरण था। मंजुल और अद्वितीय पर्वत पृथ्वी के उरोजों के समान उठे हुए थे। नवीन कोपलों के सौन्दर्य में आबद्ध कोयल और भौंरे गूँज रहे थे जो अपने जीवन की प्राणवत्ता से प्रेम के गीत रच-रच कर गा रहे थे जिसको सुनकर ग्रीष्म रूपी यौवन सहसा तीव्रतर होता गया और शक्तिशाली तथा चमकता हुआ सूर्य पुलकित होकर अपनी सैकड़ों किरणों रूपी व्याकुल हाथों से गोद में भर कर गुस्से से, उत्कण्ठा से प्रेम के नैन की समता से पृथ्वी को चूम रहा था और सर्वस्व दान देकर भाग्यशाली प्रिया के मान का निवारण कर रहा था।

अलंकार—(१) मानवीकरण—प्रकृति का सम्पूर्ण छन्द। (२) उपमा—उरोज पर्वत। (३) सम—प्रखर से प्रखर तर। (४) छेकानुप्रास—पिक प्राण, भ्रमर भर, सर्वस्व सुकृत। (५) पदमैत्री—तपन-यौवन, क्षोभ-लोभ, ममता समता। (६) रूपक—तपन-यौवन। (७) पुनरुक्तिप्रकाश—शत-शत बार-बार।

विशेष—१. प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन है। मानवीकरण की पद्धति है।

२. अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का सुखद समन्वय है।

३. छायावादी शैली पर प्रकृति में नारी का दर्शन है।

४. ग्रीष्म की तपन के माध्यम से निराला के ओज की मधुर व्यंजना

५. 'तपन-यौवन'—पंक्ति में प्रकृति 'उद्दीपन' बनती हुई दिखाई देती है।

६. कोमलकान्त पदावली में निहित संगीतात्मकता द्रष्टव्य है।

(ख) दाब में .... जड़ चेतन।

शब्दार्थ—दाब=प्रभूत मात्रा, अधिकता। भीष्म=भयंकर। प्रस्वेद=पसीना।

संदर्भ—कवि निराला सन्ध्या के अवसाद को धारण करने वाले अपने मन का हाल बताते हैं।

भावार्थ—धीरे-धीरे चलता हुआ, धर्मयुक्त होकर एवं बगल वाले दृश्य से विरक्ति के कारण आँखें हटाकर मैं अपने मन में यह विचार करता हुआ नदी के किनारे-किनारे चला जा रहा था कि मेरा जीवन व्यर्थ हो गया और मैं जीवन-संघर्ष में हार गया। मैंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि सब लोग अपने भविष्य का स्वयं निर्माण करते रहते हैं। इसी प्रकार की अनेक बातें मन में आईं। मैं अपने सोचे हुए (पूर्व निर्धारित) स्थान पर पहुँच गया। एकान्त देख कर बैठ गया। इस समय मैं बहुत दुःखी था।

अलंकार—पदमैत्री—धर्माक्त विरक्त।

विशेष—१. निराला जी की निराशा मुखर है। वह अपने आपको एक पराजित सिपाही की भूमिका में प्रस्तुत करते हैं।

२. "अपने भविष्य की रचना कर रहे सभी"—इस पंक्ति में कर्म-सिद्धान्त का सुन्दर प्रतिपादन है। परन्तु जवानी और तेजी के दिनों में कौन सोचता है कि "रंग लाएगी हमारी फाकेमस्ती एक दिन।"

(ग) फिर .... चित्र।

शब्दार्थ—यथासूत्र=पहले विचारों के सूत्र में। बिध=विद्वान। अनुचर=नौकर। उद्दत कर=उद्यत हाथों से।

संदर्भ—कवि निराला राजपुत्रों पर व्यंग्य करते हुए अपनी अर्थ-कुण्ठा व्यक्त करते हैं।

भावार्थ—मैं पुराने विचारों के सिलसिले में सोचने लगा कि मैं भी यदि राजपुत्र होता तो भले ही मैं सदा बुरे कार्य करता रहता तो भी ये समस्त विद्वान् मेरे सेवक होते और वे मेरी प्रसन्नता के लिए विनम्रतापूर्वक सिर झुकाए खड़े रहते और मैं अपने उद्यत हाथों से उन्हें जो कुछ देता उसको वे बढ़ा-चढ़ा कर लिखते; जितने भी समाचारपत्र होते, वे सब-के-सब मेरी अमर कीर्ति का

गुणगान करते, मेरा जीवनचरित लिख कर उस पर अग्रलेख लिखते अथवा मेरा बड़ा-सा चित्र प्रकाशित करते ।

विशेष—अँगरेजी शब्द 'पेपर' के प्रयोग द्वारा भाषा को चलता हुआ रूप देने का प्रयत्न स्पष्ट है।

(घ) इतना भी .... पिता पास ।

शब्दार्थ—लक्षपति = लखपति । अविचलित = एकाग्र मन से । उग्रतर = अधिकबल । सुनिर्धार = अच्छी तरह सोच-विचार कर । गर्दभ स्वर से = गधे जैसी भद्दी आवाज से । मर्दन = लज्जित करने वाला । त्वरित = शीघ्र । सहस्र = हजार । षट् = छह ।

संदर्भ—कवि निराला धनवानों पर व्यंग्य के बहाने पूँजी के प्रति अपनी आसक्ति की अभिव्यक्ति करते हैं।

भावार्थ—यदि मैं राजपुत्र होकर किसी लखपति का ही पुत्र होता, तो मैं विद्याध्ययन के लिए अरब सागर पार करके विदेश जाता, मेरे पिता, देश की नीति के पूरे पण्डित माने जाते, धन पर एकाधिकार रखते हुए भी वे साम्य-वाद के प्रबल समर्थक माने जाते तथा वह साम्यवाद का प्रचार करते और जनता खूब अच्छी तरह सोच-विचार करके उन्हें राष्ट्रपति चुन लेती और कुछ लोग उन पर बाजारू सस्ते परन्तु राष्ट्रीय गीत लिखकर और गधे से भी भद्दे स्वर से उन्हें गा-गा कर बेचते। हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी इस दिशा में पीछे नहीं रहता और कहीं वे गीत खोकर नष्ट न हो जाएँ, इस डर से उन्हें साहित्य की तरह सम्हाल कर सुरक्षित रखता । अपने पिता के इस प्रकार सम्मानित होने का समाचार समुद्र पार बैठा हुआ मैं तुरन्त ही तार द्वारा पाता । खबर को पाकर मैं लाटसाहब के लड़कों को दावत देता और उनके साथ ऐश करता । इस प्रकार प्रति मास छह हजार रुपए खर्च करते हुए अपनी पढ़ाई खत्म करके मैं अपने योग्य पिता के पास वापस लौट आता ।

अलंकार—१. पुनरुक्तिप्रकाश—गा-गा, मास-मास ।

२. व्यतिरेक—गर्दभ मर्दन स्वर ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति तीखा व्यंग्य किया है, तथा अतृप्त वासना की अभिव्यक्ति ।

(ङ) **वायुयान .... इतना उदार।**

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र। मर्मान्तिक=हृदय को कष्ट पहुँचाने वाली। प्रान्तिक=प्रान्त का। विचक्षण=विद्वान। अभंग=पूर्ण।

संदर्भ—पूर्व छन्द (च) के समान।

भावार्थ—मैं हवाई जहाज द्वारा वापस आता और अपने चरण-कमलों का भारत-भूमि पर पदार्पण करता। अखबारों के प्रतिनिधियों के मध्य हलचल मच जाती, वे सभी झटपट हाथों में कैमरे लेकर मेरी ओर दौड़ते और वे मेरी फोटो लेने की अपनी इच्छा प्रकट करते। मैं शिष्टता प्रकट करता हुआ उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लेता। फिर कभी इधर को कभी उधर मुँह करके खड़ा होता तथा नीचे ऊपर देखकर लगातार बीसियों भाव-मुद्राएँ बनाता। इसके पश्चात् मैं देश-वासियों के लिए भावपूर्ण और गूढ़ सन्देश देता जिसमें अपनी भाषा न होने के कारण अपने देश और गाँव की कोई बात न होती। रूस के साम्यवाद से सम्बद्ध समस्त बातें मैं चलताऊ तौर पर कह जाता, जो अखबारों में बार-बार छपतीं और जिन्हें बिरले विद्वान ही समझ पाते। तब मैं अपने पिता के साथ देश की जनता की आजन्म सेवा का व्रत लेता और मंच पर खड़ा होकर अपने भाषणों के द्वारा साम्यवाद का प्रचार करता। इस प्रकार मैं अत्यधिक उदार वृत्ति वाला बन जाता।

अलंकार—(१) रूपक चरण कमल। (२) पदमैत्री—दल हलचल, इधर-उधर।

विशेष—१. पूँजीवादी व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है। इस छन्द में पत्रकारों तथा नकली समाजवादियों की अच्छी खबर ली गई है। इस कविता का रचनाकाल सन् १९३७ है। द्रष्टव्य यह है कि सन् १९३५ में काँग्रेस के अन्दर समाजवादी दल की स्थापना हुई थी और भारत की राजनीति में समाजवाद का हल्ला सुनाई पड़ा था। अतृप्त वासना की अभिव्यक्ति भी है।

२. 'कैमरा' अँग्रेजी का शब्द है। भाषा का स्वरूप अत्यन्त चलता हुआ है। भाषा में साम्यवादी मांसलता द्रष्टव्य है।

३. वर्णनशैली सजीव एवं चित्रात्मक है।

४. मानव-मन में कवि की पैंठ देखते ही बनती है।

(च) तप-तप .... दर्शन शर ।

शब्दार्थ—रक्ताभ=लाल रंग का । दुस्तर=कठिन । सुषम=समता । सुधर=सुन्दर ।

संदर्भ—कवि निराला प्रकृति में अपने भावों की प्रतिच्छाया देखते हुए सान्ध्यकालीन वातावरण का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—सन्ध्याकालीन नभ का मस्तक तप-तप कर लाल हो गया, जिससे दिशाओं के फलक भी लाल हो गए । मैंने बेचैनी के साथ आँखें खोलीं और देखा कि चारों ओर प्रेयसी की सुरक्षित केशराशि से आने वाली स्निग्ध सुगन्ध की भाँति तेज सुगन्ध आ रही थी । मैंने सोचा कि मैं भी यहाँ अकेला ही क्यों आ गया हूँ । मैं वहीं पर बैठ गया । मैंने अपने चारों ओर हँसती हुई उपवन बेला को देखा जो दिन-दिन के ताप और दुखों को अपने जीवन में भरकर और पूरी गहराई के साथ दीर्घ श्वास लेकर इसी प्रकार लहरा रही थी जिस प्रकार किसी परम सिद्ध व्यक्ति की साधना सात्विक जीवन के कठिन दुःखों को पार करके और समानता का भाव लेकर उभर कर आ गई हो अथवा कोई सुन्दरी अप्सरा क्षीरसागर को पार करके निकली हो, जिसके शरीर और केश भीगे हों तथा जो विश्व के चकित दृश्य के दर्शन रूपी तीरों से आहत होकर काँप रही हो ।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—तप-तप । (२) रूपक—दिगन्त-फलक, दर्शन-सर । (३) उपमा—ज्यों स्निग्ध गन्ध । (४) पदमैत्री—फिर कर घिर कर, पाकर क्षीर सागर । (५) मानवीकरण—हँसती उपवन बेला । (६) छेकानुप्रास—ताप त्रास, अतल, अतुल, बोला बेला । (७) उदाहरण—ज्यों सिद्ध....आई ऊपर । (८) संदेह—जैसे पारकर....सुघर ।

विशेष—१. प्रकृति के माध्यम से कवि ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है । उपवन-बेला का मानवीकरण है, अन्यथा सम्पूर्ण प्रकृति-वर्णन उद्दीपन विभावान्तर्गत है ।

२. प्रकृति में नारी-दर्शन की प्रवृत्ति स्पष्ट है । छायावादी शैली की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है ।

(छ) बोला मैं .... करो दर्श ।

शब्दार्थ—वन्य=वन का, बनैला । सुबातास=सुन्दर वायु । मुहर्मुहः=बार-बार । अवहेलना=लापरवाही ।

संदर्भ—कवि निराला वन-बेला से एक प्रेयसी के रूप में वार्त्तालाप करते हैं।

भावार्थ—वन में फूलने वाली बेला को देख कर मैंने कहा कि, हे बेला! जिस वन में तुम गीत बन कर खिली हुई हो वहाँ पर लोगों का आवागमन नहीं है। जब भीषण गरमी पड़ती है, तब तुम अपने छोटे प्याले में अथाह सुशीलता भर कर सुगन्ध रूपी इस मदिरा का पान करा रही हो। संकोच-शीलता का अभिनय करते हुए आँखें नीचे को झुकाकर मैं उसके और भी अधिक समीप चला गया। उसी समय यकायक संध्या समय की सुगन्धित हवा चलने लगी। तब झुक-झुक कर, तन-तन कर, फिर झूम-झूम कर और वायु के झकोरे के साथ हँसती हुई, चिरपरिचित चितवन को मेरे चेहरे पर डालती हुई, अपना सुन्दर मुख मरोडती हुई और बार-बार अपने शरीर में विमल सुगन्ध को भरती हुई बोली कि मैं अपना सर्वस्व देती हूँ। अतएव तुम मुझे मत छुओ। तुमने अवसर प्राप्त होने पर लापरवाही बरती है, इसलिये तुम्हारा स्पर्श अपवित्र हो गया है। अतः तुम रुको और दूर से ही मुझे देखते रहो।

अलंकार—(१) मानवीकरण—बेला। (२) छेकानुप्रास—बोला बेला, मुखड़ा मरोर, चिर चितवन। (३) रूपक—सुगन्ध की सुरा। (४) वृत्यानु-प्रास—सहसा सन्ध्या सुवास। (५) पुनरुक्तिप्रकाश—झुक-झुक, तन-तन, झूम-झूम, हँस-हँस, मुहः मुहः।

विशेष—१. प्रकृति में नारी का दर्शन है।

२. प्रकृति का वर्णन भावाभिव्यक्ति के रूप में किया गया है। कवि की काम-कुण्ठा स्पष्टतः अभिव्यक्त है। सम्भवतः इनकी किसी प्रेयसी ने इन्हें स्पर्श की सीमा से बाहर ही रखा होगा।

३. कामिक अनुभावों का वर्णन द्रष्टव्य है। यह अनुभाव-विधान रीति-कालीन कवियों के वर्णनों जैसा है। उक्त वर्णन बिहारी के "नासा मोर नचाइ दृग करी कका की सौंह" (बिहारी) आदि वर्णनों की कोटि में रखने योग्य है।

४. वन-बेला के सुगन्ध-वर्णन को उद्दीपन विभावान्तर्गत रखने पर यह वर्णन विरह की 'उन्माद' दशा कही जाएगी, क्योंकि यहाँ कवि के लिए जड़-चेतन का भेद समाप्त हो गया है।

५. पदावली कोमलकान्त एवं संस्कृतनिष्ठ है।

६. भाषा में निहित संगीतात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता द्रष्टव्य है।

(ज) **मैं रुका** .... **वन-बेला।**

शब्दार्थ—शिखा=अग्नि की लौ। वन्यवह्नि=वन की आग। तन्वि=कोमलांगी। दुग्ध धवल=दूध के समान उज्जवल। वामालक चुम्बित=वाम+अलक+चुम्बित, नारी के अलकों द्वारा चूमी हुई।

भावार्थ—मैं वहीं उस मार्ग पर रुक गया जो अग्नि की ज्योति-रूपी नवयौवना बेला ने अपने मधुर प्रकाश से आलोकित करके मुझको दिखा भर दिया था। मैंने प्रार्थना की कि "हे वन की अग्नि रूपी कोमलांगी नवयौवना! दूध के सदृश निर्मल एवं उज्जवल तुम्हारी पंखुड़ियों के सदृश विचार और विश्व के प्रेमी-प्रेमिकाओं का हृदय-हार यह सच्चा सुखद स्नेह कविता की पंक्तियों— पंखुड़ियों में कहीं नहीं प्राप्त होते हैं। तुम्हारी चाल मन्द है और तुम में वामा की अलकों द्वारा चुम्बित पुलक गन्ध है, जो काव्य में अप्राप्य है।" मेरी बात सुनकर बेला बोली, "तुमने केवल अपनापन खोकर ही जीवन में खेल खेला है।" इतना कह कर वह काँप गई।

अलंकार—(१) मानवीकरण—वन-बेला। (२) उपमा—शिखा नवल (३) छेकानुप्रास—वन्य वह्नि, प्रणय प्रणयिनियों, खोया खेल। (४) पदमैत्री—वह्नि तन्वि, दल धवल। (५) वक्रोक्ति—कहाँ खुले ? (६) विषय—स्निग्ध आलोक (७) व्यतिरेक की व्यंजना—केवल आपा खोय।

विशेष—१. विशेषण विपर्यय—आलोक स्निग्ध।

२. उपर्युक्त छन्द की टिप्पणियों के समान।

३. कवि मानव की कला-कृतियों की अपेक्षा प्रकृति के पदार्थों को अधिक सजीव एवं आकर्षक मानता है।

(झ) **कूऊ-कूऊ** .... **दृष्टि।**

शब्दार्थ—छहर=बिखेरना। हरित=हरा। तमश्चरिता=अधिकार में विचरण करने वाली। निरूपमिता=अद्वितीय। आलोक=प्रकाश। शत=सौ। अन्तिम=चरम, अत्यधिक।

सन्दर्भ—कवि निराला प्रकृति के मनोहर वातावरण का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—अपने चरम सुख को व्यक्त करती हुई कोयल ने 'कुऊ-कुऊ' की मधुर ध्वनि की; और पपीहा प्रिया का विरह दग्धस्वर 'पी कहाँ' मधुर विष बिखेर गया। हृदय में विविध भावों को उत्पन्न करके और उपवन के प्रत्येक पत्ते को हिलाती हुए हवा बहने लगी। लहरों में कम्प और सागर से

स्वीकार कर सकूँ। हे माता ऐसा वरदान दे कि जिन दुर्बलताओं के कारण मन में कायरता आती है, वे सब नष्ट हो जाएँ और दृढ़ विश्वास के द्वारा कर्म-पथ की समस्त बाधाएँ छिन्न-भिन्न हो जाएँ। हे माता ! मुझे ऐसी प्रेरणा दो कि मैं दिन-रात सदैव आपकी आज्ञा का ही अनुसरण करता रहूँ। पर अपवाद-रूपी ईंधन मेरे हृदय की पवित्रता-रूपी अग्नि में जल जाये और मैं पूरी शक्ति के साथ निरन्तर भक्ति-भाव से विनम्र बना हुआ तथा जीवन की समस्त विषयासक्तियों को पार करता हुआ अपने कर्मपथ पर अग्रसर होता रहूँ।

अलंकार—(१) रूपक—लांछना इंधन। (२) पदमैत्री—सम्पूर्ण छन्द।

विशेष—एक सच्चे भक्त की भावना कोमलकान्त पदावली में अभिव्यक्त है। तुलना कीजिए—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

× × ×

परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।

तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरिभक्ति लहौंगो।

—विनयपत्रिका : गोस्वामी तुलसीदास

(ख) प्राण .... तरण।

शब्दार्थ—प्राण-संघात=प्राणों का विनाश करने वाले, मृत्यु। तीर=किनारा। समीरण=वायु।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

भावार्थ—हे जननि ! मैं प्राण हरण करने वाले मृत्यु-रूपी सागर के किनारे पर बैठा हुआ यह नहीं गिनता रहूँगा कि उसमें कितनी लहरें हैं; अर्थात् मैं मृत्यु से डरकर उसके दिन नहीं गिनूँगा मैं तो वायु की भाँति धैर्यपूर्वक उस मृत्यु सागर को पार कर जाऊँगा, अर्थात् अमरत्व को प्राप्त करूँगा। मेरे जीवन में मृत्यु के लिए कोई स्थान ही न रह जायेगा।

अलंकार—(१) रूपक—प्राण संघात के सिंधु। (२) रूपमा—समीकरण ज्यों।

विशेष—१. मृत्यु पर विजय ज्ञानोदय का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। सन्त-स्वभाव की प्राप्ति भगवत्कृपा की पहचान है—हौं अपनायो तब जानि हौं, जब मन फिर परि है—(तुलसी)। मृत्यु पर विजय आत्मज्ञान की पहचान है—

अनजाने को नरक सरग है, जाने को कछु नाहीं।
जेहि डर कों सब लोग डरत हैं, सो डर हमरे नाहीं ।।

—**कबीरदास**

२. इस कविता में निरालाजी का साधक स्वरूप स्पष्टतः उभर कर आ गया है।

३. निराला आशा, प्रकाश और साहस के कवि हैं। उनका यह रूप इस कविता में झांकता हुआ दिखाई देता है।

द्रष्टव्य—इस कविता का रचना-काल सन् १९३२ है।

(३२) अनगिनित आ गये

अनगिनित .... उठी आनन्द-ध्वनि।

शब्दार्थ—अनगिनित = जिनकी गणना न की जासके, अनेक। जन = सेवक, भक्त। सुरभि = सुगंध। सुमनावली = फूलों के समूह। अवनि = पृथ्वी। पंक = कीचड़, पाप। पंकज = कमल। ऊर्ध्व = ऊपर। दृग = नयन। लख = देखकर। अखिल = समस्त।

संदर्भ—यह छोटी सी कविता बिना शीर्षक है। इसकी रचना कवि निराला ने अपनी काव्य-साधना के प्रथम चरण में की थी। इस कविता में कवि जगज्जननी के प्रति अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त करता है।

भावार्थ—हे माता ! तेरी शरण में अनगिनत-अनेकानेक-लोग आ गए हैं। उनके द्वारा अर्पित फूलों की मालाओं से विकीर्ण होने वाली सुगंध से धरती वसंत ऋतु के समान सुगंधित होकर खिल उठी है।

हे माँ ! तेरे स्नेह के कारण पापी हृदय सुन्दर कमल के समान निर्मल बन गए हैं। ऊपर की ओर उठी हुई मेरी आँखें आकाश में मोती-माणिक रूपी तारागण को देखती हैं। हे माँ ! अब तेरी कृपा से रात्रि व्यतीत हो गई है। यह देख समस्त दिशाएँ हँसने लगी हैं। अब संसार के समस्त लोगों के कण्ठों से आनन्द की ध्वनियाँ उठकर चारों ओर फैल गई हैं।

रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—मुक्ति-मणि।

विशेष—(i) लक्षणा—निशि। (ii) दिशि में मानवीकरण है। (iii) इस कविता में निराला जी आशावादी दिखाई देते हैं। मातृ-दर्शन की उमंग की सफल अभिव्यक्ति है।

(३३) पावन करो नयन

पवन .... शयन ।

शब्दार्थ—पावन = पवित्र । रश्मि = किरण । लघुकर = छोटे हाथ । चयन = चुनना । सतत = सदैव । प्रतनु = क्षीण । शरदिन्दु = शरद् + इन्दु, शरद् का चन्द्रमा । शयन = सोना ।

संदर्भ—कवि निराला प्रकृति से उदात्त भाव-प्रेरणा ग्रहण करते हुए कहते हैं ।

भावार्थ—तुम अपने नेत्रों को पवित्र करो । नीले आकाश पर चन्द्रमा की किरणें सैकड़ों रूप धारण करके समस्त विश्व को सौन्दर्य से भर रहीं हैं । तुम अपने नन्हे हाथों से—अपनी सामर्थ्य के अनुसार—इनका संग्रह करो ।

ये रश्मियाँ क्षीण हैं । शरद् के चन्द्रमा की सुन्दर किरणें कमल पर पड़ी हुई ओस की बूँदों पर चमक रही हैं । इन्हें देखकर स्वप्न में जाग्रति का आभास होता है । इस प्रकार दुःख की इस रात्रि में तुम स्वप्न-जाग्रति का आनन्द लाभ करो, अर्थात् सोते हुए तुम जाग्रतावस्था में निरन्तर स्थित रहो ।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—नभ, नील, स्वप्न, सुकर । (२) रूपक — दुःखनिशि । विरोधाभास—स्वप्न-जाग्रति ।

विशेष—१. छायावादी काव्य-शैलीगत विशेषता का समावेश द्रष्टव्य है—

(क) कोमलकान्त पदावली । (ख) प्रकृति-प्रेम । (ग) विशेषण विपर्यय—विश्व छवि में उतर । (घ) लाक्षणिक प्रयोग—लघुकर करो चयन । (ङ) वायवी शैली । (च) अमूर्त्त का मूर्तीकरण । (छ) रहस्यात्मकता—स्वत्न-जाग्रति सुघर । (ज) दार्शनिकता—दुःखनिशि करो शयन । दुःख के समय शान्त भाव से बैठ जाओ । दुःख की घटा को निकल जाने दो; यथा—यस्याम् जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यते मुनिः ।—**गीता** ।

२. उपनिषद वाक्य है कि सुषुप्ति की अवस्था में चैतन्य जाग्रत हो जाता है । इस प्रकार सोते हुए भी निरन्तर जाग्रति की बात कही गई है । कमल के ऊपर पड़े हुए बिन्दु यह बताते हैं कि सूर्य के वियोग में कमल रोया है । चन्द्र-किरण से प्रार्थना है कि वह उसके जल-बिन्दुओं पर जाग्रति रूप होकर सो जाए । इससे कमल को पूर्ण चैतन्यावस्था का आनन्द लाभ होगा । इस प्रकार कमल और किरण की मानवीय क्रियाएँ तथा मुक्ति की सूक्ष्म व्यंजना कवि की सूक्ष्मग्राही कल्पना की ओर संकेत करती हैं ।

३. इस कविता की रचना सन् १९३० में थी

(३४) वर दे

वर दे .... **नव स्वर दे ।**

शब्दार्थ—वीणावादिनी=वीणा बजाने वाली अर्थात् सरस्वती । वर दे= वरदान दे । रव=स्वर । अन्धउर=अंधेरा हृदय, अज्ञानी हृदय । ज्योतिर्मय =प्रकाशवान, ज्ञान-स्वरूप । निर्झर=झरना । कलुष=पाप । भेद कर= नष्ट करके । तम हर=अंधेरा हर कर अर्थात् अज्ञान को दूर करके । जलद= बादल । मन्द्र-रव=बादल की ध्वनि के समान गम्भीर स्वर । विहग=पक्षी । पर=पंख । वृन्द=समूह ।

संदर्भ—निराला जी ने अपने इस प्रसिद्ध गीत की रचना प्रथम चरण में की थी । **राग-विराग** में इसे गीतिका से संकलित किया गया है । कवि देवी सरस्वती से समस्त मानव समाज के लिए ज्ञान एवं स्वाधीनता की याचना करता है ।

भावार्थ—हे माता सरस्वती ! मैं तुझ से बार-बार यह वरदान माँगता हूँ कि तू मेरे देश भारत में अमृत के समान मधुर स्वतन्त्रता का मंत्र एवं स्वर भर दे ।

हे माँ, तू अज्ञान से भरे हुए हमारे हृदय के विभिन्न बन्धन काट दे, अर्थात् हम भारतवासी अज्ञान के कारण अनेकानेक रूढ़ियों के बन्धनों में जकड़े हुए हैं, हे माँ तू उन्हें दूर करदे । ऐसा करने के उपरांत तू प्रकाश-रूपी ज्ञान के झरने बहादे और इस प्रकार चारों ओर ज्ञान-रूपी प्रकाश से समस्त देश को प्रकाशित कर दे ।

हे माँ ! अपने ज्ञान से प्रकाशित देश रूपी आकाश में विचरण करने वाले भारतवासी रूपी पक्षियों को नवीन गति प्रदान कर, नवीन लय, ताल, छन्द प्रदान कर । इतना ही नहीं इसके लिए उन्हें नवीन कण्ठ दे और साथ ही भर दे उन कण्ठों में बादल के समान गम्भीर नया स्वर । हे माँ, चारों ओर नवीनता का वातावरण छा जाए तथा उसको अभिव्यक्त करने के लिए कवियों को नवीन वाणी प्रदान कर । बस मैं तुझसे यह वरदान माँगता हूँ ।

अलंकार—(i) अनुप्रास—वर वीणावादिनी वर दे तथा सम्पूर्ण अंतिम छन्द । (ii) पदमैत्री—प्रिय—नव, तम हर, प्रकाश हर । (iii) श्लेष पुष्ट रूपक—अंध उर, कलुष-भेद । (iv) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—नव नभ के विहंग वृंद ।

विशेष—(i) राष्ट्रीय भावना की अभिव्यंजना है। कवि भारत देश में स्वतन्त्रता की शंख ध्वनि करना चाहता है।

(ii) संगीतात्मकता द्रष्टव्य है।

(iii) लोक-रंजन की भावना मुखर है।

(iv) नवीनता एवं स्वच्छन्दता के प्रति कवि का आकर्षण स्पष्टत: अभिव्यक्त है। कवि प्राचीन छन्दों के बन्धनों को तोड़ कर नवीन छन्दों में नवीन विचारों को व्यक्त करने को उत्सुक है। प्राचीन के कवि निराला के विद्रोह की भावना संयत रूप में व्यक्त हुई है। वह वस्तुत: अन्धविश्वासों के कारण प्रचलित समस्त प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का अन्त देखने का इच्छुक है—"काट अन्धउर के बन्धन-स्तर" पंक्ति में यही भाव व्यंजित हुआ है। वह युग ही वस्तुत: बन्धनों को अस्वीकार करके जीवन को स्वच्छन्द बनाने का युग था।

(v) निराला की यह सरस्वती वन्दना प्राय: मंगलाचरण के रूप में गाई जाती है।

(३५) बन्दूँ पद सुन्दर तव

(क) बन्दू पद .... पिक रव।

शब्दार्थ—बन्दूँ=वन्दना करता हूँ। नवल=नवीन। नव-अम्बर=नया आकाश। स्वरोर्मियाँ=स्वर लहरियाँ। जनक-जननि-जननि=पिता-माता की माता। ज्योतिस्तर-वासे=ज्योति के स्तर पर वास करने वाला। दिक्कुमारिका=दिशाओं रूपी कुमारी। पिकरव=कोयल की मधुर ध्वनि।

संदर्भ—कवि निराला अपनी मातृभाषा की वन्दना करते हैं।

भावार्थ—हे माता! मैं तुम्हारे सुन्दर चरणों की वन्दना करता हूँ। मैं यह वन्दना नवीन छन्दों और समृद्ध-संगीतमय स्वरों द्वारा करता हूँ।

मेरे पिता और माता की माता, हे जन्म-भूमि की भाषा-स्वरूप माता! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। हे ज्योति के स्वर पर वास करने वाली, अर्थात् साक्षात ज्ञान स्वरूपा तुम जाग्रत हो, उठो और आकाश को अपने नवीन स्वर से भर दो, जिससे स्वर लहरियाँ चारों दिशाओं में गुंजायमान हो उठें और दिशारूपी कुमारियाँ कोयल-सद्रश अपने मधुर एवं मादक गान द्वारा समस्त वातावरण को आपूरित कर दें।

अलंकार—(१) अनुप्रास—जननि जनक-जननि-जननि। (२) रूपक—दिक्कुमारिका।

विशेष—(१) निराला का मातृभाषा प्रेम अभिव्यक्त है। (२) भाषा कोमलकान्त पदावली युक्त है। शैली सामासिक है। भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं क्लिष्ट है। (३) संगीत-ध्वनि मनोहारी है। भाषा में ध्वन्यात्मकता भी है। (४) निराला ने हिन्दी साहित्य में पहली बार मुक्त छन्द का प्रयोग कर छन्द और संगीत का समन्वय किया था। वह संगीतात्मक लय को काव्य के लिए अनिवार्य मानते थे। यहाँ सम्भवतः उन्होंने अपनी इसी अभिनव साधना की ओर संकेत किया है।

(ख) दृग दृग .... भव।

शब्दार्थ—रंजित = शोभित। पंचबाण = कामदेव। परिचयशर = परिचय देने वाले बाण। भव = संसार। सचराचर = अखिल विश्व, चल और अचल, समस्त पदार्थ।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान।

भावार्थ—हे माता! तुम प्रत्येक पाठक को प्रसन्न करके उसको नवीन ज्योति प्रदान कर दो, जिससे प्राणों में बसने वाले कामदेव के परिचायक पाँच बाण भी विद्ध हो जाएँ, अर्थात् कामदेव का आमूल विनाश हो जाए! जन-जन की दृष्टि तुम्हारी ओर बँध जाए और तुम्हारा मोहक स्वरूप सम्पूर्ण संसार को अपने आकर्षण में बाँध ले।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—दृग-दृग। (२) गूढ़—पंच बाण के भी परिचय शर।

विशेष—(१) मुहावरा—अंजन भर दो, प्राण विधे। (२) शैली लाक्षणिक है। (३)हिन्दी को विश्व-भाषा बनाने की सुखद कल्पना है। (४) कामदेव के पाँच बाणों के नाम इस प्रकार माने जाते हैं—नील कमल, मल्लिका, अशोक, आम्रमंजरी और चम्पक।

(३६) भारति, जय, विजय करे

(क) भारति, जय, विजय करे .... अर्थ भरे।

शब्दार्थ—भारति = भारत माता, सरस्वती देवी। कनक = सुनहला। शस्य = अनाज। कनक शस्य-कमल धरे = सुनहली धान रूपी कमल। धरे = धारण करे। पदतल = पैरों के नीचे। शतदल = कमल। गर्जितोर्मि = गर्जितः उर्मि, गरजती हुई लहरें। शुचि = पवित्र। युगल = दोनों। स्तव = स्तुति।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कविवर निराला की कविता **भारति जय, विजय करे** से उद्धृत हैं। इसमें कवि ने सरस्वती के रूप में भारत माँ की स्तुति की है।

भावार्थ—सरस्वती-रूपा भारत माता की जय-विजय हो। इस भारत माता रूपी सरस्वती ने सुनहले अनाज रूपी कमल अपने हाथों में धारण कर रखे हैं। लंका इसके (सरस्वती) पैरों के नीचे स्थित सौ पंखुड़ियों वाला कमल है। समुद्र की गरजती हुई लहरों वाला समुद्र उक्त पवित्र चरण-कमलों को धोता रहता है। उस सागर की गर्जना मानो सरस्वती-रूपा भारत माता की अनेक अर्थों भरी स्तुति है। ऐसी भारत माता हम सबको जय-विजय प्रदान करे।

अलंकार—(i) सभंग—पद यमक—जय-विजय। (ii) रूपक—कनक शस्य—कमल, लंका—शतदल। (iii) पदमैत्री—पदतल, शतदल। (iv) मानवीकरण—सागर जल। (v) उत्प्रेक्षा की व्यंजना—अंतिम पंक्ति।

विशेष—देश-भक्ति की भावात्मक अभिव्यक्ति है।

(ख) **तरु-तृण-वन-लता** .... **धार हार गले।**

शब्दार्थ—तरु=वृक्ष। तृण=घास। वसन=वस्त्र। खचित=जड़े हुए। सुमन=फूल। ज्योतिर्जल कण=चमकती हुई पानी की बूँदें। धवल=उज्जवल, निर्मल।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—भारत-भूमि पर उगे हुए वृक्ष, हरे भरे तृण कण और वनों की लताएँ उस भारत माता के वस्त्र के समान हैं। विभिन्न प्रकार के फूल उसके अंचल में जड़े हुए सितारों के समान हैं। चमकती हुई उज्जवल बूँदों वाली गंगा की जल-धारा भारत माँ के गले का हार है।

अलंकार—(i) सांगरूपक—सम्पूर्ण छंद। (ii) छेकानुप्रास—तरु-तृण। (iii) पदमैत्री—वन वसन, धार, हार।

विशेष—भारत माता का मानवीकरण द्रष्टव्य है।

स्थूल भौगोलिक रूप में कवि ने भारत माँ की परिकल्पना प्रस्तुत की है।

(ग) **मुकुट** .... **मुखरे।**

शब्दार्थ—शुभ्र=उज्जवल, श्वेत। हिमतुषार=हिमालय पर्वत की बर्फ। ध्वनित=गुंजित। शतमुख=सैकड़ों मुखों से। शतरव=सैकड़ों स्वरों से। प्रणव=ओंकार।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान ।

भावार्थ—इस सरस्वती रूपा भारत माता के सिर पर बर्फयुक्त हिमालय उज्जवल मुकट के समान है । सैकड़ों हजारों लोगों के मुखों से ओंकार की ध्वनि रूपी भारत माता की स्तुति गूँजती रहती है ।

अलंकार—(i) रूपक—मुकुट—ओंकार । (ii) छेकानुप्रास—प्राण प्रणव ।

विशेष—उपर्युक्त छंद के समान ।

(३७) जग का एक देखा तार

(क) **जग का एक देखा तार** .... **अनिलउदार ।**

शब्दार्थ—सप्तक = संगीत के सात स्वर । अरविन्द-नन्दन = इन्द्र के वन के कमल, स्वर्गिक कमल । अखिल = समस्त संसार । उर-रंजन = हृदय को आनंद देने वाला । निरंजन = निराकार । अनिल = वायु ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कविवर निराला की प्रथम चरण की कविता **जग का एक देखा तार** से संकलित हैं । कवि का कहना है कि प्रकृति के तत्व संसार में एकत्व का संचार कर रहे हैं ।

भावार्थ—मैंने यह बात अच्छी तरह देख ली है कि यद्यपि कंठ या ध्वनि अनेक हैं तथा उनके स्वर उत्पन्न करने वाला तार एक ही है । प्रत्येक शरीर रूपी स्वर-सप्तक से एक ही मधुर स्वर की झंकार व्यक्त हो रही है । संसार में अनेक प्रकार के फूल खिलते हैं, उसमें रंग भी अनेक होते हैं, परन्तु उन सबको मिला देने पर ही एक सुन्दर हार तैयार किया जाता है । उस हार को बनाने वाला एक है तथा वह हार वक्षस्थल की शोभा को बढ़ाता है । स्वर्गिक वन के कमलों में सैकड़ों प्रकार की गन्ध होती है जो कि विश्व-वन्दना के सार तत्व जैसी है अर्थात् जिस प्रकार समस्त लोग कल्याण के लिए बन्दना करते हैं, उसी प्रकार कमलों की प्रत्येक गंध घ्राण वृत्ति को तृप्त करती है । सभी के हृदयों तक उस गंध को ले जाकर आनन्दित करने वाला निराकार पवन भी एक ही है जो अपनी उदारता से समस्त विश्व के प्राण का समान रूप से पोषण करता है ।

अलंकार—(i) रूपक—पद सप्तक । पदमैत्री—अंतिम दो चरण ।

विशेष—(i) शब्द-योजना प्रतीकात्मक एवं नाद-सौन्दर्य से पूर्ण है ।

(ii) सप्तक—संगीत के सात स्वर, सा, रे, ग, म, प, ध, नी ।

(iii) समस्त पदार्थों एवं प्राणियों में एक ही चेतना व्याप्त है। वही विविध रूपों एवं आकारों में कार्यरत दिखाई देती है।

(iv) समस्त संसार में एक ही तत्व की सत्ता है। अत: एकत्व ही जीवन का सार है। विभिन्नत्व में एकत्व के दर्शन द्वारा ही हम जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। कवि ने विश्व में भावों के सुमन भी एक से ही बताकर अपनी बात को बहुत ही भावपूर्ण शैली में अभिव्यक्त किया है।

(ख) **सतत सत्य .... निरलंकार।**

शब्दार्थ—सतत=निरंतर। सुसिंचित=अच्छी तरह से सींचा हुआ। किंचित=कुछ। श्रम=परिश्रम। निस्तार=छुटकारा। अलक-मण्डल=केशों का समूह। निरलंकार=अलंकार रहित। अयुत=१० हजार की संख्या अर्थात् अनेक।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—सत्य शाश्वत है—निरन्तर रहने वाला तत्त्व है। संसार के समस्त निर्मल सुखों का विस्तार भी सदैव से रहा है। एक ही प्रेमभाव अनेकों अधरों को भली प्रकार से सिंचित किए हुए है। आकाश के अंधकार में भ्रम के सिवाय और कोई तत्त्व नहीं है। परिश्रम के द्वारा ही जगत् के झंझटों से छुटकारा मिलना सम्भव होता है—अर्थात् आनन्द का एकमात्र हेतु परिश्रम है। परिश्रम में आनन्द उसी प्रकार छिपा रहता है जिस प्रकार केश कलाप के मध्य सुन्दरी का अलंकार रहित चन्द्रमुख छिपा रहता है।

अलंकार—(i) वृत्यानुप्रास—सतत सत्य, सकल सुख। (ii) पदमैत्री—सुसिंचित, किंचित। (iii) उदाहरण—अंतिम चरण।

विशेष—(i) पूर्व छन्द के समान।

(ii) कवि की शैली रहस्यात्मक अथवा अस्पष्ट हो गई है। सारांश रूप में वह कहना यह चाहता है कि—(i) सारे संसार में एक ही सत्य व्याप्त है। (ii) सब जगह एक ही तत्व कार्यरत है तथा (iii) परिश्रम के फलस्वरूप होने वाली आनन्दानुभूति के माध्यम से उस तत्त्व का अनुभव किया जा सकता है। शेष सब कुछ भ्रम है।

(३८) टूटें सकल बन्ध

टूटें सकल बन्ध .... तिमिर अंध।

शब्दार्थ—बन्ध=बन्धन। दिशा-ज्ञान-गत हो=दिशाओं के ज्ञान से

पूर्ण होकर। रुद्ध=रुका हुआ। शिखर=चोटी। निर्झर=झरने। रन्ध्र=छेद। रश्मि=किरण। ऋजु=सीधी। तिमिर अंध=गहरा अंधेरा, अंधा बनाने वाला अंधेरा।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला प्रणीत है। इसमें कवि प्रकृति के विकास के माध्यम से जीवन में माधुर्य के संचार की कामना करता है।

भावार्थ—पतझड़ के कारण कलियों का विकास रुक जाता है। इस विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाले समस्त बन्धन टूट जाएँ। कलियों की सुगंध समस्त दिशाओं का स्पर्श कर सके और वह उनमें फैलकर उन्हें सुगन्धित कर दे। जो जल-धारा पर्वत की चोटियों पर रुक गई है, वह झरनों के सतत प्रवाह के रूप में फिर से झर-झर कर बहने लगे तथा उनका मधुर स्वर सैकड़ों सूने रन्ध्रों को गुंजायमान कर दे।

प्रकाश की किरणें सुख-आनन्द के सैकड़ों रंगों के चित्र जीवन के चित्रपट पर अंकित कर दें जिससे जीवन के रंग में निखार एवं विकास आ सके। जीवन का गहरा अंधेरा दूर हो तथा उसके स्थान पर प्रकाश भर जाए।

अलंकार—(i) अनुप्रास शून्य, शत-शत। (ii) पुनरुक्ति प्रकाश—शतशत। (iii) रूपक—वर्ण-जीवन।

विशेष—(i) शैली लाक्षणिक है—दिशा-ज्ञान-गत हो, तिमिर अंध।

(ii) "**जागे तिमिर अंध**" पंक्ति में कवि की व्यंजना यह है कि गहरा अंधकार भी जाग जाए—अर्थात् जड़तम व्यक्ति भी ज्ञान-सम्पन्न हो जाएँ तथा अपने अधिकारों को पहचान जाएँ।

(iii) टूटें सकल बन्ध—इसमें स्वच्छन्दता की भावना की अभिव्यक्ति है, जो छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है तथा ईस्वी सन् के तीसरे-चौथे दशकों की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रेरणा थी।

(३९) बुझे तृष्णाशा-विषानल

शब्दार्थ—तृष्णाशा=तृष्णा और आशा। तृष्णा=जीवन की इच्छा। आशा=सुख की इच्छा। विषानल=जहर की आग। गहनतर=अधिक गहरा। अवनि=पृथ्वी। अनामिल=निर्मल। मकरन्द=फूलों का रस। पुर-पुर=गाँव-गाँव में, प्रत्येक गाँव में। **कर्षण**=आकर्षण, मोह।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ, कविवर निराला के कविता-संग्रह **'राग-विराग'** में संकलित "**बुझे तृष्णाशा-विषानल**" शीर्षक कविता से संकलित की गई हैं। इसमें

कवि सम्पूर्ण मानव-समाज के पवित्र एवं सुखी जीवन की कामना प्रकट करता है ।

भावार्थ—तृष्णा और आशाओं की विषैली आग बुझ जाए; काव्य-रूपी अमृत का झरना चारों ओर झरने लगे । प्राणों की गहनता (आत्मा) से पृथ्वी के प्राणियों के आनन्द पूर्ण स्वर उमड़ें और वे आकाश तक छा जाएँ ।

जिस प्रकार ओस की बूँदों से धोए हुए निर्मल पुष्पों को प्रातःकालीन सूर्य की किरणें चूम लेती हैं उसी प्रकार आशा-तृष्णा से मुक्त व्यक्तियों के मुखों को काव्य की सुगंध एवं हृदय में काव्य-रस का संस्पर्श प्राप्त हो, और प्रत्येक नगर-गाँव के लोग आनन्दातिरेक से झूम उठें । स्थूल जीवन के अज्ञान जन्य मोह एवं आकर्षण के कारण जीवन का जो भयानक पतन होता है, उसका भय एवं अस्तित्व समाप्त हो जाए । इस प्रकार महीतल के निवासियों के अन्तस से उत्पन्न आनन्द के स्वर आकाश तक छा जाएँ अर्थात् समस्त जीवन में व्याप्त हो जाएँ ।

अलंकार—(i) रूपक—भाषा-अमृत, (ii) उपमा—पुरुष ज्यों । (iii) पुनरुक्तिप्रकाश—पुर-पुर ।

विशेष—भाव यह है कि सांसारिक मोह-पाश से छुटकारा पाकर ही मनुष्य सुखी हो सकता है । कवि इसी की कामना करता है ।

(ख) **बढ़े** .... **स्वर** ।

शब्दार्थ—बिंधा=बिंधा हुआ, उलझना । क्षुद्र=तुच्छ । क्षिति-सलिल= धरती के पानी से । अनिल=पवन । गगन-कारा=आकाश रूपी जेल ।

संदर्भ—पूर्व छंद के समान ।

भावार्थ—हमारे जो परिचय तुच्छ भावनाओं के कारण बिंध गये हैं (कट गए हैं—टूट गए हैं) वे फिर से बढ़ जाएँ । इस धरती के पानी से बनने वाले बादल जिस प्रकार वायु के सहारे ऊपर उठते हैं, उसी प्रकार हम भी इस पृथ्वी के स्वार्थों से ऊपर उठकर आकाश-रूपी जेल अथवा स्वच्छन्दता के बन्धनों का अनुभव करें । वर्ण-संकरता के रूप में जाति-भेद आदि हमारे जीवन में उत्पन्न हो गए हैं, उन भेद-भावों का अन्धकार दूर हो जाए जिससे इस पृथ्वी के निवासियों के आनन्द एवं उत्साह से भरे हुए स्वर ऊपर उठकर आकाश को पार कर जाएँ ।

अलंकार—(i) विरोधाभास—गगन-कारा ।

(ii) छेकानुप्रास—वेद, वर्ण, पार, प्राणों ।

विशेष—लोक-रंजन की भावना प्रखर है ।

(४०) प्रात तव द्वार पर

(क) प्रात तव .... द्वार पर ।

शब्दार्थ—तव=तेरे । नैश=निशा का विशेषण, रात्रि का । उपल=पत्थरा । उत्पल=कमल । कन्टक=काँटे । अवदात=शुभ्र, श्वेत, निर्मल । अवसन्न=निश्चेष्ट, दुखी ।

संदर्भ—निराला जी देवी की प्रार्थना करते हुए कहते हैं ।

भावार्थ—हे माता ! मैं रात्रि के अन्धकार से पूर्ण मार्ग को पार करके प्रातःकाल तेरे द्वार पर आया हूँ । मार्ग में जो पत्थर मेरे पैरों में लगे, वे मुझे कमल की तरह प्रतीत हुए । पैरों में लगने वाले काँटे जागरण के प्रतीक बन गए । मैं तुम्हारी याद में डूबा हुआ रात-भर उस मार्ग पर चलता रहा । इस यात्रा के कारण यद्यपि मेरा शरीर थक गया है, तथापि तेरे दर्शन का वरदान प्राप्त करके मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । हे माता ! मैं प्रातः काल तेरे द्वार पर आया हूँ ।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—पथ पार । (२) पदमैत्री—पार कर, अवसन्न पुरुष । (३) विरोधाभास—उपल उत्पल हुए ज्ञात, अवसन्न प्रसन्न ।

विशेष—१. सुन्दर प्रतीक-विधान है ।

२. साधक की साधनावस्था का काव्यमय वर्णन है । भगवान के ध्यान में मग्न साधक प्रत्येक बाधा को अपना शिक्षक मानता है और उसको अपना हितैषी समझता है । विष का प्याला मीरां के लिए अमृत का प्याला बन गया था और साँप के स्थान पर शालग्राम के दर्शन हुए थे । ईसा और मंसूर के लिए सूली फूलों की सेज बन गई थी । अस्तु ।

(ख) समक्ष क्या .... द्वार पर ।

शब्दार्थ—भीरु=डरपोक । मलिनमन=दुष्ट मन वाले । निशाचर=राक्षस । तेजहत=तेजहीन, निष्प्रभ । वन्य=जंगली । प्रभात-घन=प्रकाश । गहे=पकड़े ।

संदर्भ—कवि निराला कहते हैं कि विवेक-सम्पन्न व्यक्ति ही इस साधना-पथ पर अग्रसर होते हैं ।

भावार्थ—हे जननि ! वे लोग जो कायर (कपटी) और दुष्ट स्वभाव वाले हैं, जो तेजहीन राक्षसों जैसा आचरण करते हैं तथा पाशविक वृत्तियों के दास हैं, वे जीवन की सार्थकता के मर्म को क्या कभी समझ सकेंगे ? अर्थात् वे लोग यह कभी भी न जान पाएँगे कि जीवन का आनन्द प्रयोजन की सिद्धि में नहीं है। हे माता ! जो ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं, वे अपने उद्देश्यों में तभी सफल हो सकते हैं, जब वे अमरता प्रदान करने वाले तेरे चरणों की शरण में आ जाएँ।

अलंकार—वक्रोक्ति—समझ वे····जीवन कहाँ।

विशेष—(१) प्रभात-घन में प्रतीक-विधान है। (२) अमर पद में 'विशेषण विपर्यय' है। (३) वन्य जन में उन व्यक्तियों के प्रति संकेत है, जो इन्द्रियों के दास हैं। गोस्वामी जी ने राक्षसों के लक्षण बताते हुए लिखा ही है—

"परद्रोही परदार रत पर-धन पर अपवाद।"

द्रष्टव्य—कविता का रचना-काल सन् १९३२ है।

(४१) सरोज-स्मृति

(क) ऊनविंश ···· ···· तरुण।

शब्दार्थ—ऊनविंश=उन्नीस। तनये=तनया, पुत्री। दृक्पात तरुण=यौवन भरी दृष्टि, आँखें बन्द करना। विराम=अन्त। अरुण=लाल, दुख का चिह्न। गीते=प्रशंसित गीतों की प्रेरणा। शाश्वत=हमेशा के लिए। शुचितर=अत्यन्त पवित्र। सपर्याय=समस्त। अष्टादशाध्याय=अठारह अध्याय, अर्थात् अठारह वर्ष। मृत्यु तरणि=मृत्यु रूपी नौका। तूर्ण चरण=तीव्र गति से, शीघ्रता पूर्वक चरण रखकर।

संदर्भ—कवि निराला अपनी स्वर्गीया पुत्री सरोज को सम्बोधन करते हुए कहते हैं।

भावार्थ—हे पुत्री अपने जीवन के उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश करते ही तू जीवन रूपी सागर को पार कर गई, अर्थात् तेरी मृत्यु हो गई। हे बेटी तूने अपनी यौवन भरी दृष्टि डाल कर पिता से जन्म की विदा ले ली, अर्थात् तू जन्म लेकर अपने पिता के पास आई थी और अब दुखद विदा लेकर चली गई। हे मेरी गीते (गीतों की प्रेरणा) इस भौतिक संसार के नाम और रूप के बन्धनों को तोड़ कर तूने उस अमर शाश्वत मृत्यु का वरण किया और अपने जीवन के पवित्रतम अठारह वर्ष सर्वाङ्ग रूप से पूरे कर तू शीघ्रता के साथ चरण बढ़ा

कर मृत्यु रूपी नौका पर सवार हो गई—यह कहती हुई कि पिता जी मैं आज पूर्ण प्रकाश का वरण कर रही हूँ। यह मेरा मरण नहीं है, अपितु आज तुम्हारी सरोज परम ज्योति की शरण में जा रही है।

अलंकार—(१) रूपक—जीवन-सिन्धु, मृत्यु-तरणि। (२) अपह्नुति—यह नहीं मरण....तरण। (३) पदमैत्री—तरणि करण, शरण तरण।

विशेष—१. लाल रंग दुःख का प्रतीक है। इसी से दुःख भरी विदा को अरुण कहा है।

२. मृत्यु के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है।

(ख) अशब्द अधरों .... कर गई पार।

शब्दार्थ—अशब्द=मूक। अधर=होंठ। भाषा=वाणी। अहरह=दिन-रात। ज्योतिस्तरणा=सरस्वती। शत-शत-जर्जर=सैकड़ों वाणों से घायल। अक्षम=अशक्त। सक्षम=समर्थ। दुस्तर तम=सघन अन्धकार। स्तब्धान्धकार=गहन अन्धकार, जहाँ किसी का शब्द भी न सुनाई दे।

सन्दर्भ—छन्द (क) के समान।

भावार्थ—मैंने संसार की मूक वेदना का हा-हाकार सुना है। मैंने दिन रात ज्योतिस्वरूपा सरस्वती के चरणों में अपने आप को पूर्णरूपेण समर्पण करके कुछ आन्तरिक प्रकाश प्राप्त किया है। जीवित साकार कविता के समान सुन्दर हे मेरी बेटी! सैकड़ों वाणों से घायल और जर्जर बने अपने पिता को इस पृथ्वी पर छोड़ कर तू स्वर्ग को चली गई। क्या ऐसा करते समय तेरे मन में यह विचार आया था कि जब मेरे पिताजी जीवन रूपी मार्ग को पार करने का प्रयत्न करेंगे और अपने आपको अशक्त एवं असमर्थ पायेंगे, तब सामर्थ्यवान मैं उनको इस दुर्गम अन्धकार से पार उतार दूँगी? इस संसार से विनयपूर्वक तेरा प्रयाण यही द्योतित करता है कि तेरे मन में अन्य कोई भाव उदय ही नहीं हुआ था। तू इस भाव को लेकर श्रावण मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को आकाश के गहन अन्धकार को पार करके चली गई।

अलंकार—(१) सभंगपद यमक—अहरह, रह।

विशेष—लाक्षणिक प्रयोग दृष्टव्य है।

(ग) धन्ये मैं .... मुख-चित।

शब्दार्थ—धन्ये=अपने जीवन को सार्थक बनाने वाली। अर्थाग-मोपाय=

धन पैदा करने के उपाय। शुचिते=पवित्र। चीनोसुक=रेशमी वस्त्र। दधि-मुख=दूध दही खिलाना। विपन्न=त्रस्त, दुख भरे।

भावार्थ—अपने जीवन को सार्थक बना लेने वाली मेरी पुत्री ! मैं व्यर्थ ही तेरा जीवन पिता बन गया था। तेरे लिए मैं कुछ भी नहीं कर सका। मैं धनोपार्जन के उपाय जानता था, परन्तु धन कमाने में मैं सदा संकोच करता रहा। धनोपार्जन के मार्ग पर अनर्थों को देखकर मैं स्वार्थ-सिद्धि के युद्ध में सदैव पराजित होता रहा। हे पवित्रता की मूर्ति ! मैं तुझे रेशमी वस्त्र न पहना सका और न तुझको भर पेट दूध-दही ही खिला सका। मैंने निर्बल के हाथ का कभी अन्न नहीं छीना। मैं दीन दुखियों के आँसुओं को देख न सका। मैंने आँसुओं के दर्पण में सदा अपने स्वरूप और भावों को प्रतिबिम्बित होते हुए देखा है।

अलंकार—१. विरोधाभास की व्यंजना—अनर्थ आर्थिक पथ पर।

२. रूपक—स्वार्थ समर।

विशेष—इन पंक्तियों में निराला जी के जीवन की सम्पूर्ण वेदना एवं कचोट मुखर हो उठी है।

(घ) सोचा है .... समाभ्यस्त।

शब्दार्थ—स्नेहोपहार=स्नेह की भेंट। भास्वर=उज्जवल, प्रकाशवान। लोकोत्तर=अलौकिक। वर=श्रेष्ठ। समाधान=उपाय। पार्श्व=बगल में, निकट। समाभ्यस्त=समान रूप से अभ्यस्त।

सन्दर्भ—कवि निराला साहित्य के क्षेत्र में अपने संघर्ष की ओर संकेत करते हैं।

भावार्थ—मैंने कई बार अत्यन्त विनम्रतापूर्वक यह विचार किया है कि आलोचकों ने जो मेरा इतना विरोध किया है, वह वस्तुत: मेरी पराजय नहीं है, बल्कि यह हिन्दी भाषा की स्नेह स्वरूप भेंट है, जो श्रेष्ठ-उज्ज्वल अलौकिक हार के समान है; अन्यथा साहित्य के अगाध सागर में जहाँ साहित्य और कला के शुद्ध, महल और कलापूर्ण भाव संग्रहीत हैं, उनको बढ़ाने में मैंने भी अपना योगदान दिया है। मेरा साहित्यिक कृतित्व इसका प्रमाण है। अन्य कुशल साहित्यकारों की कृतियों के बराबर रखकर यदि देखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि मैंने गद्य-पद्य—दोनों में समान अधिकार के साथ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

विशेष—निराला जी जिन्दगी-भर यही सोचते रहे कि हिन्दी के आलोचक

उनके प्रति निर्मम रहे और उनको अपने कृतित्व के अनुरूप सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया। निरालाजी की यह कुण्ठा अवसर पाते ही उभर कर सामने आ जाती है। यहाँ भी यही हुआ है।

(ङ) **देखें .... कूची भर।**

शब्दार्थ—प्रवर=श्रेष्ठ लोग। घूर्ण=वात्याचक्र। घात=आघात। तूर्ण=शीघ्रता से। शर-क्षेप=तीरों का लगना। चीत्कारोत्काल=शोर-गुल। तूलिका=कूँची। विमला=सरस्वती। वांछित=इच्छित। कल=सुन्दर।

सन्दर्भ—निरालाजी अपने साहित्यिक विरोधियों के सम्बन्ध में कहते हैं।

भावार्थ—वे श्रेष्ठ लोग जो सदैव मेरे साहित्यिक संघर्ष को देखते रहे हैं, इस बात को देखें कि जब मेरे ऊपर एक साथ सैकड़ों आक्रमण अत्यन्त तीव्र-गति से हो रहे हैं, तब मैं स्थिर भाव से बिना पलक झपकाए टकटकी बाँधे उनके व्यंग्य-वाण चलाने के कौशल एवं युद्ध-कौशल को खड़ा देखता रहा था। अब उन लोगों का वह शोरगुल मचाना समाप्त हो चुका है। अपने उस क्रोध-भरे युद्ध में पराजित होकर अब उनका कण्ठ रुद्ध हो गया है।

उन लोगों द्वारा लांछित मेरी काव्य-कृतियों की शोभा और भी अधिक प्रकाशित होगी। मेरे साहित्य द्वारा जीवन में प्रेरणा प्रदायक सूर्योदय होगा। देखना, सरस्वती अपने सुन्दर हाथों में कला की सुन्दर कूची लेकर कैसे-कैसे रंग भरती है? अर्थात् मैं कैसी-कैसी काव्य-कृतियों की सृष्टि करता हूँ? आलोचकों द्वारा लांछित मेरी कृतियाँ माँ सरस्वती को स्वीकार हैं। वह इनके ऊपर स्नेह से भरी हुई कूँची फेरकर इन्हें स्पृहणीय बना देती है।

अलंकार—(१) पदमैत्री—क्रुद्ध, युद्ध रुद्ध। वांच्छित लांच्छित। (२) यमक—जीवन-जीवन। (३) रूपक—तूलिका कला, स्नेह की कूची।

विशेष—छन्द (ङ) के समान।

(च) **अस्तु .... पर दृष्टि टेक।**

शब्दार्थ—उपार्जन=कामना। अजिर=आँगन। कलक=कचोट।

संदर्भ—कवि निराला अपनी स्वर्गीया पुत्री सरोज को सम्बोधित करते हुए कहते हैं।

भावार्थ—अतएव, धन कमाने में असमर्थ होने के कारण मैं भली प्रकार तेरा पालन-पोषण नहीं कर सका। कुछ दिन तक जब तू मेरे साथ रही थी, तब तूने अपने गौरव से मेरा माथा झुका दिया। जब मैं प्रथम बार अपने घर

मिलने की उत्सुकता लेकर नदी बहने लगी तथा रात में विचरण करने वाली आकाश की अद्वितीय ताराएँ बेला की शोभा देखने लगीं। इस विविध अलौकिक सृष्टि को देखकर सैकड़ों द्रष्टाओं की आँखें विस्मय से परिपूर्ण हो गईं।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—कूऊ-कूऊ, पल्लव-पल्लव। (२) वृत्त्युनुप्रास—कूऊ-कूऊ कोयल; पी पपीहा-प्रिया। (३) पदमैत्री—तन वन। (४) विरोधाभास—मधुर विष। (५) छेकानुप्रास—हिला हरित। (६) मानवीकरण—उत्सुक सरिता, चमश्चरिता।

विशेष—१. भाषा में ध्वन्यात्मकता है—कूऊ-कूऊ, पी कहाँ, छहर्।

२. कोमलकान्त एवं प्रवाहपूर्ण शब्द-विन्यास।

३. प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप में है। "पी कहाँ मधुर विष गई छहर।" तुलना कीजिए।

पपीहा पिय की बानी न बोल।

× × ×

सुनि पावेगी कोऊ विरहिनी रोवेगी पंख मरोड़।

—**मीराबाई**

तथा— मिली सो तिहारौ मधु मधुप हमारैं नेह।
देह मैं अछेह बिष बिसम बगारै है। —**रत्नाकार**

४. विशेषण विपर्यय—विस्मय में भर रही आलोक सृष्टि।

(ठ) **भाव में** .... **संचारिता।**

शब्दार्थ—भाव में हरा=भाव-विभोर। अस्फुट=अस्पष्ट। पावन=पवित्र। दिग्देश=दिग्+देश=दिशाएँ और काल। उपल-प्रहार=ओलों की चोट। शुचि=शुद्ध। सञ्चारिता=संचरण करने वाली, मग्न करने वाली। समतोल=सम दृष्टि वाला। ज्ञान=आत्मज्ञान।

संदर्भ—कवि निराला वन-बेला को अपनी प्रेरणा-स्वरूप वरण करते हैं।

भावार्थ—मुझ को भाव-विभोर देखकर बेला हँसती हुई अस्पष्ट स्वर में मुझसे कहने लगी—"हमारा जीवन बाह्य स्थूल पदार्थों के आधार पर जितना ही अधिक आकर्षक बनने की ओर अग्रसर होता जाता है, उतनी ही हमारी आत्मा की पवित्र निधि निर्जीव बनती जाती है; अर्थात् बढ़ते हुए भौतिकवाद के अनुपात में ही हमारा आत्मिक तत्त्व कुण्ठित होता जाता है। जो आत्मा

आजकल कौड़ियों के मोल बिकती है, वह यहाँ निर्जन वन में हो सकती है। खोज कर देखो, आत्म-तत्त्व के साधक यहाँ मिल जाएँगे। संसार के नागरिक जीवन में जहाँ धन और मान का प्रश्न है, वहाँ शायद ही समदृष्टि वाले व्यक्ति मिल सकें। वहाँ विषमता-भरा जीवन है। एक बड़ा है, अन्य छोटे अज्ञानी हैं। परन्तु जहाँ आत्म-ज्ञान होता है, वहाँ बड़े-छोटे, ऊँचे-नीचे सब समान होते हैं और सब परस्पर मित्र होते हैं। उनकी आँखों से जो मैत्री भाव फूटता है, उनकी ज्योति के कारण समस्त दिशा-काल (वातावरण) स्वर्गीय बन जाता है।" यह सुनकर मैंने कहा तुम्हारा कथन सत्य और सुन्दर है। जब तुम्हारे ऊपर ओलों की तेज वर्षा होती है, तुम तब भी अपनी डाली पर नाचती रहती हो। अतएव तुम अपनी पवित्र शोभा को संचारित करती हुई मेरे हृदय में और मेरी कविता में निवास करो, अर्थात् मैं वन की शोभा में मग्न रहूँ और कविता में उसी का वर्णन करूँ।

अलंकार—(१) मानवीकरण—बेला। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—त्यों-त्यों। (३) परिकरांकुर—पत्थर। (४) पदमैत्री—प्रहार-प्रखर।

विशेष—१. मुहावरा—कौड़ी मोल।

२. प्रकृति के प्रति कवि का उत्कट प्रेम मुखर है। प्रकृति से उपदेश ग्रहण करते हुए उसका मानवीकरण किया है।

३. बढ़ती हुई भौतिकता के प्रति समाज को सचेत किया है।

४. नागरिक जीवन के कृत्रिम जीवन के प्रति तीखा व्यंग्य है।

(ङ) फिर उष:काल .... वायु बही।

शब्दार्थ—निस्वन = शब्द, वाण की सरसराहट।

संदर्भ—एक ब्राह्मण बेला के फूल को तोड़ लेता है। कवि निराला देखते रह जाते हैं।

भावार्थ—फिर एक दिन प्रभात के समय मैं उधर की ओर टहलता हुआ गया। देखा कि बेला की डाल को झुकाकर कोई एक ब्राह्मण फूल तोड़ रहा था। बेला ने कहा, "अपने प्रिय के चरणों पर अपने आपको अर्पण करने जा रही हूँ।" प्रभातकालीन वायु धीमा शब्द करता हुआ बहता रहा और उसको देखता रहा।

अलंकार—१. स्वभावोक्ति—पूरा छन्द।

२. मानवीकरण—बेला, वायु।

विशेष—१. कवि बेला से सम्पूर्ण समर्पण की शिक्षा लेता है।

२. प्रकृति भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में चित्रित की गई है।

३. कवि-हृदय के लिए कण-कण प्रेरणा बन जाता है—

The poem hangs on the berry bush, when comes the poet's eye.

Every street is a masquerade, when Shakespeare passes by.

द्रष्टव्य—१. "मन के उतार-चढ़ाव के अनुरूप ही कविता की शैली में भिन्नता आती गई है। कवि के मन के पूर्वतर विचारों में उनकी 'परिमल कालीन' कला का रूप है, जहाँ पृथ्वी और सूर्य का प्रणय चलता है, मध्य में शैली यथार्थवादी तीक्ष्ण चोट करने वाली और व्यंग्य-प्रधान है, जो आक्रोश को व्यक्त करती है। अन्त में एक प्रशान्त मनोदशा को व्यक्त करने वाली गम्भीर और दार्शनिक कवि की-सी शैली है। यह उनके विजय के गर्व की अनुभूति को व्यक्त करती है।"

२. इस कविता का रचनाकाल सन् १९३७ है।

(५१) तोड़ती पत्थर

(क) **वह तोड़ती पत्थर** .... **प्राकार।**

शब्दार्थ – श्यामतन=काले रंग का शरीर। प्रिय कर्मरत=प्रिय रूपी कर्म में लगी हुई। गुरु=भारी। तरु मालिका=वृक्षों का समूह। प्राकार=परकोटा।

संदर्भ—कवि निराला इलाहाबाद की सड़क पर पत्थर तोड़ने वाली एक मजदूरिनी का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—मैंने उसको इलाहाबाद के एक मार्ग पर पत्थर तोड़ती हुई देखा जिस पेड़ के नीचे वह बैठी हुई काम कर रही थी, वह पेड़ छायादार नहीं था। परन्तु विवश होकर उसको उसी के नीचे बैठ कर काम करना स्वीकार करना पड़ा था। उसके शरीर का रंग काला था, उसकी भरी जवानी थी, अर्थात् वह पूर्ण युवती थी। उसकी आँखें नीचे की ओर झुकी हुई थीं और वह तल्लीनता के साथ अपने प्रिय कर्म में लगी हुई थी। उसके हाथ में भारी हथौड़ा था जिससे वह पत्थरों पर बार-बार चोट मारती थी। उसके सामने ही दूसरी ओर घने वृक्षों की पंक्ति, अट्टालिकाएँ और परकोटे वाली कोठियाँ थीं।

अलंकार—(१) पदमैत्री—नतनयन प्रिय कर्मरत मन। (२) पुनरुक्ति-प्रकाश—बार-बार।

विशेष—१. इस कविता का रचना-काल सन् १९३५ है। यह प्रगतिवाद की रचना है। हिन्दी में प्रगतिवाद के युग का आरम्भ सन् १९३५ से माना जाता है। इसमें मार्क्सवादी तत्त्व सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश पूर्ण व्यंग्य स्पष्टतः अभिव्यंजित है।

२. जिस मजदूरिनी पर निरालाजी की नजर टिकी है, वह कोई अधेड़ बुढ़िया न होकर भरे यौवन वाली तरुणी है। अतः फ्रायड के उन्मुक्त काम-प्रकाशन के सिद्धान्त का भी प्रभाव मुखर है।

३. सौन्दर्य-वर्णन में मांसलता है और इसके अनुरूप स्थूल भाषा का प्रयोग है।

(ख) **चढ़ रही धूप .... छागई....तोड़ती पत्थर।**

शब्दार्थ—दिवा=सूर्य। चिनगी=चिनगारी।

सन्दर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान।

भावार्थ—दिन चढ़ने के साथ धूप तेज होती जा रही थी। गरमी की ऋतु थी। सूर्य अपने जलते हुए रूप में प्रकट था। झुलसाने वाली लू चलने लगी थी। सूर्य की तेज गरमी के कारण पृथ्वी रुई की तरह जल रही थी और गर्द रूपी चिनगारियाँ चारों ओर छा गई थीं। अर्थात् चारों ओर आग की चिनगारियों की तरह गरम धूल छाई हुई थी। धूल के कण क्या थे, मानो आग की चिनगारियाँ ही थीं। प्रायः मध्याह्न का समय था और वह पत्थर तोड़ कर गिट्टी बना रही थी।

अलंकार—(१) उपमा—रुई ज्यों (२) रूपक—गर्द चिनगी।

विशेष—पूर्व छन्द (क) के समान।

(ग) **देखते देखा .... मैं तोड़ती पत्थर।**

शब्दार्थ—सहज = सहज भाव से। छिन्न=बिखरा हुआ। सुघर=सुन्दर। सीकर=पसीने की बूँदें।

सन्दर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान।

भावार्थ—जैसे ही वहाँ रुक कर मैंने उसकी ओर देखा, वैसे ही उसने मेरी ओर देखा और उसी दृष्टि में उसने सामने वाले बड़े मकान की ओर देखा। यह देख कर कि मैं अकेला ही था, उसने अपने तार-तार फटे हुए कपड़ों की ओर दृष्टि डाली। उसने मेरी ओर उस व्यथित व्यक्ति की भाँति देखा जिसको कोई ऐसा जबरदस्त व्यक्ति मारता है जो मार खाने वाले को रोने भी नहीं देता। उस एक

दृष्टि द्वारा ही उसने मुझे अपनी सम्पूर्ण करुण-कथा उसी प्रकार सुना दी, जिस प्रकार कोई सितार पर सहज भाव से उँगलियाँ चला कर एक अभूतपूर्व झंकार उत्पन्न कर देता है। भाव यह है कि निरालाजी ने जीवन में पहली बार इतने सहज भाव से एक शोषिता नारी के जीवन में व्याप्त करुणा एवं विवशता का अनुभव किया था।

एक क्षण तक मेरी ओर देखने के पश्चात् वह युवती काँप उठी। उसके माथे से पसीने की बूँदें नीचे गिर पड़ीं। वह फिर अपने पत्थर तोड़ने के काम में पूर्ववत् लग गई। "मैं तोड़ती पत्थर हूँ," उसका यह मौन स्वर उस वातावरण में निनादित हो उठा।

अलंकार—(१) अनुप्रास—सजा सहज सितार। (२) विशेषोक्ति की व्यंजना—जो मार खाकर रोई नहीं। (३) उदाहरण—सजा—झंकार

विशेष—१. पूर्व छंद (क) के समान।

२. इस छन्द में कई वाक्यांश महत्त्वपूर्ण हैं—निराला-सदृश विशालकाय एवं स्वस्थ व्यक्ति को देखकर उसने सामने के भवन की ओर देखा, उसने अपने फटे कपड़ों में से झाँकते हुए शरीरांगों की ओर दृष्टिपात किया और यह सब किया एकान्त समझ कर। साथ ही वह काँप भी उठी। क्या उसको कम्प सात्त्विक हुआ ?

माथे से पसीना गिरना तो गरमी के कारण भी हो सकता है। ये समस्त संकेत हमको यह सोचने के लिए विवश करते हैं कि इन पंक्तियों में कवि की अभुक्त काम-वासना अभिव्यंजित है ?

द्रष्टव्य—निरालाजी की यह कविता प्रगतिवादी काव्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। "जो मार खा रोई नहीं"—इस एक ही पंक्ति में शोषित—दलित मानव की करुण व्यथा साकार हो उठी है।

कविता में जीवन का यथार्थ कटुतापूर्ण शैली में चित्रित है। छायावादी निराला की भाषा अपनी सूक्ष्मता का परित्याग करके यहाँ एकदम स्थूल और मांसल बन गई है।

(५२) उक्ति

जला है जीवन .... **मेघ-माल।**

शब्दार्थ—आतप = धूप, गर्मी। दीर्घकाल = लम्बा समय। सिक्त = गीले।

आलबाल=थाला । धूलि-धूसर=धूल से मटमैले । व्योम-उर=आकाश का हृदय ।

संदर्भ—यह लघु कविता कवि निराला के काव्य-संग्रह **अनामिका** से संकलित है। इसमें कवि ने ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा के मेघों के आगमन का वर्णन किया है।

भावार्थ—यह जीवन तेज धूप में बहुत दिनों तक जलता रहा है। इस भयंकर कड़ी धूप के प्रभाव से भूमि, वृक्ष और सींचे पेड़-पौधे तथा झाड़ियाँ आदि सभी सूख गए हैं। उन पर मँडराने वाले भौरों के गूँजने का स्वर भी बन्द हो गया है। समस्त लताओं के समूह धूल के कारण मटमैले हो गए हैं। लेकिन देखो बन्धु ! इस कठोर गर्मी के बाद आकाश रूपी कण्ठ में नीले बादलों की माला पड़ गई है अर्थात् धरती के तपन मिटाने वाले बादल आगए हैं।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—जलता, जीवन। सूखे, सूखी। धूलि धूसर। (२) रूपक—व्योम-उर।

विशेष—१. मेघों के आगमन का बड़ा ही सहज-स्वाभाविक वर्णन है।

२. **लक्षणा**—जीवन।

३. प्रतीक स्वरूप यह गीत जीवन के संघर्ष के प्रति संकेत करता है। दु:ख के बाद सुख की छाया आती है।

(५३) लू के झोकों झुलसे हुए थे जो

(क) लू के झोकों .... पानी फिरा।

शब्दार्थ—झिरा=झड़ा। दौंगरा=तपी हुई धरती पर होने वाली ग्रीष्म ऋतु की अल्पवृष्टि।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कविवर निराला की दूसरे चरण की कविता **'लू के झोंको झुलसे हुए'** से ली गई हैं। यह कविता निराला के काव्य-संग्रह **'बेला'** में संग्रहीत है।

कवि तीक्ष्ण गर्मी और उसके प्रकोप को मिटाने वाले बादलों का वर्णन करता है।

भावार्थ—जो व्यक्ति, पदार्थ, पेड़-पौधे आदि ग्रीष्म में लू के झोकों से झुलसे थे, उन्हीं के ऊपर ग्रीष्म ऋतु में अल्पवृष्टि हुई अथवा ग्रीष्म कालीन स्वलपवृष्टि की सुखानुभूति उन्हीं को हुई, जो ग्रीष्म के प्रकोप में जल चुके थे।

इसी प्रकार जिन बीजों और पौधों ने लू के झोंके झेले थे, उन्हीं को वर्षा के आगमन पर नवीन रस एवं विकास प्राप्त हुआ।

गर्मी सहने वाले खेतों पर ही हल चलते हैं और ऐसे ही खेतों पर हल चलाने वालों के माथे पर बल पड़ते हैं। नये फूल-फल भी उन्हीं वृक्षों पर लगते हैं जो गर्मी के झोंके झेलते हैं। इस प्रकार गर्मी के बाद वर्षा का पानी फिरने से प्रकृति में सभी जगह नया जीवन (जवानी) लौट आया करती है।

अलंकार—**छेकानुप्रास**—झोंकों झुलसे, फल फले।

विशेष—१. मुहावरों का सरल स्वाभाविक प्रयोग—पर लगना, माथे पर बल पड़ना, जवानी फिरी, पानी घिरा।

२. लक्ष्यार्थ यह है कि कष्ट-पीड़ा सहकर ही जीवन में सुख, समृद्धि एवं स्फूर्ति की प्राप्ति होती है।

(ख) **पुरवा हवा** .... **घन से घिरा।**

शब्दार्थ—पुरवा=पूर्व दिशा से आने वाली हवा। नमी=गीलापन, शीतलता। लड़ी-कढी=कलियाँ निकल आईं। जहाँ=समुदाय। सविता=सूर्य। अपावन=अपवित्र।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—भीषण गर्मी के उपरान्त बादलों के आगमन का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि अब पुरवैया हवा के कारण वायुमण्डल में नमी (पानी की मात्रा) बढ़ गई है और जुही के झुण्ड (खेतों) में कलियों की लड़ियाँ प्रकट हो गई हैं। पता नहीं सूर्य ने किस कविता का पाठ कर दिया कि बादलों ने आकर नये सिरे से समस्त वातावरण को ही बदल दिया है। बादलों के द्वारा होने वाली वर्षा से संसार की समस्त गंदगी (संसार में जो कुछ अपवित्र था) धुल गई। कभी जो मिट्टी के ढेले पाँवों में गड़ा करते थे, वे वर्षा के पानी में घुल कर समाप्त हो गये। सूर्य की गर्मी से तपने वाला आकाश बादलों से घिर गया है और वह अपनी दोनों आँखों से सारे संसार को समान बनाने पर तुल गया है।

अलंकार—(१) **पदमैत्री**—लड़ी-कढ़ी। (२) छेकानुप्रास—जुही जहाँ। घन घिर। (३) गूढ़ोत्तर—क्या कविता पढ़ी। (४) मानवीकरण—सविता।

विशेष—१. लक्षणा—जहाँ।

२. कविता के लोक-रंजनकारी प्रभाव की व्यंजना है।

३. वर्षा का पानी प्रत्येक व्यक्ति एवं वस्तु पर समान रूप से गिरता है

तथा पोखर और तालाब को समान रूप से जल प्रदान करता है। प्रकृति की इस प्रक्रिया में कवि सामाजिक समानता अथवा समाजवाद का उपक्रम देखता है।

(५४) उत्साह

(क) **बादल गरजो** .... **फिर भर दो।**

शब्दार्थ—धाराधर=मूसलाधार, लगातार। ललित=सुन्दर। विद्युत छवि=बिजली की चमक (शोभा)। उर=भीतर, हृदय। कवि=स्रष्टा।

संदर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ कविवर निराला के दूसरे चरण के कविता **उत्साह** से उद्धृत हैं। कवि की यह कविता **'राग-विराग'** में उनके कविता-संग्रह **अनामिका** से संकलित की गई है।

इस कविता में कवि बादलों से गरज-बरस कर समस्त संसार को नव-जीवन प्रदान करने की प्रेरणा देता हुआ कहता है।

भावार्थ—ओ बादलो! गरजो! समस्त आकाश को घेर-घेर कर मूसला-धार वर्षा करो।

हे बादलो! तुम अत्यन्त सुन्दर हो, तुम्हारा स्वरूप काले घुंघराले बालों के समान है तथा तुम अबोध बालकों की कल्पना के समान पाले गये हो, तुम हृदय में बिजली की शोभा धारण करते हो, तुम नवीन सृष्टि करने वाले हो, तुम जल रूपी नवीन जीवन प्रदान करने वाले हो, तुम्हारे भीतर वज्रपात की भी शक्ति छिपी हुई है, तुम इस संसार को नवीन प्रेरणा एवं जीवन प्रदान कर दो।

अलंकार—(१) मानवीकरण—बादल। (२) वृत्यानुप्रास—घेर घेर घोर। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—घेर घेर, ललित ललित। (४) उपमा—बाल-कल्पना के से। (५) श्लेष—जीवन।

विशेष—बादल जीवन को हरा-भरा करता है तथा कवि को कविता की प्रेरणा प्रदान करता है। वह संर्जन और संहार दोनों में समर्थ है।

(ख) **विकल विकल** .... **शीतल कर दो।**

शब्दार्थ—विकल=व्याकुल। उन्मन=अनमना, उदास। निदाघ=गर्मी का ताप। तप्त=गर्म। धरा=पृथ्वी। अनन्त=आकाश।

सन्दर्भ—पूर्व छंद के समान।

भावार्थ—गर्मी के ताप के कारण सारी धरती के लोग व्याकुल तथा बेचैन

(उदास) हो रहे थे। इसी समय सीमाहीन आकाश में हे बादलो न मालूम तुम किस ओर से आकर छा गए। हे बादलो ! तुम बरस कर इस गर्मी के ताप से तपी हुई धरती को शीतलता प्रदान कर दो। हे बादलो ! गरज कर बरसो।

अलंकार—१. वीप्सा—विकल विकल।

२. छेकानुप्रास—अज्ञात, अनन्त।

विशेष—वर्णन में सहज स्वाभाविकता है। गर्मी के उपरान्त आकाश में छाए हुए बादलों को देखकर जिस आशा का संचार होता है तथा तृषित नेत्र जिस उत्साह के साथ बादलों को देखते हैं, उसका वर्णन अत्यन्त सहज स्वाभाविक रूप से किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने भी इसी प्रकार से वर्षा के बादलों का सोत्साह स्वागत किया है—

ताक रहे सब तेरी राह।
संपुट खोले सीप खड़ी है।
पपीहा चोंच खोले—
सबको है तेरी चाह—इत्यादि

(५५) बादल छाये

(क) **बादल छाये** .... **पहनाये।**

संदर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ कविवर निराला की दूसरे चरण की कविता **बादल छाये** से ली गई हैं। यह कविता उनके कविता-संग्रह **अणिमा** से **राग-विराग** में संकलित की गई है।

इस कविता में कवि बादलों के माध्यम से अपने प्रिय के प्रति अपना प्रणय निवेदन करता है।

भावार्थ—आकाश पर बादल छाए हुए हैं। ये बादल नहीं हैं बल्कि मेरी आँखों में बसने वाले मेरे सपने हैं जो आँखों से निकल कर आकाश पर छा गए हैं। इन बादलों से जितनी बूँदें गिर रही हैं, उतनी ही भावना-रूपी अधखिली कलियाँ चुनकर मैंने तुम्हें हार के रूप में अर्पित की हैं अर्थात् बादलों से गिरने वाली बूँदें वस्तुतः बूँदें नहीं हैं, बल्कि मेरी भावना की कलियाँ हैं।

अलंकार—(१) **अपह्नुति**—बादल—ये मेरे सपने। (२) रूपक की व्यंजना—बूँदों की लड़ियाँ।

(ख) **गरजे सावन** .... **गाये।**

संदर्भ—पूर्व छंद के समान।

भावार्थ—सावन के महीने में बादल घिर-घिर कर गरजे। उन्हें देखकर मोर वनों में घूम-घूमकर नाचते रहे। तुम्हें देखकर मेरे हृदय रूपी वीणा के तार भी खिंचे और उनसे विभिन्न छन्द रूपी स्वर प्रकट हुए। तुमने जितनी बार मेरे मन को आह्लादित किया, उतनी ही बार तुमको प्रसन्न करने के लिए मैंने भी नवीन गीतों की रचना की।

अलंकार—१. पुनरुक्तिप्रकाश—घिर-घिर। फिर-फिर। तरह-तरह।

२. अनुप्रास—घन घिर-घिर।

विशेष—१. कवि का कहना है कि बादल से प्रेरणा प्राप्त करके उसने लोकरंजनकारी काव्य की सृष्टि की है और इस प्रकार उसने अपने आपको देव-ऋण से उऋण होने का प्रयत्न किया है।

२. दूसरा अर्थ प्रियतमा के पक्ष में हो सकता है। बादलों को देखकर उसे प्रियतमा की याद आती रही है और वह उसकी स्मृति में नित्य नवीन गीतों की रचना करता रहा है।

(५६) बातें चलीं सारी रात

बातें चलीं ... . बरसात तुम्हारी।

शब्दार्थ—पुरवाई=पूर्व दिशा से आने वाली नम हवा। पारस=स्पर्श मणि, एक प्रकार का पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है।

संदर्भ—यह लघु कविता कवि निराला विरचित कविता-संग्रह **बेला** में संकलित है। यह उनके द्वितीय चरण की कविता है। इसमें प्रिया को सम्बोधन है तथा है यौवन की उमंग का गान।

भावार्थ—रात भर तुम बातें करती रहीं। इसी कारण प्रातःकाल हो जाने पर भी तुम्हारी नींद नहीं खुल सकी। उस समय लगता था कि पुरवैया के झोकों ने तन-मन में यौवन की मस्ती का एक अनोखा जादू जगा दिया है। प्रिय रूपी पारस के समीप उसके प्रेमरूपी रंग में रंग कर तुम्हारा कोमल शरीर काँप उठा। तब वर्षा के समय अनजाने प्रेम-संसार की ओर बढ़कर यौवन के सर्वथा नवीन (अनपढ़े) पाठों को पढ़ने और प्रेम-सम्भोग की चोटी पर चढ़ जाने के लिए तुम्हारा यौवन चंचल हो उठा।

अलंकार—१. छेकानुप्रास—पारस पास। राग रंगे।

२. रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—पारस।

विशेष—बिम्ब-योजना के द्वारा यौवन की मस्ती का चित्रण है तथा उसकी गहराइयों में डूब जाने की इच्छा का मादक वर्णन है।

(५७) काले-काले बादल छाये

संदर्भ—यह कविता **राग-विराग** में कविवर निराला की द्वितीय चरण की रचना **बेला** से लेकर संकलित की गई है। इस कविता में जवाहरलाल नेहरू के प्रति कवि की श्रद्धा व्यक्त हुई है।

भावार्थ—देश पर विपत्तियों के काले-काले बादल छाए हुए हैं, परन्तु उनसे छुटकारा दिलाने वाले वीर जवाहरलाल अभी तक नहीं आए हैं। विपत्तियों के न मालूम कितने और कैसे साँप मंडरा रहे हैं, परन्तु उनसे उद्धार करने वाले वीर जवाहरलाल अभी तक नहीं आए हैं।

सर्प रूपी दुर्दिन का विष मानों बिजली बनकर चारों ओर कौंध रहा। उसने सबकी सीधी खोपड़ियों को औंधा कर दिया है अर्थात् उसके कारण सब लोग किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए हैं। ये विष भरे विपत्तियों के नाग बादलों के रूप में सर-सर करते हुए डस लेने के लिए हमारे सिरों के ऊपर दौड़ रहे हैं, परन्तु रक्षक जवाहरलाल अभी तक नहीं आए।

चारों ओर चलने वाली पुरवाई मानो उन नाग रूपी बादलों की फुफकार है। ये बादल रूपी नाग जैसे प्रत्येक क्षण अपनी विषैली बौछारें छोड़ रहे हैं। हमारा मन तो एक प्रकार से निराशा की अंधेरी गुफा में समाकर रह गया है। इस निराशा की गुफा से हमें निकालने के लिए वीर जवाहरलाल अभी तक नहीं आए।

मँहगाई बरसात में आने वाली बाढ़ के समान बढ़ रही है। हमारी मेहनत की कमाई बिखरी जा रही है। हम लोग भूखे-नंगे बनकर शरमा रहे हैं, पर हमारी मुक्ति का संदेश लाने वाले वीर जवाहरलाल अभी तक नहीं आए। हम एकदम निहत्थे हैं। विदेशी शासकों की शक्ति के प्रवाह में हमारे झुण्ड के झुण्ड नष्ट हो गए हैं। हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने हुए हैं और हमारी समझ में यह नहीं आ रहा है कि हम अपनी रक्षा किस प्रकार करें। वीर जवाहर लाल अभी तक नहीं आए।

अलंकार—(१) अन्योक्ति—अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत की व्यंजना के कारण सम्पूर्ण कविता। (२) पुनरुक्ति प्रकाश—काले-काले, छन-छन (३) वीप्सा—कैसे-कैसे, (४) रूपक—घन के मन, पुरवाई की फुफकारें। (५)

अनुप्रास—सर पर सरसर मँहगाई की बाढ़। (६) पदमैत्री—कौंधी औंधी, निहत्थे जत्थे।

विशेष—१. ध्वन्यात्मकता—सर-सर।

२. कवि ने जवाहरलाल नेहरू के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट की है।

३. स्वतन्त्रता के प्रति कवि की कामना की अभिव्यक्ति है।

४. जवाहरलाल अहिंसक सत्याग्रह करके जेल गए थे। अंग्रेज सरकार दमन पर तुली थी। स्वतन्त्रता सेनानियों के सामने प्रश्न था कि क्या अहिंसा के मार्ग को छोड़कर हिंसा का मार्ग अपनाया जाए। इसी द्विविधा को कवि ने "राह देखते हैं भरमाये" कह कर व्यक्त किया है।

५. प्रतीक रूप में तत्कालीन भारत की दशा का वर्णन है।

(५८) टूटी बाँह जवाहर की

शब्दार्थ—रनजित=युद्ध में जीतने वाला। लट=बालों की लड़ी। विधि=विधाता, भाग्य। बहूरी=बहू, कमला। धी=बेटी, विजय लक्ष्मी पण्डित आदि।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कविवर निराला के द्वितीय चरण की कविता **टूटी बाँह जवाहर की** से उद्धृत हैं। यह कविता कवि के कविता-संग्रह **बेला** में संकलित है। कवि पण्डित जवाहर नेहरू के प्रति अपनी श्रद्धा एवं मंगल कामना व्यक्त करता है। प्रतीत होता है कि पण्डित नेहरू किसी सत्याग्रह में घायल हो गए थे। उसी अवसर पर यह कविता लिखी गई थी।

भावार्थ—पुलिस के प्रहारों के कारण प्यारे जवाहर की बाँह टूट गई है। इस प्रकार युद्ध विजेता पण्डित की लटें आज मानों खुल गई हैं यानी उसको शत्रु के सामने अपमानित होना पड़ा है। जवाहरलाल को घायल करके और जेल भेजकर विधाता ने जनता का खजाना ही लूट लिया है तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू का भाग्य ही फूट गया है। जवाहरलाल के चले जाने से हमारी विद्या-बुद्धि का सहारा ही जाता रहा है, अर्थात् हमारा मार्ग-दर्शक ही चला गया है। इतना ही नहीं, हमारे ओजपूर्ण राष्ट्रीय गीतों का गाना भी बन्द हो गया है। इस युद्ध में जवाहरलाल रूपी लक्ष्मण के लिए कोई भी संजीवनी बूटी रूपी रक्षा का साधन न जुटा सका।

न मालूम कब से विदेशी शासकों के झुण्ड रूपी बादल हमें घेरे हुए हैं? इनकी क्रोध भरी आँखें बिजली बनकर हमें डपटती हैं। इस स्थिति से जूझने

के लिए पण्डित मोतीलाल नेहरू की लड़कियाँ (विजयलक्ष्मी पण्डित, उमा नेहरू आदि) तथा पुत्र वधू कमला राष्ट्रीय तिरंगा झण्डा ले-लेकर सत्याग्रह आन्दोलन में आ गई हैं।

अलंकार—(१) पदमैत्री—निधि विधि, (२) रूपक—लछमन पण्डित।

विशेष—सन् १९२९-३१ में होने वाले स्वतन्त्रता-आन्दोलन की एक झाँकी प्रस्तुत है।

(५९) खुला आसमान

बहुत दिनों .... नयनों के सधे बान।

शब्दार्थ—जहान = संसार। भासमान = प्रकाशित।

सन्दर्भ—यह कविता कवि निराला के काव्य-काल के द्वितीय चरण की कविता है। यह **राग-विराग** में कवि के कविता-संग्रह **बेला** से संकलित है। वर्षा के बाद आसमान खुल जाने पर गाँव का जो उत्फुल्ल वातावरण हो जाता है, उसी का वर्णन है।

भावार्थ—आज बहुत दिनों बाद पानी थमा है और आकाश खुला है। धूप निकल आई है और सब लोग प्रसन्न दिखाई दिए हैं। अब फिर सभी ओर साफ-साफ दिखाई देने लगा है। धूप में पेड़ चमकने लगे हैं। गाय, भैंसें, भेड़ आदि जानवर घास खाने के लिए बाहर निकल पड़े हैं। लड़के आपस में छेड़खानी करते हुए खेलने लगे हैं। लड़कियाँ अपने घरों के भीतर प्रसन्नता की चमक फैलाती हुई खेलने लगी हैं।

गाँव के लोग पड़ौस के गाँवों को अपने-अपने काम से चल दिए हैं। कोई बाजार जा रहा है, कोई जाँघिया-लँगोट लेकर बरगद के पेड़ के नीचे कसरत करने जा रहा है। लम्बे-तगड़े और सीधे नौजवान इस खुले वातावरण में अपना काम करने के लिए सावधान होगए हैं। पनघटों पर फिर युवतियों की भारी भीड़ हो गई है। आज किसी को चूनरी भीगने की चिन्ता नहीं है (क्योंकि पानी बरसना बन्द हो गया है।) वे समस्त युवतियाँ पनघट पर खड़ी-खड़ी आपस में बातें करती हैं। बीच-बीच में वे युवकों के साथ सावधानी के साथ नयन-वाण चलाती जाती हैं।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—छेड़-छेड़। गाँव-गाँव। तगड़े-तगड़े। (२) रूपक—नयन बान।

विशेष—१. लक्षणा—दिखी दिशाएँ।

२. गाँव के उन्मुक्त वातावरण का संश्लिष्ट वर्णन है।

३. नयनों के सधे बान—इसमें **सधे** शब्द महत्त्वपूर्ण है। नयन-वाण साधकर चलाए जा रहे हैं, जिससे लक्ष्य पर ही लगें तथा अन्य किसी को पता न चल पाए। इस पंक्ति में कवि की काम-कुण्ठा व्यक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल इसी दृश्य का वर्णन करने के लिए यह कविता लिखी गई है। कविता का अन्य भाग तो वस्तुतः इतिवृत्तात्मक है। केवल एक इसी पंक्ति में कवि का हृदय मुखर दिखाई देता है। जाँघिया, लँगोटा, तगड़े—ये शब्द अपरिनिष्ठित हैं।

(६०) आरे, गंगा के किनारे

शब्दार्थ—बाज=कोई कोई। तारे=उद्धार किया। खारुआ=एक प्रकार का गहरा लाल रंग।

संदर्भ—यह छोटी सी कविता कवि निराला के कविता-संग्रह **बेला** से संकलित है। इसमें कवि ने गंगा तट की चहल-पहल का वर्णन बड़े ही सहज स्वाभाविक ढंग से किया है।

भावार्थ—हे मित्र! आओ! गंगा के किनारे चलें। झाड़-वन, पगडण्डियों को पार करके तथा रेतीले खेतों को छोड़कर गंगा के किनारे पर ही घासफूस की एक कुटिया बनी है। उसमें एक साधु बाबा विराजमान रहते हैं। वे ही उसको झाड़ते-बुहारते हैं। हवाई जहाजों को उड़ाने वाले हवाई जहाजों में ऊपर चक्कर लगाते हैं, उन जहाजों में डाक तथा सैनिक आते-जाते हैं। नीचे खड़े हुए लोग ऊपर उड़ते हुए जहाजों को देखते हैं और मन मार कर रह जाते हैं—कि वे हवाई जहाज़ में नहीं बैठ सकते हैं।

गंगा पर एक रेल का पुल बना हुआ है, परन्तु अपने राम को उस पर अच्छा नहीं लगता है। अपना मन तो वहाँ रमता है जहाँ एक कुआ बना हुआ है। लोग वहाँ से उठना चाहते हैं, परन्तु नींद आने लगती है और विवश होकर वहीं बैठ जाते हैं।

पण्डों के अपने-अपने घाट (घाट पर बैठने के स्थान) हैं और वे अत्यन्त सुन्दर हैं, वहाँ घास के ओहे अथवा छप्पर ठाठ के साथ पड़े हुए हैं। वहाँ गंगा तट पर पंडों के पास यात्री जाते हैं और श्राद्ध करते हैं। वे अपने मन में कहते कि गंगा माता ने न मालूम कितने पापियों का उद्धार कर दिया? हमको भी अवश्य तार देंगी?

इनमें से कुछ तो साधु हैं और कुछ ढोंगी घरों को त्याग कर चले आए हैं। इनमें से कुछेक ने लाल रंग की पुस्तकें भी पढ़ी हैं। कुछ की आँखों में तेज है, और कुछ की आँखों में निराशा है। आओ शोभा की धाम, गंगा के किनारे हम लोग भी चलें।

अलंकार – (१) पदमैत्री—रेती की खेती, झारे-बहारे। (२) छेकानुप्रास—पंगडंडी पकड़ें। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—सुघर-सुघर।

विशेष—१. गंगा के किनारे का वर्णन सर्वथा यथार्थ है। यह शैली एकदम ऋजु सरल है।

२. नीचे के लोग मारे—इसमें कवि की कुण्ठा की अभिव्यक्ति है। कवि ईमानदारी के साथ स्वीकार करता है कि हवाई जहाजों को देखकर उसके मन में भी आता है कि वह भी हवाई जहाज में बैठ कर उड़ सके, परन्तु अपनी स्थिति को अनुकूल न पाकर मन मार कर रह जाता है।

३. पंडों········तारे—इस छंद में धार्मिक बाह्याचार के प्रति निरालाजी का व्यंग्य स्पष्ट है। वे ज़िंदगी भर ब्राह्मणवाद का विरोध करते रहे और इस प्रकार हिन्दू धर्म के व्यवहार-पक्ष को देख कर कुढ़ते रहे थे।

४. खारुआ का शब्दार्थ है गहरे लाल रंग में रंगा हुआ कपड़ा! धर्म-पुस्तकें प्रायः लाल रंग के कपड़े में लपेट कर सुरक्षित रखी जाती हैं। इस प्रकार खारुए की पोथियों का लक्ष्यार्थ हुआ धार्मिक अथवा धर्म विषयक पुस्तकें। काज़ियों के न्याय सम्बन्धी कहानियों में प्रायः इस प्रकार के वाक्य पढ़ने को मिल सकते हैं—'लाल किताब में लिक्खा यूं, काज़ी कहता ज्यूँ की त्यूँ'-आदि।

(६१) बाहर मैं कर दिया गया हूँ

बाहर मैं ···· ···· कर दिया गया हूँ।

शब्दार्थ—सख्त=कड़ा। नर्म=मुलायम, कोमल। साज़=सजावट की सामग्री, गाने के साथ बजाए जाने वाले बाजे-तबला, सारंगी आदि। सविता=सूर्य। अनश्वर=जो कभी नष्ट न हो। सस्वर=बोलता हुआ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला के द्वितीय चरण के कविता—संग्रह **बेला** में संकलित कविता **बाहर मैं कर दिया गया हूँ**—से ली गई हैं। इसमें कवि ने अपने तत्त्व-चिन्तन की अभिव्यक्ति की है।

भावार्थ—परिस्थितियों ने मुझको बहिर्मुखी बना दिया है अर्थात् मैं अपने

भावों को प्रकट करने वाला बन गया हूँ, परन्तु फिर भी मेरे मन में अनेक विचार भरे हुए हैं।

मेरे ऊपर बर्फ़ गलती है अर्थात् मैं बाहर से उदासीन दिखाई देता हूँ, परन्तु मेरे भीतर भावनाओं का स्रोत बहता है। मेरी स्थिति उस नदी की भाँति है जो बर्फ़ के नीचे बहती रहती है। वृक्ष का तना कठोर होता है, परन्तु उस पर उगने वाली कलियाँ कोमल होती हैं। यही स्थिति मेरी है मेरा शरीर कठोर है परन्तु उसमें उत्पन्न होने वाली भावनाएँ सर्वथा कोमल हैं। मेरा भी निर्माण इसी प्रकार किया गया है अर्थात् मुझे ऊपर से कठोर तथा भीतर से कलि-कोमल बना दिया गया है। आँखों पर लज्जा का पानी है। जीवन का साज़ विभिन्न प्रकार के गीत उत्पन्न करता रहता है। सूर्य की किरणों के बहाने से ही मेरे सामने यह भेद खुल सका कि मुझे जीवन का सहस्र वर-दान प्राप्त हुआ है। मैंने अपने भीतर और भीतर जब से एक ही तत्त्व का दर्शन किया है, तब से मैं अपने आपको अमर समझने लगा हूँ। मैं यह बात पुकार कर कह सकता हूँ कि यह शरीर अज्ञान-जन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र है। मुझे भी इसी प्रकार का शरीर रूपी घर प्रदान किया गया है। ऐसे ही घर-संसार में मैं बहिर्मुखी हो गया हूँ।

अलंकार—(१) विरोधाभास—बाहर·······भर दिया गया हूँ। ऊपर वह बर्फ़·······चली है। (२) विषम—सख्त तने·······कली है। (३) उदाहरण—इसी तरह·······गया हूँ। (४) पुनरुक्तिप्रकाश—अलग-अलग।

विशेष—१. ऊपर वर्ष·······है—इस कथन में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण द्रष्टव्य है। बर्फ पानी की अपेक्षा हल्की होती है। वह ऊपर आ जाती है तथा उसके नीचे पानी बना रहता है।

२. सविता के किरण-ब्याज का—कवीन्द्र रवीन्द्र एक दिन अपने मकान की छत पर सूर्योदय के समय खड़े थे। सूर्य की किरणों को समस्त पदार्थों पर समान रूप से फैलते देखकर ही उनके मन में ज्ञान का प्रकाश हुआ था। निराला जी पर कवीन्द्र रवीन्द्र के चिन्तन का व्यापक प्रभाव था। '**सविता के किरण-ब्याज**' द्वारा वह उक्त ज्ञानोदय की प्रक्रिया के प्रति संकेत करते हैं।

३. **माया का साधन**—साधु-संन्यासी सदा से इस शरीर को विषय-भोग का साधन बताकर उसकी उपेक्षा करते आए हैं। निराला जी ने भी इसी स्वर में अपना स्वर मिलाया है।

४. इस कविता में निराला जी ने सर्वत्र एक ही तत्त्व की व्याप्ति की परिकल्पना प्रस्तुत की है।

(६२) कुछ न हुआ, न हो

कुछ न हुआ .... कथा यदि कहो।

शब्दार्थ—श्री = शोभा, वैभव। तिमिर = अंधेरा। गगन-भास = आकाश का आभास। गही = पकड़ी। विपुल = बहुत अधिक।

संदर्भ—यह लघु कविता **कुछ न हुआ, न हो** कवि निराला के द्वितीय चरण के कविता-संग्रह **अनामिका** से संकलित है। कवि अपने प्रिय को सम्बोधित करता है और अपनी साधना के प्रति दृढ़ आस्था व्यक्त करता है।

भावार्थ—मुझे जीवन में यदि कुछ भी सफलता प्राप्त न हो सकी, तो भले ही न हो—मुझे इसकी चिंता नहीं। परन्तु यदि केवल तुम मेरे पास हो, तो मैं समझूँगा कि मुझे संसार के समस्त सुख और ऐश्वर्य प्राप्त हो गए हैं।

अगर मेरे भाग्याकाश पर छाए हुए दुःख-दैन्य के बादल नहीं नष्ट हो सके, मेरे भाग्य-चन्द्र का उदय नहीं हो सका, निराशा रूपी गहरी रात के कारण यदि मुझे आशा रूपी आकाश की उज्जवलता का तनिक भी दर्शन नहीं हुआ, तो न हो, मुझे इसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं है। फिर भी यदि तुम मेरा हाथ पकड़ लो, तो जीवन के इस कठोर पथ पर चलते हुए मेरे होठों पर सदैव मुसकान रहेगी।

यदि मैंने बहुत सा साहित्य, रस आदि विषयक काव्य शास्त्र नहीं पढ़ा और इस कारण लोगों ने मुझे मूर्ख कहा, तो वे बेशक ऐसा कहें। यदि मेरी कविता के क्षितिज में विस्तार न हो सका तथा मेरे ज्ञान की सीमाएँ जहाँ की तहाँ बनी रहीं, तो बेशक रहें। परन्तु अगर तुम किसी प्रकार की गहन-गम्भीर बात अपने मुख से कहोगे, तो उसको समझ पाने की सामर्थ्य मुझमें विद्यमान है।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति—सम्पूर्ण कविता।

विशेष—१. कवि ने अपनी साधना, अपने ज्ञान-ध्यान एवं अपने आराध्य के प्रति अपनी आस्था की अभिव्यक्ति सबल शैली में की है।

२. समाज की प्रशंसा पर कवि की दृष्टि है। यह उसकी कुण्ठा, उसकी हीनत्व भावना का परिचायक है। अपने आपको युग प्रवर्त्तक कहने वाले निराला जी सम्भवतः यह स्वीकार करने लगे थे कि उनके आलोचकों का पक्ष

अपेक्षाकृत अधिक प्रबल था। भगवान का सहारा तो प्रायः 'हारे का हरिनाम' ही माना जाता है।

(६३) मरण-दृश्य

(क) कहा जो न, कहो .... जलधि-जीवन को।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला के दूसरे चरण के कविता-संग्रह **अनामिका** में संकलित कविता मरण-दृश्य से ली गई हैं। इसमें कवि अलौकिक प्रिय के प्रति अपनी रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है।

भावार्थ—हे प्राण, मैंने जो कुछ भी कहा और किया है, उसकी चर्चा तुम मत करो। परन्तु आप मुझे नित्य प्रति प्रेरणाप्रद गीत रच-रच कर देते रहो, अर्थात् मुझे नित्य नवीन गीतों को लिखने की प्रेरणा प्रदान करते रहे।

इस सीमाहीन संसार में तुम मुझे व्यथाओं से दीन बना कर बाँधते जा रहे हो। तुम मुझे ऐसा कहती हुई प्रतीत होती हो कि विविध प्रकार के दुःख रूपी खज़ाना लाकर मैंने तुम्हारे सामने रख दिया है। इस प्रकार तुमने मुक्त उड़ान भरने वाले इस पक्षी के पंख बदल कर उसको पानी की मछली बना दिया है। आपने मेरी आकाशचारी मुक्त दशा का हरण कर लिया और जीवन-सागर में सीमित कर दिया।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—रच-रच, कर-कर। (२) पर्यायोक्ति—वे पंख। (३) रूपक—दुःख की विधि निधि, जलधि-जीवन।

विशेष—१. लक्षणा—विहग, मीन।

२. विहग के पंख........मीन=पंख पक्षियों के भी होते हैं तथा मछलियों के भी होते हैं। पक्षी के पंख उसे आकाश में उड़ा ले जाते हैं जबकि मछली के पंख केवल पानी के भीतर ही चक्कर लगवाते रहते हैं। उन पंखों को इन पंखों में बदलने का अभिप्राय स्पष्ट है। मुक्त गगन बिहारी को जल की सीमाओं में बाँध दिया।

३. मुक्त अम्बर गया........जीवन को—इसमें लक्षणा का चमत्कार द्रष्टव्य है। स्वतन्त्र परमात्म रूप के स्थान पर परतन्त्र जीव स्वरूप प्रदान कर दिया।

४. ससीम होते ही जीव तत्व दुःख के बन्धनों में पड़ जाता है।

(ख) सकल साभिप्राय .... न डरो।

शब्दार्थ—सकल=समस्त कार्य। साभिप्राय=अभिप्रायपूर्ण, सप्रयोजन।

हाय = परेशानी, दु:ख। गरल = विष। घन = बहुत अधिक घना। निरूपाय = विवश होकर।

सन्दर्भ—पूर्व छंद (क) के समान।

भावार्थ—तुमने जो कुछ भी कहा और किया, सब सप्रयोजन अथवा सार्थक था। परन्तु मैं उस भेद को नहीं समझ पाया। इसी कारण मुझे दु:ख उठाने पड़े। पहले तो तुमने मुझे स्नेह पूर्ण चुम्बन दिए थे, आज उसके बदले विष के प्याले देकर मानो कह रहे हो कि हे प्रिय, इन्हें चुपचाप पी जाओ, तथा मृत्यु रूप में मैं तुम्हारी मुक्ति आई हूँ, अत: तुम डरो नहीं।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—सकल साभिप्राय। (२) विरोधाभास—मुक्ति हूँ मैं मृत्यु में।

विशेष—१. समस्त सृष्टि कारण-कार्य के नियम पर आधारित है। अत: विश्वप्रपंच Cosmos है Chaos नहीं। जो ऐसा समझता है वह अपने दु:ख को अपने विकास की सीढ़ी मानता है। जो इस भेद को नहीं समझता है, वह हाय हाय करता है—कालहि कर्महि, ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ। तभी तो कहा है—

देह धरे के दण्ड हैं सब काऊ को होंइ।
ज्ञानी भुगतै समुझि कै मूरख भुगतै रोइ।

२. मुक्ति हूँ मैं—मृत्यु—मृत्यु नवजीवन का द्वार है, अत: जीवन के झंझटों से मुक्ति का साधन है।

(६४) मैं अकेला

मैं अकेला .... भेला।

शब्दार्थ—भेला = नाव। सान्ध्यबेला = अस्त होने का समय।

संदर्भ—कवि निराला जीवन के अवसान में अकेलेपन का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—मैं अकेला हूँ। मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि मेरे जीवन का अन्तिम समय निकट आता जा रहा है। मेरे सिर के आधे बाल सफेद हो गए हैं और मेरे कपोलों की चमक समाप्त हो गई है, अर्थात् गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। मेरी टाँगें भी अब जबाव देती जा रही हैं और मेरे पास आने वालों की भीड़ भी छँटने लगी है।

मैं जानता हूँ कि मुझे जीवन में जो कुछ कृतकर्म करने थे, वह मैं कर चुका

हूँ—मुझे जो कुछ करना था, मैं कर चुका हूँ। देखो ! यह काल मेरे ऊपर हँस रहा है, अर्थात् मुझे ले जाने को उत्सुक है। मेरे पास इस समय इससे बचने का कोई सहारा (नाव) नहीं है।

विशेष—१. निराशा जीवन का अवसाद व्यक्त है।

२. शैली प्रतीकात्मक है।

(६५) स्नेह-निर्झर बह गया है

(क) स्नेह-निर्झर .... दह गया है।

शब्दार्थ—पिक = कोयल। निर्झर = झरना। शिखी = मोर। दह गया है = जल गया है।

संदर्भ—कवि निराला अपने जीवन की निराशा की अभिव्यक्ति करते हैं।

भावार्थ—मेरे जीवन का प्रेम रूपी झरना दह चुका है, अर्थात् मेरे जीवन का रस समाप्त हो गया है और रेत के समान मेरा नीरस शरीर रह गया है। आम की यह सूखी डाली रूपी मेरी काया कहती है कि अब मेरे पास कोयल और मोर ने आना बन्द कर दिया है। मैं उस लिखी हुई पंक्ति के समान हूँ जिसका कोई अर्थ नहीं होता है। मेरा जीवन जल गया है।

अलंकार—(१) रूपक—स्नेह-निर्झर। (२) उपमा—रेत-ज्यों।

विशेष—१. जीवन की निराशा मुखर है। छायावादी वेदना की अभिव्यक्ति है।

२. तुलना कीजिए—

बासी जलेबी रह गई, शीरा टपक गया।

अथवा

ये रहीम दर-दर फिरें, माँग मधुकरी खाँइ।
यारो ! यारी छोड़ देहु, वे रहीम अब नाहिं॥

अथवा

दिनन के फेर सों सुमरु होत माटी को।

(ख) दिये हैं .... ढह गया है।

शब्दार्थ—प्रभा = ज्योति। ढह गया है = गिर गया है, नष्ट हो गया है।

संदर्भ—छन्द (क) के समान। आम की सूखी डाली कहती है।

भावार्थ—मैंने संसार को फूल और फल दिये हैं, मैंने अपनी ज्योति से संसार को चकाचौंधित भी किया है और मैं यह सोचती थी कि मैं सदैव इसी

प्रकार हरी-भरी बनी रहूँगी तथा मेरे जीवन में सदैव यही वैभव बना रहेगा, परन्तु ऐसा न हुआ और वभवपूर्ण जीवन नष्ट हो गया है।

अलंकार—छेकानुप्रास—फूल-फल, चकित-चल, पल्लवित-पल।

विशेष—छन्द (क) के समान।

(ग) **अब नाहीं .... कह गया है।**

शब्दार्थ—पुलिन=किनारा। निरुपमा=अद्वितीय (बेजोड़) सुन्दरी। अमा=अँधेरी रात। अलक्षित=उपेक्षित।

संदर्भ—छन्द (ख) के समान।

भावार्थ—अब मेरे पास किनारे पर बिछे हुऐ काले पत्तों पर बैठने के लिये वह अत्यन्त सुन्दरी बाला भी नहीं आती है। अब तो मेरे जीवन में केवल अँधेरी रात का गहरा अंधकार ही शेष रह गया है। कवि स्पष्ट कहता है कि अब मैं सर्वथा उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

विशेष—लाक्षणिक शैली तथा शृंगार-भावना, छायावादी कविता की ये दो विशेपताएँ द्रष्टव्य हैं। काम और यश (लोकेष्ठा) की कुण्ठाएँ निराला जी को सम्भवत: आजीवन कचोटती रही थीं।

द्रष्टव्य—कविता का रचनाकाल सन् १९४२ है।

(६६) गहन है यह अन्ध कारा

(क) **गहन है .... लुण्ठन तारा।**

शब्दार्थ—कारा=जेल। अवगुण्ठन=परदा। लुण्ठता=नाश।

सन्दर्भ—कवि निराला कहते हैं कि यह समस्त संसार स्वार्थमय है।

भावार्थ—यह संसार अन्धकार से भरी हुई जेल के समान है। स्वार्थ के पर्दों के कारण ही हमारा नाश हुआ है।

जीवन को अज्ञान की दीवार घेर कर खड़ी है। लोग सीधे मुँह बात नहीं करते हैं। इस अन्धकारमय जीवन में प्रकाश का नाम नहीं है—न सूर्य है, न चन्द्रमा है और न तारागण हैं।

अलंकार—रूपक—जड़ की दीवार।

विशेष—१. कवि के व्यक्तिगत जीवन की निराशा मुखर है।

२. छायावादी वैयक्तिक निराशा की अभिव्यक्ति है।

(ख) **कल्पना .... हारा।**

शब्दार्थ—रुद्र=भयानक।

संदर्भ—छन्द (क) के समान।

भावार्थ—सब लोग कोरी कल्पनाओं में ही विचरण करते हैं, अर्थात् कल्पना के समुद्र में ही डूबे रहते हैं। यह कल्पना-सागर शरीर को चारों ओर से घेरे हुए भयंकर गर्जन करता है। ऐसी स्थिति में मेरी समझ में कुछ नहीं आता है और न मुझको इस अन्धकार का कहीं अन्त ही दिखाई देता है।

हे प्रिये ! मुझको वह शरीरिक चेतना प्रदान करो जिससे मुझे अपने उस घर की याद बनी रहे जिससे मैं बिछुड़ गया हूँ। मैं उस घर को खोजता फिरता हूँ, परन्तु मैं उसका पता नहीं पा सका हूँ। मैं अब उसको न खोज पा सकने के कारण निराश हो गया हूँ।

विशेष—१. छन्द (क) के समान।

२. घर से तात्पर्य आत्मा का निवास-स्थान, अर्थात् परमात्मा है। विगल चेतना ही तो सांसारिकता की अनुभूति करती है।

३. कवि की दार्शनिक चिन्तन-पद्धति मुखर है

द्रष्टव्य—कविता का रचनाकाल सन् १९४२ है।

(६७) मरण को जिसने वरा है

(क) मरण को .... **हरा है।**

शब्दार्थ—मरण = मृत्यु। वरा है = अपनाया है। परा = लौकिक। अंक = गोद। यशोधरा = यश को धारण करने वाली—पृथ्वी। सुकृत = पुण्य। कल्प = कल्पवृक्ष। निस्तन्द्र = चेतन।

सन्दर्भ—कवि निराला मृत्यु में कल्याण निहित देखते हैं।

भावार्थ—जो मृत्यु को अपनाने को तैयार है, उसी का जीवन भरा-पूरा, अर्थात् सार्थक कहा जा सकता है, वही लौकिक उपलब्धियों का अधिकारी है तथा सत्य एवं यश को धारण करने वाली पृथ्वी भी उसी के अधिकार में हो सकती है। विश्वरूपी उपवन में पुण्य-जल से सींचा हुआ कल्पवृक्ष भी हरा-भरा रहता है।

अलंकार—(१) विरोधाभास—मरण....भरा है। (२) रूपक—सुकृत के जल।

विशेष—कवि का कहना है कि जो मृत्यु से नहीं डरता है, उसी को जीवन का आनन्द प्राप्त होता है अन्यथा व्यक्ति की सारी जिन्दगी मृत्यु के भय में ही व्यतीत होती है।

(ख) गिरि पताक .... करा है ।

शब्दार्थ—उपत्यक = उपवन, हरी-भरी घाटी । तन्वी = कोमलांगी । अमर्ष = क्रोध ।

सन्दर्भ—छन्द (क) के समान ।

भावार्थ—पहाड़ों पर तथा उपवनों में हरी घास से सजी हुई जिस कोमलांगी नारी के दर्शन होते हैं, वह मृत्यु से न डरने वाले व्यक्ति को पुष्पों से भर देने के लिए प्रस्तुत खड़ी अप्सरा है । जब मैं संसार में प्रेम से वंचित हुआ, और मेरे जीवन में क्रोध के अवसर आए, तब मुझे अपने स्पर्श से जो सांत्वना देती है वह किरण उसी रहस्यमयी सत्ता का एक कोमल हाथ है ।

विशेष—१. प्रकृति में प्रेयसी का दर्शन छायावाद की प्रमुख विशेषता है ।

२. रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति है ।

द्रष्टव्य—कविता का रचना-काल सन् १९४२ है ।

(६८) दलित जन पर करो करुणा

(क) दलित जन .... अरुणा ।

शब्दार्थ—दलित = सताए हुए । अरुणा = रक्षक ।

सन्दर्भ—कवि निराला भगवान से करुणा की याचना करते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभु ! हम सताए हुए दीन व्यक्तियों पर करुणा कीजिए । हमारी याचना है कि आपकी रक्षिणी शक्ति हमारे ऊपर उतर आए ।

विशेष—करुणा का अर्थ है—दुःख की अनुभूति और उस दुःख के निवारण का प्रयत्न । भगवान से करुणा की याचना का अर्थ है कि वह हमारे दुःख का अनुभव करें और साथ ही हमारे दुःख को दूर भी कर दें ।

(ख) हरे तन-मन .... तरुणा ।

शब्दार्थ—पावन = पवित्र । मनोभावन = मन को अच्छा लगने वाला ।

सन्दर्भ—छन्द (क) के समान ।

भावार्थ—हे भगवान ! आपकी कृपा हमारे तन मन के दोषों को दूर करके उनमें पवित्र प्रेम भरे तथा हमारे मुख मीठी और मन को अच्छी लगने वाली (प्रिय) बात कहें । मेरी सहज चितवन में आपकी पूर्ण कृपा की किरण तरंगित हो, अर्थात् मेरी वाणी में मधुरता हो तथा दृष्टि में करुणा का प्रकाश हो ।

विशेष—छन्द (क) के समान ।

(ग) देख वैभव .... भक्ति-वरुणा ।

शब्दार्थ—समुद्धत=चंचल । वरुणा=नदी का नाम ।

संदर्भ—छन्द (क) के समान ।

भावार्थ—हे भगवान ! मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि संसार के वैभव के सामने मेरा सिर न झुके, मेरा चंचल मन सदा स्थिर रहे और मेरे जीवन में सदैव तुम्हारी भक्ति की सरिता बहती रहे ।

अलंकार—रूपक—भक्ति वरुणा ।

विशेष—(१) छन्द (क) के समान । (२) तुलना कीजिए—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त-सुभाव गहौंगो ।
× × ×
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
× × ×
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो ।

—गोस्वामी तुलसीदास

(६९) मुसीबत में कटे हैं दिन

मुसीबत में कटे हैं दिन .... स्नेह की मातें ।

शब्दार्थ—घातें=चोट, प्रहार । हस्ती=जीवन । पस्त=पराजित, हारा हुआ । हरकत=गति, चेष्टा । माजरा=मामला । बली=शक्तिशाली । बलि=बलिदान की हुई वस्तु, बलि पशु, चढ़ावा । ग़फ़लत=असावधानी । गेह=घर । मातें=मातखाना, पराजय, यह शब्द प्रायः शतरंज में प्रयुक्त किया जाता है, जब बादशाह मारा जाता है, तो मात कही जाती है ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की द्वितीय चरण की कविता **मुसीबत में कटे हैं दिन** से उद्धृत हैं । यह कविता उनके कविता-संग्रह **बेला** में संकलित है । इस कविता में कवि अपने जीवन के सुख-दुख की एक झांकी प्रस्तुत करता है ।

भावार्थ—मेरे जीवन के दिन और रात मुसीबत में कटे हैं । मेरे जीवन के चाँद-सूरज पर राहु के प्रहार हमेशा होते रहे हैं, अर्थात् मेरे भाग्य पर दुःखों का ग्रहण सदैव लगा रहा है । जो लोग अपने जीवन में पराजय का

अनुभव करते हैं अथवा जो जीवन से निराश हैं, वे ही समझते हैं कि निरन्तर चेष्टाओं से पूर्ण जीवन क्या होता है। जीवन में कठोरता ने हमेशा कोमलता को दवाया है। जीवन की यही वास्तविकता है। जिस व्यक्ति की पाचन शक्ति अच्छी होती है वह सदैव देवता के चढ़ावे को खाने के लिए झपटता है, उसी प्रकार बलवान लोगों ने निर्बलों को सदैव ही बलि पशु बनाकर खाया है।

संसार के सब लोग बेहोशी (अज्ञान) की दशा को ही जागृति की दशा समझकर बेखबर बने रहते हैं। परन्तु इस संसार में पारिवारिक सुख एवं प्यार की पराजय कहाँ रखी है? संसार में इन दोनों वस्तुओं का पाना अत्यन्त कठिन है।

अलंकार—१. विरोधाभास—जगी जो·······ग़फलत है।

२. वक्रोक्ति—कहाँ हैं·······पाते।

विशेष—१. राहु की घातें—कहते हैं कि जब राहु सूर्य एवं चन्द्रमा को ग्रसता है, तब सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण होते हैं। चाँद-सूरज क्रमशः रात-दिन के स्वामी हैं। इस प्रकार चाँद-सूरज का लक्ष्यार्थ हुआ जीवन। चाँद-सूरज को राहु की घातें लगना का अभिप्राय स्पष्ट है। जीवन सदैव संकटग्रस्त ही बना रहा।

२. रूप रचना की दृष्टि से यह कविता 'गज़ल' की कोटि में आती है।

३. कवि निराला अपनी असफलताओं को स्पष्टतः स्वीकार करते हैं।

(७०) स्वर के सुमेरु हे झर-झर कर

स्वर के सुमेरु हे .... हो जीवन वर।

शब्दार्थ—सुमेरु=पर्वत। शीकर=कण, बूँदें। मंजरित होना=बौर आना। तरु-मरमर=वृक्षों का शब्द। शतशत=सैकड़ों। अविरत=निरन्तर, लगातार। सुकाल=सुन्दर समय। कम्पा=बाँस की तीलियों में लासा लगाकर बनाया हुआ एक तरह का फंदा जिससे बहेलिए चिड़ियों को फँसाते हैं।

सन्दर्भ—ये पंक्तियाँ कविवर निराला के कविता-काल के द्वितीय चरण की कविता **स्वर के सुमेरु हे झर झर कर** से उद्धृत हैं। यह कविता उनके कविता संग्रह **बेला** से संकलित है। कवि कहता है कि प्रकृति का मधुर संगीत जीवन में संचरित हो।

भावार्थ—इस पर्वत से झरने वाले झरने झर-झर की मधुर ध्वनि कर रहे हैं और उनकी फुहार के साथ यह ध्वनि कानों तक आती है। लताओं के

समूह पत्तों के रूप में अपने हाथ फैलाकर स्वागत करते थे। लता पर लगे हुए फूलों के गुच्छे में बौर आ गया। इस प्रकार वन का जीवन में आनन्द फैल गया। प्रसन्न वृक्षों के मरमर की ध्वनि बढ़ती ही जाती है।

चम्पा ने खिलकर अपने रूप-रंग के माध्यम से मानों मुझसे कहा कि चम्पा सरोवर खिले हुए कमलों से भर गया है। उसके किनारे पर सुनहरी कम्पा रूपी सुन्दरी रंग-बिरंगी गगरी लिए खड़ी है। जिस नदी में पक्षियों के सुन्दर सरल सैकड़ों गीत बहते हैं अर्थात् जिस नदी के किनारे पर सैकड़ों पक्षी अपनी सुन्दर चहचहाहट को नदी की मधुर ध्वनि में मिला देते हैं, उसी के स्वर से भरकर हमारे जीवन के समस्त वरदान झंकृत हो जाएँ, अर्थात् प्रकृति का यह मुखर सौन्दर्य हमारे जीवन में भी भर जाए।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—झर झर कर। डाल-डाल (२) रूपक—शब्दों के सीकर। (३) मानवीकरण—चम्पा। (४) अनुप्रास—कामिनी कनक-कम्पा।

विशेष—१. प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में है।

२. जीवन के लिए मंगल-कामना की अभिव्यक्ति है।

३. निराला जी के अभावग्रस्त जीवन की झलक है।

४. **कामिनी कनक कम्पा**—कंचन कर्ण की कामिनी के प्रति कवि आसक्त हो गया है। तट पर खड़ी हुई कामिनी उन्हें अपने प्रति उसी प्रकार खींच रही है जिस प्रकार कम्पा चिड़ियों को फँसा लेती है। काम-कुंठा की अभिव्यक्ति स्पष्ट है। द्रष्टव्य है कि निराला जी उद्दीपक वातावरण के मध्य किसी प्रेयसी की कल्पना कर ही लेते हैं।

(७१) शुभ्र आनन्द आकाश पर

शब्दार्थ—शुभ्र=उज्ज्वल। शतदल=सैकड़ों पंखुड़ियों वाले। अमल=निर्मल। उपवीत=जनेऊ। सुरधुनी=गंगा। मालिका=माला। समीरण=वायु। हाट=बाज़ार। समधीत=अच्छी तरह पढ़ा हुआ।

संदर्भ—**"शुभ्र आनंद आकाश पर"** शीर्षक कविता निरालाजी के कविता काल के द्वितीय चरण की रचना है। यह उनके कविता-संग्रह **बेला** से **राग-विराग** में संकलित है। इस कविता में कवि ने अपनी आनन्दानुभूति की अभिव्यक्ति की है।

भावार्थ—आनन्ददायी उज्ज्वल प्रकाश आकाश पर छा गया। सूर्य ने

अपनी किरणों के माध्यम से मधुर गीत गाया। निर्मल रंग वाले कमलों की सैकड़ों पँखुड़ियाँ खिल गईं। वे कलरव करते हुए पक्षियों के कण्ठ के यज्ञोपवीत की भाँति सुशोभित हैं। सूर्य का प्रकाश होने पर जीव-जन्तु जंगल में छिप जाते हैं। इस तथ्य को लक्ष्य करके कवि कहता है कि सूर्य के किरण रूपी चरणों की आहट पाकर वन के जन्तु सशंकित हो गए और वे डर कर जंगल में जा छिपे। वातावरण ऐसा निर्मल एवं पवित्र हो गया है जिस प्रकार गंगा के किनारे की बालू पवित्र एवं उज्ज्वल होती है। सबका पालन करने वाली सूर्य की किरणों की पंक्तियाँ चारों ओर फैल गईं तथा अच्छी तरह पढ़ी हुई हवा चलने लगी। जब भी ग्रीष्म या शीत का घुटन एवं सिकुड़न भरा वातावरण खुलता है, तभी हाट-बाट सभी जगह लोगों के कण्ठ एक आनन्द-भाव की अभिव्यक्ति करने लगते हैं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—रवि, विहग, जन्तु, समीकरण। (२) पदमैत्री—गत दल कमल, अमल। मालिका तनु मालिका, पाठ हाट बाट। (३) छेकानुप्रास—श्वेत शतदल। (४) चपलातिशयोक्ति—चरण········छिप गये। (५) काव्य लिंग—चरण ध्वनि········छिप गये।

विशेष—१. सूर्योदय काल के आनन्दमय प्राकृतिक वातावरण का चित्रण द्रष्टव्य है।

२. संगीतात्मकता के कारण वर्णन मनोहारी बन गया है।

३. कवि कहना चाहता है कि प्रकृति का उन्मुक्त एवं निर्मल वातावरण वास्तविक आनन्द की सृष्टि करने वाला होता है।

४. शुभ्र आनंद—में विशेषण विपर्यय का चमत्कार देखते ही बनता है।

५. यह कविता छायावादी शैली के प्रकृति-वर्णन का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

(७२) बीन की झंकार

(क) बीन की झंकार ···· ···· उन्मद पधारे।

शब्दार्थ—पंकज=कमल। सरोवर=तालाब। पंकज=कीचड़। विमल=निर्मल। विश्राव=बहाव, रिसना। दिगन्त=दिशा। उन्मद=मस्त।

संदर्भ—ये कविता कविवर निराला के कविता काल के द्वितीय चरण की कविता **बीन की झंकार** से ली गई है। यह कविता कवि के कविता-संग्रह **बेला**

में संकलित है। कवि शरद् ऋतु के उन्मादकारी निर्मल प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करता है।

भावार्थ—न मालूम क्यों और किस प्रकार वीणा की झंकार के समान मधुर ध्वनि हमारे मन में आकर बस गई है ? ऐसा प्रतीत होता है कि सारे संसार की आँखें प्रकाश से धुल गई हैं। आकाश में सूर्य, चन्द्रमा और तारे भी खुल कर प्रकाशित हो रहे हैं।

तालाबों में कमल खिल गए हैं। ये कमल सरोवर के आनन्दातिरेक को प्रकट करते हैं। ऐसा लगता है कि ये कमल कीचड़ में उठकर एक निर्मल बहाव बनकर चारों ओर छा गये हैं। इन कमलों की सुगंध का रस-पान करके समस्त भ्रमर दिशाओं को गुंजायमान कर रहे हैं।

अलंकार—(१) रूपक—सरोवर के हृदय। गन्ध स्वर। (२) उपमा—भाव जैसे। (३) मानवीकरण—भ्रमर।

विशेष—प्रकृति का सहज-सौन्दर्य चित्रित है तथा स्वर-संगीत की सुन्दर व्यंजना है।

(ख) **पवन के उर में .... यथा झारे।**

शब्दार्थ—उर=हृदय। प्रणय=प्रेम। सुप्ति=नींद। निर्मम=निर्दय, कठोर। प्रकृतकाया=भौतिक शरीर। दिग्वधू=दिशा रूपी वधू। दन्ति=हाथी। मलिनता मद=मद की मैल। झारे=झाड़ दी।

संदर्भ—उपर्युक्त छन्द (क) के समान।

भावार्थ—मन्द-मन्द बहते हुए पवन में जैसे प्रेम का कम्पन भर उठा है। वह उस जगत को जागने का संदेश दे रहा है जो इस प्राकृतिक वातावरण के प्रति निर्मम बनकर (इसके प्रभाव से अप्रवाहित रह कर) सो रहा है। इस वातावरण में सब लोगों की जीत हार में तथा हार जीत में परिवर्तित हो गई है, अर्थात् सब लोग प्रेम में अपनी सुधि-बुधि भूल रहे हैं।

आज चारों ओर विज्ञान के आविष्कारों का प्रभाव छाया हुआ है। विज्ञान के आविष्कारों की चकाचौंध में हम प्रकृति के वास्तविक प्रकाश और आनंद से दूर हट गए हैं। इसी कारण आज प्रियतम के हाथों से प्रिया की स्वाभाविक काया छूट गई है अथवा विज्ञान के प्रभाव के कारण हमारे प्रणय-बन्धन शिथिल पड़ गए हैं।

प्रकृति के इस शरद्कालीन विकास एवं सौन्दर्य को देखकर प्रतीत होता

है कि दिशा रूपी वधुओं ने विज्ञान रूपी हाथी के मद की मलिनता को झाड़ कर समस्त पदार्थों को सहज विकास के आलोक से भर दिया है।

अलंकार—(१) मानवीकरण—पवन । (२) विरोधाभास—हार कर जीते········हारे । (३) पदमैत्री—माया, छाया । (४) रूपक—दिग्वधू ।

विशेष—१. शरद ने वातावरण को उज्ज्वल एवं संगीतमय बना दिया है।

"समय आइ सुन्दर शरद काहि न करत अनंद।" —**बिहारी**

२. विज्ञान के इस तर्कशील एवं यथार्थवादी युग में भी प्रकृति की रूप माधुरी अनिंद्य एवं अक्षुण्ण है।

३. वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण जिस नागरिक सभ्यता का विकास हुआ है, उसके प्रति कवि का आक्रोश स्पष्ट है। विज्ञान ने सचमुच हमें प्रकृति, प्रकृत जीवन एवं प्रकृत भावों से बहुत दूर कर दिया है। विज्ञान स्त्री-पुरुष को चेतना स्वरूप न देख कर हाड़ मांस का पुतला भर समझता है।

४. अंतिम पंक्ति में विज्ञान के कृत्रिम जीवन पर प्राकृतिक भावुक जीवन का विजय घोष करके कवि ने मानव को प्रकृत जीवन की ओर जाने का संदेश दिया है।

(७३) वेश रूखे, अधर सूखे

वेश रूखे ···· ···· **गोलों से बिछाए।**

शब्दार्थ—आलम्बन=सहारे। तिमिर=अंधकार। इह=इस। कृति=सृष्टि। तनुलुण्ठित=धरती पर लेटा हुआ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला के रचना-काल के द्वितीय चरण की कविता **वेश रूखे, अधर सूखे** से उद्धृत हैं। उक्त कविता कवि के कविता-संग्रह **बेला** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। इस कविता में कवि ने तत्कालीन पराधीन भारत की दशा का वर्णन किया है।

भावार्थ—भारतवासियों की वेश-भूषा रूखी है अथवा हमारे शरीर पर स्निग्धता का नाम नहीं है, होठ भूख प्यास के कारण सूख गए हैं तथा पेट भूखे हैं। हमारा जीवन साकारहीनता बन गया है। हमारी नज़रों में भी जैसे दीनता के भाव साकार हो उठे हैं। हमारे जीवन के सभी सहारे क्षीण अथवा नष्ट प्राय बना दिए गए हैं।

हे भारतवासियो ! विदेशी शासन रूपी अन्धकार ने जब चारों ओर से घेर कर तुम्हारी स्वतन्त्रता एवं स्वतन्त्र चिन्तन शक्ति को नष्ट कर दिया, तब

तुमने लौकिक दृष्टि से अपनी पराजय स्वीकार करके पारलौकिक शक्ति की ओर देखा—उसका सहारा ढूँढ़ा। परिणाम स्वरूप तुम्हारे भीतर एक जागृति आई। राजाओं के मुकुट भूमि पर लोट गए अर्थात् साम्राज्यशाही ध्वस्त हो गई और भारत का जन-जीवन सुहावना बन गया।

पानी के स्थान पर खून के द्वारा प्यास बुझाई जाने लगी, अर्थात् व्यर्थ ही नर संहार किया गया (इसे देख कर आँखों में खून उतर आया अर्थात् अत्यधिक क्रोध आगया। इस पर शत्रुओं ने शस्त्रों का प्रयोग किया तथा गोलों की बौछार करके उन्होंने मैदानों को जनता के रुण्डों-मुण्डों से भर दिया। इन्हीं सब कारणों से हमारा जीवन दीन-हीन बन कर रह गया।

अलंकार—(१) पदमैत्री—रूखे, सूखे, भूखे, हीन दीन, जीवन चितवन। (२) रूपकातिशयोक्ति—तिमिर, प्रकाश।

विशेष—१. २०वीं शताब्दी के द्वितीय एवं तृतीय दशकों के भारत की दुर्दशा का वर्णन है। विदेशी शासन के अत्याचारों का भी दिग्दर्शन है। जलियांवाला बाग के हत्या-काण्ड के प्रति संकेत है।

२. बिम्ब-विधान दृष्टव्य है।

३. द्वार खोलना, मुकुट लुण्ठित होना, रक्त से प्यास बुझाना, आँख से खून आना, लोहा बजाना—मुहावरों के प्रयोग के कारण शैली में लाक्षणिक सजीवता आ गई है।

४. पद-विन्यास की संगीतात्मकता भी दृष्टव्य है।

(७४) किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं

किनारा वह हमसे .... **पिये जा रहे हैं।**

शब्दार्थ—किनारा करना=दूर हटना। दिखाने को=केवल कहने भर को। रफ्तार=चाल, गतिविधि। लहू=खून।

संदर्भ—यह "किनारा वह हम से किए जा रहे हैं" शीर्षक कविता कविवर निराला के द्वितीय चरण के कविता-संग्रह **बेला** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। इसमें कवि जीवन के अभावों का सजीव वर्णन करता है।

भावार्थ—दुनियां को दिखाने के लिए तो वह हमें दर्शन दे रहा है, परन्तु निष्ठुर व्यवहार के द्वारा वह हमसे हमेशा के लिए दूर होना चाहता है।

उसकी निष्ठुरता तो देखो। जिस प्रेम की डोरी से सुहागिन की आशा और उसके सौभाग्य के सूचक मोती जुड़े हुए थे, वह उसी प्रेम-सूत्र को तोड़ डालने को तुला हुआ है।

जब हमने अपने मन पर लगी हुई चोट के बारे में उनसे बात करना चाही, तो वह कहने लगे—"हम तो तुम्हारी चोट को निराशा के डोरों से सी रहे हैं। जमाने की चाल में यह कैसा तूफान आगया है, दुनियाँ के व्यवहार में यह कैसी उथल-पुथल हो गई कि लोग मर-मर कर जी रहे हैं तथा जी-जीकर मर रहे हैं," यानी किसी को भी किसी भी प्रकार चैन नहीं है।

जो लोग संसार में अपने आपको विजयी और अपराजेय मानते थे उनकी वास्तविकता यह निकली कि उन्होंने लाखों लोगों का खून पीकर ही अपने आपको विजयी बनाया है, अर्थात् जिन्हें हम बड़ा कहते हैं वे वस्तुतः बड़े ही शोषक एवं जालिम हैं।

विशेष—१. जीवन के अभावों एवं हीनताओं के परिप्रेक्ष्य में शोषकों के ऊपर तीखा व्यंग्य किया गया है।

२. शैली लाक्षणिक है।

३. अनेक मुहावरों के प्रयोग के कारण भाषा अत्यन्त सजीव बन गई है—किनारा करना, सूत तोड़ना, ज़माने की रफ्तार, लहू पीना।

४. निराशा के डोरे·······हैं। धीरे-धीरे निराश करके तुमको इस विषम स्थिति का अभ्यस्त बना रहे हैं। दर्द का हद से गुज़र जाना दवा हो ही जाता है। एक वक्त आएगा जब यह चोट, चोट नहीं मालूम पड़ेगी। इस कथन में विरोधाभास का चमत्कार देखते ही बनता है।

(७५) किसकी तलाश में हो

किसकी तलाश में हो ···· ···· **साँवले से।**

शब्दार्थ—सायास = प्रयत्नपूर्वक। शिशिर कण = ओस की बूंदें। काँवले = नजदीक।

सन्दर्भ—"**किसकी तलाश में हो**" शीर्षक यह कविता कविवर निराला के कविता-काल के द्वितीय चरण के कविता-संग्रह **बेला** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। इसमें कवि जीवन की वास्तविकताओं का वर्णन करता है।

भावार्थ—हे भाई! इतनी उतावली के साथ तुम किस जीवन और किस सुख को खोज रहे हो? दुनियां का तो यह नियम है कि वह तलाश करने वालों को पागल समझती है तथा प्रयत्नपूर्वक उनसे अपना पीछा छुड़ा लेती है, अर्थात् ज़रूरतमन्द की सहायता करना तो एक ओर रहा, वह उन लोगों को अपनत्व भी प्रदान नहीं करती है।

बिना प्राकृतिक खरोच के (जब तक आकाश पर बर्फ के बादल रगड़ नहीं लगाते) आकाश से ओस की बूँदें नहीं झरा करतीं । जब तक आँवले को आग पर नहीं उबाला जाता है, तब तक उससे तैल नहीं निकलता है अर्थात् दुःख सहन करके ही जीवन का सार तत्व प्राप्त किया जा सकता है ।

इस दुनियां में अनेक ऐसे व्यक्ति आए जिन्होंने मंज़िल तक पहुँच जाने के लिए—लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, कठोर रास्ते तो पार कर लिये, परन्तु अन्तिम क्षण में उनके पैर डगमगा गए, क्योंकि उन्होंने दूर से मंज़िल को जैसा देखा और समझा था, वैसा पास पहुँच कर उसको नहीं पा सके ।

जीवन में जब लाखों आँखें मेरी ओर उठने लगीं और उनके कारण मेरा दम घुटने लगा, तभी मुझे जीवन के संघर्ष का वास्तविक आनन्द प्राप्त हुआ । लगता है कि अब अंग्रेज़ों के साथ भारतवासियों की पट्टी बैठने ही वाली है अर्थात् ब्रिटिश सत्ता के साथ कांग्रेस का समझौता होने ही वाला है ।

अलंकार—वक्रोक्ति—तेल आँच—कब आँवले से ?

विशेष—१. ग़ज़ल की तर्ज पर लिखे हुए इस गीत में विचारों का बिखराव है । इसमें किसी भाव की गहनता का सर्वथा अभाव है ।

२. दुनियाँ ने·······से—संसार के सुख छाया की तरह कहे गये हैं । जैसे-जैसे हम उसको पकड़ने को आगे बढ़ते हैं, वह और आगे बढ़ कर हमसे दूर हो जाती है ।ठीक ही है—"भागती फिरती थी दुनियाँ जब तलब करते थे हम ।" जो सांसारिक सुखों में आनंद की खोज करता है, वह पागल नहीं है, तो और क्या है ?

३. **दुनियाँ ने मुँह चुराया**—जो हमसे कुछ सहायता चाहता है, हम उससे मुँह चुराते ही हैं—यह एक सर्वमान्य तथ्य है । कवि ने अपने अभावग्रस्त जीवन में इसी कठोर तथ्य का अनुभव किया था । इसी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के कारण इस कविता में इतना प्रवाह आ गया है ।

४. **जैसा दिखा था·······काँवले से**—आरम्भ में प्रतीत होता है कि लक्ष्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक हो जायगी । परन्तु हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों मार्ग की कठिनाइयों का अनुभव होता जाता है । इस पंक्ति का अर्थ एक अन्य प्रकार से भी किया जा सकता है । प्राप्ति के उपरान्त विदित होता है कि सांसारिक सुख एवं ऐश्वर्य आकाश कुसुम अथवा धुएँ के महल के समान सारहीन हैं । भोग हमारी इच्छा को तृप्त नहीं कर पाता है ।

(७६) जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ

जल्द-जल्द पैर .... काँटे से कढाओ ।

शब्दार्थ—कढ़ाओ=निकलवाओ ।

संदर्भ—"जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ" शीर्षक यह कविता कवि निराला के कविता-काल के द्वितीय चरण के कविता-संग्रह **बेला** से संकलित है । यह एक प्रगतिवादी रचना है । कवि साम्राज्यवाद का अंत करने के लिए जनता का आह्वान करता है ।

भावार्थ—हे शोषित एवं पीड़ित लोगो ! आओ और जल्दी से कदम बढ़ाकर अपना काम पूरा करने के लिए चलो । अब समय आ गया है जब हमारे प्रयत्नों के फलस्वरूप पूँजीपतियों की हवेलियाँ तुम्हारे बालकों के पढ़ने के लिए पाठशालाएँ बन जाएँगी । ये नीच कहे और समझे जाने वाले धोबी, पासी, चमार, तेली आदि ही मिलकर परतन्त्रता एवं शोषण के अंधकार को भगाएँगे और सब मिलकर एकता का पाठ पढ़ेंगे और पढ़ाएँगे और सब संगठित हो जाओ ।

जिन स्थानों पर पहले बनियेपन की आँख दिखाते हुए सेठ लोग अकड़ कर बैठे हुए थे, आज वहाँ किसानों के लिए बैंक खोलो । उनसे बार-बार धोखा खाकर तथा उनके इशारे से यथा स्थिति बैठे रह कर हम लोग बहुत दिनों तक अकड़े रहे हैं । अब आओ, क्रान्ति करो ।

अब ऐसा करो कि समस्त सुख-दुःख में हम भारतवासी समान रूप से भागीदार बन जाएँ—समस्त सम्पत्ति देश की हो, समस्त विपत्ति देश की हो। हम व्यक्तिगत सुख-दुःख को देश के सुख-दुःख के साथ मिला दें । सब लोग विदेशी वेश-भूषा त्याग कर देशी परिधान धारण करें । बात की बात यह है कि जिन लोगों ने जिस प्रकार हमारा शोषण और उत्पीड़न किया है, उसी प्रकार हम भी उनको एकदम मिटादें । अतः आओ, संगठित हो जाओ ।

विशेष—१. भाषा-शैली एकदम सरल है, बल्कि यह कहिए सर्वथा कवित्व रहित है ।

२. कवि ने साम्यवादी समाजवाद की परिकल्पना की अभिव्यक्ति की है । वह हिंसा के द्वारा पूँजीपति को मिटाना चाहता है । इस दृष्टि से यह एक प्रगतिवादी रचना ठहरती है ।

३. टाट बिछाओ—सब एक स्थान पर आ जाओ। यहाँ लक्षणा का प्रयोग दृष्टव्य है।

४. इस कविता में जन-राज्य की परिकल्पना है। इसके लिए वह जन-जन का आह्वान करता है।

५. इस कविता में हम कवि निराला को एक भविष्य-द्रष्टा के रूप में देखते हैं। हवेलियों में पाठशालाएँ खुलें तथा किसानों के लिए बैंक खुलें—निरालाजी की यह परिकल्पना आज साकार होती हुई दिखाई दे रही है।

(७७) खून की होली जो खेली

खून की होली .... होली जो खेली।

शब्दार्थ—कुसुम = फूल। किंशुक = पलाश। यह एक लाल रंग का फूल होता है। कोकनद = चकवा। फाग = होली। मंजरी = बौर। विकच हुए = खिल उठे। पाटल = गुलाब। अरधान = गंध।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला द्वारा रचित कविता **खून की होली जो खेली** से उद्धृत हैं। यह कविता द्वितीय चरण के कविता संग्रह **नये पत्ते** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है।

सन् १९४६ में होने वाले विद्यार्थी-आन्दोलन में अनेक युवकों का खून बहा था। उन्हीं विद्यार्थियों के प्रति सम्मान की अभिव्यक्ति इस कविता में की गई है।

भावार्थ—हमारे देश के युवक वास्तव में जीवट वाले व्यक्ति हैं; तभी तो उन्होंने इस प्रकार डट कर अपने खून से होली खेली है— अपने खून को बेफिक्री के साथ बहाया है। देशप्रेम के नाम पर खून से होली खेलकर, हँसते-हँसते अपना खून बहाकर उन्होंने स्वदेश और विदेश में आदर प्राप्त किया है।

इन युवकों के शरीर पर पड़ने वाले दाग लाल फूलों के समान सुशोभित हुए। लाल पलाश के समान ही लाल खून बहाकर शोभा को प्राप्त हुए। जैसे चकवा अपने प्रियतम के वियोग में प्राण त्याग कर अपने सच्चे प्रेम का परिचय देता है, उसी प्रकार हमारे इन युवकों ने अपने खून से होली खेलकर, अपने देश-प्रेम एवं त्याग का परिचय दिया है।

जिस प्रकार फागुन के महीने में लाल-लाल कोपलें चारों ओर प्रकट हो जाती हैं, उसी प्रकार अपने खून के रंग में रंग कर इन नवयुवकों के लाल

चेहरे भी चारों ओर छा गये हैं। फाल्गुन मास की बाँकी अदा इनके जीवन में मानो मुखरित हो उठी है।

अब इनकी प्रशंसा के गीतों भरी रात प्रातःकाल की सुनहरी किरण बन कर निखर उठी है। इन्होंने अपने खून की होली खेलकर देश की स्वतन्त्रता के फूल को खिलने का वरदान प्रदान किया है। आम, लीची के बौर के रूप में सुन्दर वेश धारण करके वसंत ऋतु आगई है। कटहल जैसी एक प्रकार की सुगंध इन युवकों ने विकीर्ण की है, क्योंकि इन्होंने देश के नाम पर हँस-हँस कर अपना खून बहाया है।

आज ऐसा प्रतीत होता है कि इनके व्यक्तित्व खिले हुए कचनार और अमलताश के समान विकसित हो उठे हैं। खून बहाकर भी इन युवकों के होठों पर मुसकान के गुलाब खिल रहे हैं। इस प्रकार इन युवकों का जीवन वासन्ती बहार के समान खिल उठा है। देश के नाम पर हँस-हँस कर अपने रक्त को बहाने वाले ये समस्त नवयुवक धन्य हैं।

अलंकार—(१) पदमैत्री—होली जो खेली-प्रायः सम्पूर्ण गीत। (२) उपमा—जैसे पलाश। (३) रूपक—कुसुम-वरदान।

विशेष—देश-प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति है।

(७८) झींगुर डट कर बोला

सन्दर्भ—ये पंक्तियाँ **"झींगुर डट कर बोला"** कविता से उद्धृत हैं। इस कविता के रचयिता कवि निराला हैं। यह कविता उनके द्वितीय चरण के कविता-संग्रह **नये पत्ते** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। इस कविता में कवि ने समसामयिक राजनीतिक स्थिति पर तीखा व्यंग्य किया है।

भावार्थ—टेढ़े कांग्रेसमैनों के पास गांधी जी के अनुयायी आए और वे सबको यह समझाते रहे कि गांधी जी के मुख्य सिद्धान्त क्या हैं। वे यह कहते रहे कि देश की भक्ति करने तथा अहिंसात्मक तरीकों से—बिना किसी बैर-विरोध के देश में अपना राज्य हो जायगा। यहाँ के ज़मींदार और साहूकार भी अपने ही कहलाएँगे, इससे विदेशी शासन की नींव हिल जाएगी। हिन्दू-मुसलमान सभी आपस का बैर-विरोध भुलाकर एक-दूसरे के गले मिलेंगे। सरकारी कर्मचारी जितनी भी गड़बड़ करते हैं, वे तब तक ठीक नहीं होंगे, जब तक एक भी विदेशी शासक इस देश में रहेगा।

इधर तो इस प्रकार स्वराज्य आने की बड़ी-बड़ी बातें नेता द्वारा बघारी जा रही थीं, उधर तभी जमींदार का एक पिट्ठू लगभग एक खेत भर की दूरी से अपनी दोनाली बन्दूक से गोली चलाने लगा उसके डर से भाषण सुनने वाली भीड़ भागने लगी और पुलिस का सिपाही खड़ा-खड़ा बन्दूक चलाने वाले को केवल ललकारता रहा। इस पर झींगुर ने अपने झनझनाते स्वर में कहा कि चूँकि हम लोग किसान-सभा के सदस्य हैं। इसी से भाई जी (नेताजी) के हिमायती जमींदार ने गोली चलवाई, जिससे पुलिस की आज्ञा का पालन किया जा सके। नेता का भाषण वास्तव में पुलिस की आज्ञा पालन की एक तरकीब थी।

विशेष—किसान-सभा आजादी मांगती थी। कांग्रेसी नेता सरकार से मिला हुआ था। सरकार विरोधी भाषण देकर पुलिस को यह कहने का अवसर दिया कि किसान-सभाई सरकार विरोधी सभा में भाग ले रहे थे।

इस प्रकार निराला जी ने सरकारी दलाल किस्म के कांग्रेसी नेताओं पर करारा व्यंग्य किया है।

(७९) राजे ने अपनी रखवाली की

राजे ने अपनी .... रखवाली की।

संदर्भ—कविवर निराला की यह कविता उनके कविता काल के द्वितीय चरण की रचना है। इसको **राग-विराग** में उनके कवित्त-संग्रह **नये पत्ते** से लेकर संकलित किया गया है। इसमें निराला जी ने राजाओं एव स्वार्थी नेताओं पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि ये लोग जन-रक्षा की ओट में सरल स्वार्थ की सिद्धि करते हैं।

भावार्थ—राजा ने जनता के नाम पर वास्तव में अपनी ही रक्षा की। इसने किला बनवाया, तब भी स्वयं सुरक्षित बने रहने के लिए अपनी ही रक्षा के लिए उसने बड़ी-बड़ी सेनाएँ रखीं। अपनी चापलूसी करने वाले अनेक सामन्त रखे, वे सब राजदण्ड के नाम पर, अपने स्वार्थ की लकड़ी ही पकड़े हुए थे। उसके पास न मालूम कितने ब्राह्मण आए, उनकी पोथियों में भी जनता के छुटकारे की नहीं, बल्कि बन्धन की बातें लिखी हुई थीं। ऐसे उस राजा की प्रशंसा में कवियों ने गीत लिखे तथा लेखकों ने लेख लिखे, इतिहासकारों ने उनकी बहादुरी को लेकर अनेक पृष्ठ रंग डाले, इसी प्रकार नाटककारों ने उन राजाओं के कार्यों को लक्ष्य करके अनेक नाटक लिखे तथा उनके कार्यों को जनता के सामने प्रदर्शित करने के लिए रंगमंच पर उनका अभिनय भी किया।

इसका समग्र परिणाम हुआ कि राजा और उसके समर्थक वर्ग का जादू जनता पर चल गया अर्थात् जनता उन्हें महान समझने लगी। उन राजाओं की रानियाँ भी समाज की नारियों के लिए आदर्श नारी मानी जाने लगीं। राजाश्रय में पलने वाले धार्मिकों ने ऐसे धर्म को बढ़ावा दिया जो जनता को धोखा देने वाला था। अपने धर्म एवं अपनी सभ्यता को श्रेष्ठ बताकर उनका प्रचार किया गया तथा इस प्रक्रिया में शस्त्र चलने लगे। इस प्रकार इन राजाओं के द्वारा धर्म-प्रचार के कारण खून की नदियाँ बहती रहीं। राजाओं के आदेश पर जनता ने भी बिना सोचे-समझे खून की उन नदियों में डुबकियाँ लगाईं अर्थात् जनता भी राजा की आज्ञा को ईश्वरेच्छा मानकर मरती-कटती रही और खून बहाती रही—यह समझ कर वह अपनी सुरक्षा के लिए यह सब कुछ कर रही थी। परन्तु जब जनता की आँखें खुलीं अर्थात् उसको वास्तविकता का ज्ञान हुआ, तब उसकी समझ में आया कि इतना रक्त बहाकर राजा ने स्वयं अपनी ही रक्षा की है।

विशेष—कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे राजनीतिक नेता भी बड़े-बड़े युद्ध करा कर अपनी स्वार्थ-सिद्धि अथवा अहं की संतुष्टि ही करते हैं। जनता के हिताहित से उन्हें बहुत कम मतलब रहता है।

(८०) चर्खा चला

(क) **वेदों का चर्खा चला .... उबटन से साबुन।**

शब्दार्थ—चर्खा चलना = क्रम चलना। सदियाँ = शताब्दियाँ, १०० वर्ष की कालावधि को शताब्दी, शती या सदी कहते हैं। उपवन = वाटिका। ज़वाँ = ज़वान, भाषा।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला की कविता **चर्खा-चला** से उद्धृत हैं। "चर्खा चला" कविता कवि के द्वितीय चरण के कविता-संग्रह **नये पत्ते** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। इसमें कवि ने मानव-सभ्यता के विकास की कहानी अपने विशेष व्यंग्यात्मक ढंग से कही है।

भावार्थ—वैदिक सभ्यता से मानव-सभ्यता का आरम्भ हुआ और शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं। लोगों ने समुदाय या दल बनाकर बसना आरम्भ किया और सभ्यता का विकास होता रहा। पहले लोग गुफाओं में रहते थे। गुफ़ाओं में रहना छोड़कर लोगों ने रहने के लिए घर बनाए। पहले वे केवल भेड़ें पालते थे; अब वे गायें पालने लगे। पहले लोग जंगलों में रहते थे। फिर

उन्होंने जंगलों को काटकर बगीचे और उद्यान बनाए। पहले भाषा का रूप स्थिर नहीं था अर्थात् शब्दों का मनमाने ढंग से प्रयोग किया जाता था; अब शब्दों के अर्थ होने लगे अर्थात् भाषा का विकास हुआ। वैदिक भाषा का संस्कार किया गया और संस्कृत भाषा का उदय हुआ। व्याकरण के नियम बनाए गए, शब्दों के रूप एवं उच्चारण के शुद्ध रूप स्थिर किये गए। इस प्रकार हम कहते हैं कि जंगली लोग अपने वेश एवं आवास की व्यवस्था में विकास करके सभ्य बन गए। इस प्रकार सभ्यता विकास के कई कोस या मील अथवा चरण बड़ी कठिनाई के साथ पार किए गए। मनुष्य जीवनोपयोगी सामग्री की खोज बराबर करता रहा और सुख-सुविधा के साधनों में वृद्धि होती रही। पहले लोग शरीर का मैल साफ़ करने के लिए उबटन लगाते थे, अब साबुन लगाने लगे हैं। यह सभ्यता के विकास का एक उदाहरण है। इसी प्रकार हमने अब आवश्यक वस्तुओं के रूप में परिवर्तन किया।

अंलकार—(१) **छेकानुप्रास** (१) चर्खा चला; सुख साधन।

(२) **उदाहरण**—जैसे उबटन से साबुन।

विशेष—(१) लक्षणा के प्रयोग दृष्टव्य हैं, यथा—१. चर्खा चला; चलते रहे; जवा बँधने लगी; कोस कटे।

२. शैली व्यंग्यात्मक है—**चर्खा चलना**—प्रयोग ही इस प्रवृत्ति का द्योतक है। कवि में वेदों के प्रति अपेक्षित श्रद्धा का अभाव दृष्टव्य है। वह वेदों की सभ्यता के आरम्भ को **चर्खा चलना** कहता है।

(ख) वेदों के बाद .... दुनियाँ को देह है।

शब्दार्थ—लीक छोड़ना=परम्परा का त्याग, रूढ़ि के बन्धनों को त्यागना। वर्जिन स्वैल Virgin soil=जिस मिट्टी पर हल न चला हो। गुड अर्थ Good earth=उपजाऊ भूमि।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान कवि कहता है कि भारतीय सभ्यता के स्तर से दुनियाँ अभी बहुत पीछे है।

भावार्थ—वैदिक सभ्यता के बाद वर्ण-व्यवस्था हुई—अर्थात् स्मृतियों का समय आया। एक ही मानव-समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया। उसी का नाम रामराज्य-आदर्श राज्य कहा गया। महर्षि वाल्मीक ने वेदों की पद्धति पर आत्मानुभूति व्यक्त करना छोड़ा—मन्त्रों के स्थान पर गीतों (काव्यमय छन्दों) की रचना की। उन्होंने देवी-देवताओं की स्तुति न करके मानव को

महत्त्व देते हुए रामायण की रचना की तथा स्वर्गीय देवियों की स्तुति करना छोड़कर धरती की बेटी सीता के चरित्र का गुणगान किया। इस प्रकार हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हुआ। लोग व्यर्थ ही कहते हैं कि पश्चिम के विज्ञान-वेत्ताओं ने पृथ्वी को धन-धान्य को उत्पन्न करने योग्य बनाया है। हमारे यहाँ इस प्रकार की सभ्यता का विकास बहुत पहले हो चुका था।

आगे चलकर श्रीकृष्ण ने भी स्वर्ग की बातें न करके धरती को—लौकिक जीवन को महत्त्व प्रदान किया। पहले ब्रज में इन्द्र नामक देवता की पूजा करते थे। कृष्ण ने गाय की पूजा कराई क्योंकि वही हमारी सुख-सम्पत्ति की वृद्धि का हेतु थी। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने सभ्यता के विकासक्रम मनुष्यों, गायों एवं बैलों के सम्मान की परम्परा चलाई।

अब कृषि-सभ्यता का विकास हुआ। श्रीकृष्ण के भाई बलदेव ने हल को हथियार बनाया, वह उसको अपने कंधे पर रखे हुए घूमा करते थे। वह उससे खेत तैयार करते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर शत्रु एवं पशुओं से अपनी रक्षा भी कर लेते थे। हल चलने से खेती का क्रम आरम्भ हुआ और हरे-भरे खेत लहराने लगे। सभ्यता-विकास के इस स्तर तक पहुँचने में दुनियाँ के अन्य देशों को अभी अनेक वर्ष लग जाएँगे।

विशेष—१. जाति के चार भाग—श्रम-विभाजन की दृष्टि से समाज के चार भाग किए गए हैं—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्र।

२. **रामराज्य**—लाक्षणिक अर्थ है 'आदर्श राज्य, वह राज्य जिसमें सब लोग अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें तथा एक-दूसरे को समान समझें। वस्तुतः विषमता एवं शोषण रहित राज्य का नाम ही रामराज्य है। पूज्य बापू के सुख स्वप्न का राज्य यह रामराज्य ही था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने राम चरितमानस में ऐसे ही राज्य की कल्पना की है। देखें रामराज्य का यह स्वरूप—

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।
बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।

३. मानव को मान दिया—वाल्मीकि ने आदर्श मानव के रूप में राम के चरित्र का गायन किया।

४. धरती की लड़की सीता—मान्यता यह है कि सीता का जन्म पृथ्वी

से हुआ था। कवि लाक्षणिक अर्थ करता है कि पृथ्वी की कोई भी कन्या सीता है।

५. कली ज्योति में खिली—लाक्षणिक प्रयोग द्रष्टव्य है। ज्ञान के प्रकाश में संस्कृति का विकास हुआ—कली रूप अन्तर्हित गुण पुष्प रूप विकसित होकर प्रकट हो गए।

६. "वर्जित स्वैल" गुडअर्थ—यह पाश्चात्य सभ्यता के हामियों पर तीखा व्यंग्य है।

७. गोवर्धन पूजा की कथा सर्वविदित है। गोवर्धन का अर्थ है—गाय के कुल की वृद्धि। कालक्रम से उसका अर्थ गोबर का ढेर और फिर एक पर्वत विशेष हो गया। इन्द्र को सूर्य एवं विष्णु भी कहा है। देवी-देवताओं से याचना करने के स्थान पर अपने गो-वंश की वृद्धि का पाठ श्रीकृष्ण ने पढ़ाया।

८. शैली वर्णनात्मक है। इस इतिवृत्तात्मक कविता में कवित्व का प्राय: अभाव ही है। संसार के देश हल-मूसल की सभ्यता से बहुत आगे बढ़ गए हैं। जिन विशेषताओं के कारण भारतीय सभ्यता-संस्कृति सर्वोपरि बनी हुई है, उनकी ओर तो वस्तुत: कवि ने संकेत भी नहीं किया है। जो भी हो, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति कवि की आस्था द्रष्टव्य है। प्रकारान्तर से इसे हम देश-भक्ति की अभिव्यक्ति भी कह सकते हैं।

(८१) दगा की

चेहरा पीला पड़ा .... सभ्यता ने दगा की।

संदर्भ—कवि निराला कृत यह कविता **दगा की** उनके कविता-काल के द्वितीय चरण को कविता-संग्रह से **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि का कहना है कि सभ्यता-संस्कृति के मूल्य सदैव से बदलते रहे हैं।

भावार्थ—सभ्यता-विकास के क्रम में सैकड़ों शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं। लोग बराबर इस जीवन और जगत का पता लगाते आए हैं। पता लगाने वालों में सैकड़ों के चेहरे पीले पड़ गये, कमर और पीठ तक झुक गई, वे ज्ञान की प्राप्ति के लिए भगवान के हाथ जोड़-जोड़ कर हार गये, यहाँ तक अनेकों व्यक्ति अंधे हो गये। इस प्रकार सैकड़ों शताब्दियों से जीवन के प्रश्नों में मनुष्य उलझता-जूझता चला आ रहा है।

पता लगाने वालों की परम्परा में बड़े-बड़े ऋषि, मुनि और कवि हुए। वे तरह-तरह से अपने विचारों को जनता के सामने प्रकट करके काल के गाल

में समा गये। किसी ने कहा कि मूल तत्व एक ही है, वह ब्रह्म, जीव और गीत इन तीन रूपों में व्यक्त दिखाई देता है, किसी ने कहा कि ये तीनों पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं अर्थात् ब्रह्म, जीव और जगत तीनों ही सत्य हैं। किसी ने मानव और पृथ्वी के पदार्थों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया, किसी ने हठ योग की साधना द्वारा परम तत्त्व का साक्षात्कार करना चाहा, किसी ने वाम मार्ग का अवलम्बन करके भोग के द्वारा उस परम तत्त्व की अनुभूति करनी चाही तथा किसी ने योगासन किए। समस्त साधकों की साधना के चमत्कारों को देख कर लोग अपने आपको धन्य मानते रहे तथा साधकों को साधुवाद देते रहे।

बड़े-बड़े आविष्कार हुए, मृदंग का रूप तबले ने ले लिया, वीणा को सुर-विहार के रूप में परिवर्तित कर दिया गया, और अब पियानो पर गीत सुनाए जाते हैं, परन्तु हमारी खंजड़ी ज्यों की त्यों बनी रही, अर्थात् वह मूल तत्त्व अपरिवर्तित ही बना रहा है। तात्पर्य यह है कि बाह्य रूपाकार सम्बन्धी अनेक परिवर्तन हो गये, परन्तु मौलिक परिवर्तन न हो सका। एक नवीन ज्ञान का उदय हुआ। चारों ओर नवीन सभ्यता का विकास हुआ। जिस प्रकार वेश्याएँ रात में अपने होठों पर लाली लगाकर लोगों को मोहित कर लेती हैं, उसी प्रकार हमारी इस सभ्यता का प्रकाश चारों ओर फैल कर लोगों को अपने माया-जाल में फँसाता रहा। सचमुच वेश्या की भाँति सभ्यता ने हमारे साथ धोखा किया है।

अलंकार—(१) उल्लेख—किसी ने कहा·······चूमे। (२) उदाहरण—दिशाओं ने········रात में।

विशेष—१. खंजड़ी में साध्यवसाना लक्षणा का चमत्कार दृष्टव्य है।

२. **होंठ रँगने**—सभ्यता का रूप वाह्याडम्बरों से पूर्ण है। वह आकर्षित तो करता है, परन्तु तृप्ति प्रदान नहीं करता है। वेश्या की भाँति यह सभ्यता भी तत्त्व-ज्ञान के अभाव पर पनपी है।

३. कवि ने तत्त्व-चिन्तन का प्रश्न उठाया है तथा आधुनिक सभ्यता के सामने बहुत बड़ा प्रश्न वाचक चिह्न लगा दिया है।

४. शैली इतिवृत्तात्मक है। कवित्व का अभाव है।

५. कमल—हठयोगी इस शरीर में चक्रों एवं कमलों की कल्पना करते हैं। कुण्डलिनी जाग्रत होकर इन कमलों पर होती हुई ब्रह्मरन्ध्र-सहस्रदल कमल पर पहुँचती है।

(८२) कुकुरमुत्ता

(क) **एक थे** .... **सन्तरे और फालसे।**

शब्दार्थ—खुशनुमा=भले, सुन्दर।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कविवर निराला के द्वितीय चरण की प्रसिद्ध व्यंग्य कविता '**कुकुरमुत्ता**' में से ली गई हैं। उनकी यह कविता '**नये पत्ते**' से **राग-विराग** में संकलित है। इस कविता में कवि ने अपने समय की अनेक मान्यताओं पर करारा व्यंग्य किया है, जो गाली-गलौज की सीमा तक पहुँच जाता है। कुकुरमुत्ता श्रमिक वर्ग अथवा सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है।

इन पंक्तियों में कवि तीखे व्यंग्यों के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है।

भावार्थ—एक नवाब साहब थे। उन्होंने फारस से गुलाब के पौधे मँगवाए थे। उनको उन्होंने अपने बड़े बगीचे में लगाया। उन्होंने उनके साथ वहीं कुछ देशी पौधे भी लगवाए थे। उन सबकी देखभाल के लिए कई माली और नौकर-चाकर भी रखे। इस प्रकार उनका बगीचा गजनवी के बाग के समान ही मनोहर प्रतीत होता था। लगता था कि उनकी सभ्यता की श्वासों पर गुलाब के बगीचे के रूप में उनका कोई सुन्दर स्वप्न साकार हो उठा था।

सारा बाग बहुत ही क़ायदे-क़रीने के साथ तैयार किया गया था—वह एक सुन्दर साँचे में ढला हुआ लगता था। उसमें सुन्दर-सुन्दर क्यारियाँ बनी हुई थीं। जिन्होंने अपनी सघनता से सारे बगीचे को घेर रखा था। उनके बीच गुलाब के पौधे बहुत ही भले लग रहे थे। गुलाब के अतिरिक्त वहाँ अनेकों फल-फूलों के पेड़ थे, यथा—बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जुही, नरगिस, कमलिनी, चम्पा, गुलमेंहदी, गुलखैरा, गुलअब्बास, गेंदा, गुलदाउदी, निबोड़ी, गंधराज आदि न मालूम कितने प्रकार के फूल उगकर वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे? वहाँ अनेक फब्वारे थे। उनमें अनेक रंगों का पानी निकल रहा था—लाल, धानी, चम्पई, आसमानी, हरा, फ़िरोज़ी, सफ़ेद, पीला, बादामी, बासन्ती आदि सभी रंग मौजूद थे। वहाँ आम, लीची, संतरे, फालसे आदि के अनेक फलों के भी पेड़ थे।

विशेष—१. रीतिकालीन पद्धति की वस्तु परिगणन की परिपाटी पर प्रकृति-वर्णन किया गया है।

२. यह स्पष्ट है कि कवि को अनेक फूलों, फलों एवं रंगों की जानकारी

है। कवि का उद्देश्य नवाब की विलास-प्रियता एवं फिज़ूल खर्ची पर प्रकाश डालना है।

३. फारसी शब्दों का प्रयोग खुलकर किया गया है। शैली इतिवृत्तात्मक एवं कवित्वहीन है।

(ख) **चटकती .... कहीं झाड़ी।**

शब्दार्थ—मृदुल=सुखद। मन्द-मन्द=धीरे-धीरे। चहकते=मधुर ध्वनि करते हुए। आशियाँ=घोंसला, बसेरा, घर। सरों=पेड़ का नाम। राहें=रास्ते। आरामगाह=विश्राम करने के स्थान। सुथरा=स्वच्छ। चमल=हरा-भरा स्थान, फुलवारी।

संदर्भ—उपर्युक्त छंद (क) के समान।

भावार्थ—नवाब साहब के उस बगीचे में कलियाँ खिलते समय चटखने की ध्वनि करती थीं उनसे भीनी-भीनी गंध निकलती थी, उस सुगंध को अपने साथ लेकर हवा मन्द-मन्द चलती रहती थी; अर्थात् वहाँ मन्द-सुगंध वायु बहा करता था, प्रेम से चूमती हुई डालियों पर बुलबुलें चहचहाया करती थीं। वह बाग अनेक प्रकार की चिड़ियों का घर-घोंसला बना हुआ था। उसमें साफ-सुथरे रास्ते बने हुए थे। वे रास्ते दोनों ओर से सरों के ऊंचे-ऊँचे पौधे द्वारा घिरे हुए थे। वे इतनी दूर तक फैले हुए थे कि उनके छोर (अन्तिम सिरा) तक नहीं दिखाई देता था। उन सबके बीच में एक विश्राम स्थल बना हुआ था, जो नवाब साहब के बड़े आदमीपन को स्पष्टतः प्रकट कर रहा था। वहाँ कहीं छोटी-छोटी पहाड़ियाँ बनी हुई थीं; कहीं साफ-सुथरी फुलवारी अथवा हरा-भरा स्थान था और कहीं पर नकली (मालियों द्वारा पेड़ों आदि को काट कर बनाई हुई) झाड़ियाँ थीं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—हवा, बुलबुल, टहनियाँ। (२) पुनरुक्ति-प्रकाश—मन्द-मन्द।

विशेष—१. वर्णन-शैली आदि के लिए देखें उर्पयुक्त छन्द के नीचे वाली टिप्पणियाँ।

२. वायु पुल्लिंग है, अतः वह गंध को गला लगाकर चलता है, टहनियाँ आनन्दातिरेक के कारण झूमती हैं। अतः व्यंग्य यह है कि वहाँ का वातावरण कामोद्दीपक था। चेतन की कौन कहे, जड़ पदार्थ तक काम भावना द्वारा अभिभूत हो रहे थे।

३. कवि ने नवाब के बगीचे के माध्यम से पूँजीपतियों एवं सामन्तों की विलासगाह का बहुत ही यथार्थ वर्णन किया है। कवित्व के प्रभाव में अपेक्षित सजीवता नहीं आ पाई है। इस वर्णन के द्वारा कवि ने व्यंग्य की भूमिका तैयार की है।

(ग) आया .... जवाँ पर लफ्ज प्यारा।

शब्दार्थ—रोबोदाब=धाक, दबदबा, आतंक। बुत्ता=दम, झाँसा। कुकुरमुत्ता=एक तरह का पौधा जो बरसात के दिनों में पेड़ों की जड़ों या सील की जगहों में उगा करता है, छत्रक। रंगो आब=रंग और चमक। अशिष्ट=असभ्य, बदतमीज। केपीटलिस्ट=पूँजीपति। जानिब=तरफ। घाम=धूप, गर्मी। तबेले=अस्तबल, घुड़साल। हस्ती=अस्तित्व। पोच=कायर, नीच। मेहरुन्निसा=जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ का नाम। इसने गुलाब के इत्र का आविष्कार किया था। ख्वाव=स्वप्न। जबाँ=जवान। लफ्ज=शब्द।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान। अब व्यंग्य का आरम्भ होता है। नवाब के उस बगीचे की पहाड़ी पर फारस के गुलाबों के पास ही एक कुकुरमुत्ता भी सिर उठाकर उग आया। वह गुलाब का उपहास एक पूँजीवादी के रूप में करता है, यथा—

भावार्थ—जब मौसम आया तो फारस से आए गुलाब का पौधा फूलों से लदकर खिल उठा। इसके खिलने का दबदबा अथवा गम्भीर प्रभाव पूरे बाग पर छाया हुआ था। अर्थात् उसके सम्मुख बगीचे के अन्य फूलों की शोभा मंद पड़ गई थी। वहीं पास की पहाड़ी की गंदगी में उगा हुआ एक कुकुरमुत्ता अपना सिर अकड़ा कर और गुलाब को धता बताते हुए कहने लगा—अबे, गुलाब सुन, तूने सुगंध, चमक, और रंग अवश्य प्राप्त किए हैं, पर तू अपनी वास्तविकता को मत भूल जा। अरे असभ्य, याद रख कि तूने पूँजीपति के समान खाद का खून चूस कर ही यह सब कुछ प्राप्त किया है और अब तू इस डाल पर इतरा रहा है। पता नहीं तूने पूँजीपति के समान अपनी देखभाल के लिए कितने गुलाब (क्रीतदास) रख छोड़े हैं। तेरी देखभाल के लिए माली रखे हुए हैं जो वे चोर गर्मी-सर्दी सब कुछ सहते हैं। तू जिसके हाथों भी लगता है, वह औरतों की तरह मैदान छोड़ कर पीछे की ओर भाग जाता है अर्थात् तुझ में काँटे हैं और तेरे पास आने वाला पूँजीपति के दुर्व्यवहार का अनुभव करके तुझ से दूर भागता है। तुझे अपनाने वाला व्यक्ति ऐसे ही भागता है जैसे अस्तबल

का घोड़ा अपनी रस्सी तुड़ाकर भागता है। चूँकि तू बड़े-बड़े शाहंशाहों, राजाओं और अमीरों का प्यारा है, इसी कारण तू साधारण फूलों से अलग-अलग है। जिस प्रकार पूँजीपति जन साधारण में नहीं दिखता है उसी प्रकार गुलाब भी अन्य फूलों के मध्य नहीं समा पाता है।

ऐ गुलाब के फूल ! यदि तूने खाद का रस प्राप्त न किया होता, तो क्या तेरा अस्तित्व होता ? तू तो एकदम नीच है। अगर तुझे दूसरों के रस-रूप का सहारा न मिला होता, तो अभी-अभी तुम्हारी जो कली विकसित हुई है, वह कली भी मुरझा कर काँटा बन गई होती। अरे गुलाब ! तू व्यर्थ ही बड़ा खानदानी बना फिरता है। तुझे तो रोज-रोज इस मेहरून्निसा (नूरजहाँ) चाहिए जो तेरा इत्र और रू निकाला करे अर्थात् पूँजीपतियों को तो विलास पूर्ति के साधन चाहिए। यह विलास—वासना हम जैसे लोगों को ऐसी दिशा में बहाकर ले जाती है जिसका कोई अंत नहीं होता तू अपने नीच कार्यों से लोगों को ऐसा पथ भ्रष्ट कर देता है कि फिर उनके उद्धार की कोई सम्भावना नहीं रह जाती है। तेरे साथ पड़ कर वे लोग ऐसी स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ आश्रय एवं आराम स्वप्न में कहीं दूर चमकने वाले तारों के समान होते हैं; जहाँ व्यक्ति सदैव भूखा बना रहता है, परन्तु वह मुँह से अच्छे लगने वाली बातें करता रहता है।

अलंकार (१) मानवीकरण कुकुरमुत्ता। (२) पदमैत्री—कुत्ता कुकुरमुत्ता। गुलाब रंगोआब। (३) उदाहरण—तबेले का टट्टू जैसे तोड़कर। (४) वक्रोक्ति—क्या हस्ती है। (५) उपमा—चमकता हो सितारा। (६) अक्रमातिशयोक्ति की व्यंजना—नहीं कोई किनारा।

विशेष—१. कवि ने पूँजीपतियों के प्रति अपना समस्त आक्रोश प्रतीक-शैली पर अभिव्यक्त किया है। सम्भवतः इसमें उसकी हीनत्व भावना भी सम्मिलित है। अन्यथा वह अपने आपको गेहूँ या बाजरा कहता, कुकुरमुत्ता नहीं। कुकुरमुत्ता एक व्यर्थ का पौधा होता है, इससे खेती को कोई लाभ नहीं उलटे हानि ही होती है। निराला जी कदाचित अपने आपको कुकुरमुत्ते की भाँति उपेक्षित व्यक्ति मान बैठे थे।

२. हरामी इत्यादि गाली गलौज का प्रयोग देशज दोष ही माना जायगा। ऐसे प्रयोग परिनिष्ठित साहित्य के योग्य कदापि नहीं कहे जा सकते हैं।

(३. साम्यवादी विचारधारा की छाप स्पष्ट है।)

४. जो पदार्थ चारों ओर सुगंध विकीर्ण करे तथा अपने रूप-सौन्दर्य द्वारा जन-जन का रंजन करे, वह यदि केपिटलिस्ट है, तो फिर कैपिटलिस्ट के प्रति विरोध किस कारण ?

५. भाषा मुहावरेदार है—पैर सर रखकर तबेले का तोड़ना, काँटों भरा, बहाकर ले जाना, ख्वाब में डूबना, पेट में चूहे का दण्ड पेलना।

६. फारसी अरबी के शब्दों का सफल प्रयोग—मौक्षिक, रोबोदाब, रंगोआब गुलाम, जानिब, शाहों, अमीरों, हस्ती, हरामी, खानदानी, ख्वाब, जब्रा, लफ्ज।

(घ) देख मुझको .... गधा है।

शब्दार्थ—कौलिक = वाममार्गी।

संदर्भ—पूर्व छंद के समान।

कुकुरमुत्ता गुलाब के फूल को पूँजीपतियों का प्रतीक तथा अपने आपको जनता का प्रतीक बनकर गुलाब से कहता है।

भावार्थ—अबे ओ गुलाब ! तू जरा मेरी ओर तो देख। मैं डेढ़ बालिश्त तक बढ़ गया हूँ और ऊँची पहाड़ी पर चढ़ कर उगा हूँ। मुझे तुम्हारी तरह किसी ने पालपोस कर नहीं उगाया है, बल्कि मैं तो अपने आप ही जमीन से उग आया हूँ। मुझे किसी ने दाना-पानी भी नहीं चुगाया है अर्थात् किसी ने मेरी देख-भाल भी नहीं की है। तेरी तरह मेरी कलम भी लगा कर नहीं उगाई जाती है, बल्कि मेरा जीवन और अस्तित्व तो स्वयं ही है। इस प्रकार तू बनावटी या नकली चीज है और मैं भौतिक और असली हूँ। तू बकरा है और मैं तुझे खा जाने वाला वाममार्गी साधु हूँ। तू रंगे स्यार की भाँति धोखे बाज है, जबकि मैं धुला हुआ यानी निर्मल व्यक्ति हूँ। मैं पानी की तरह स्थायी एवं सबके काम में आने वाला हूँ, तू क्षण भंगुर एवं केवल देखने भर की चीज है तथा किसी के काम में न आ सकने के कारण व्यर्थ की वस्तु है। इस प्रकार तूने लोगों को बिगाड़ा है जबकि मैं दुनियाँ के लोगों को सहारा देकर उठाने वाला हूँ। तूने लोगों को जनखा (नपुंसक) बनाकर उनकी रोटी छीन ली है, जबकि मैं अपने परिश्रमशील स्वभाव के कारण लोगों को एक के बदले तीन-तीन रोटियाँ देता हूँ। मेरे द्वारा ही संसार के सब काम चल रहे हैं। शेर भी मेरे सामने गधा (त्याज्य) है।

विशेष—(१) लक्षणा—शेर भी गधा है : (२) तू रंगों में धुला—इसका

अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि तेरे हाथ शोषितों के खून में रंगे हुए हैं जबकि पसीने की कमाई खाने के कारण मैं सर्वथा निष्कलंक हूँ।

३. एक के बदले तीन-तीन रोटियाँ देता हूँ—मुझे जितना पारिश्रमिक मिलता है, मैं उसकी अपेक्षा कई गुने मूल्य का उत्पादन कर देता हूँ।

४. कवि कहना यह चाहता है कि पूँजीवाद नवीन (औद्योगिक) सामाजिक व्यवस्था की देन होने के कारण सर्वथा मानवकृत अथवा कृत्रिम एवं अस्थायी है। यह पूँजीवादी व्यवस्था श्रमिक का शोषण कर रही है तथा श्रमिक वर्ग की रोटी छीन रही है, दूसरी ओर श्रमिक वर्ग अपने श्रम द्वारा उत्पादन करके समाज का पालन कर रहा है।

(ङ) चीन में मेरी नकल .... मेरा ही बमकला है।

शब्दार्थ—कैंड़ा = पैमाना, खाका उतारने का यंत्र। वक्र = टेढ़ा।

संदर्भ—कुकुरमुत्ता अपना गुण-गान करता हुआ गुलाब से कहता है।

भावार्थ—चीन में जिस छाते का प्रयोग किया जाता है, वह मेरे ही स्वरूप की नकल करके बनाया गया है। भारत में जो छत्र का प्रयोग किया जाता है, उसमें भी मेरे ही आकार-प्रकार का दर्शन किया जा सकता है। ओ बे गुलाब ! तू चारों ओर ज़रा अच्छी तरह देख ले, मैं सब जगह किस प्रकार तना हुआ हूँ। आज का पैराशूट भी मेरे ही रूप की नक़ल और उसका विकास है। विष्णु के हाथों के शस्त्र चक्रसुदर्शन में भी मेरा ही रूप निवास करता है। मेरा टेढ़ापन भी दुनियाँ के काम में आने वाला है। अगर मुझे उलटा कर दिया जाए, तो मैं माता यशोदा की मथनी बन जाता हूँ। इस प्रकार मेरी कहानी अत्यधिक लम्बी है। तू मुझे अपने सामने लाकर ज़रा टेढ़ा करके देख तो—मैं नक्शा बनाने का यंत्र अथवा पैमाना बन जाऊँगा। धनुष से खींचा गया राम का तीर दिखाई दूँगा अथवा बड़े-बड़े कामों में आने वाला बलराम के हल के रूप में दिखाई दूँगा। प्रात: उगने वाले सूर्य के रूप में तथा शाम को प्रकाशित होने वाले चन्द्रमा में तुम्हें मेरा ही टेढ़ापन दिखाई देगा। इस कलियुग में मैं तुझे ढाल के रूप में दिखाई दूँगा। नाव के नीचे तले के रूप में और ऊपर तनी हुई पाल के रूप में मेरा ही टेढ़ापन है। इतना ही नहीं, तोलने वाली डाँड़ी में लगा पल्ले में मेरा ही रूप है जिसमें सारी दुनियाँ अपने लिए तथा तुम दूसरों का रक्त चूसने के लिए अनाज तौलते हो। मूँछ का बाँकापन तथा उन्मुक्त कल्ले का टेढ़ापन मेरे ही वक्रस्वरूप के परिचायक हैं। रुपया,

अधनना, बनारस का न्यवन्ना, लल्लू-लल्ला सभी में मेरा ही रूप है। सभी स्थानों पर मैं ही चमकता हूँ। मेरे ही आकार में धड़ाका करने वाला बम बनाया जाता है।

अलंकार—उल्लेख—समस्त छंद में, एक कुकुरमुत्ता का विभिन्न रूपों में वर्णन होने के कारण।

विशेष—रूप साम्य के आधार पर की गई ऊहा-पोह को देखकर हँसी आती है। इस कल्पना प्रसूत खींचतान में कवित्व की आभा का सर्वथा अभाव है।

(च) लगाता हूँ पार .... जैसे खुशनसीब।

शब्दार्थ—लंठ = उजड्ड्। खुशनसीब = भाग्यवान।

संदर्भ—पूर्व छंद (ङ) के समान।

भावार्थ—अबे ओ गुलाब ! देख, संसार में सबको पार लगाने वाला मैं ही हूँ। डिब्बे का नमूना और पान में पड़ने वाला चूना मैं ही हूँ। मैं उसी प्रकार स्वयमेव बन जाने वाला कुकुरमुत्ता हूँ जिस प्रकार बेनजाइन का दर्शन शासन बन गया, ओमफलम् और ब्रह्मावर्त्त स्वतः ही बन गए, जैसे दुनियाँ का गोला और पर्त्तें बन गईं, जैसे साड़ी पर सिकुड़न अपने आप पड़ जाती है, जैसे साफ कपड़े पर सफाई एवं माँड़ होती है, उसी प्रकार मैं भी सर्वव्यापक हूँ, जैसे कास्मोपालीटन, मैट्रोपोलीटन, फ्रायड और लैनिन वगैरा बन गए, उसी प्रकार मैं भी बन गया हूँ, फ़िलसी, फिलासफ़ी (दर्शन) ज़रूरत और उसकी पूर्ति भी मैं ही हूँ। सरसता होने वाला धोखा भी मैं ही हूँ। जैसे राजधानियों में (रूस की राजधानी) लैनिनग्राड का महत्त्व है, उसी प्रकार मेरा भी महत्त्व है। लेखकों में जैसे उजड्ड् लोग भाग्यवान होते हैं, उसी प्रकार मैं भी हूँ।

विशेष—यह वर्णन श्रीमदभगवद् गीता में किए गए भगवान की सर्वव्यापी विभूति के समान है। यह समस्त वर्णन एवं वस्तु परिगणन असंगत है।

(छ) मैं डबल जब बना .... क्लाइमेक्स को पहुँचता।

संदर्भ—पूर्व छन्द (क) के समान। कुकुरमुत्ता अपने गुणात्मक महत्त्व की सर्वव्यापकता का व्यंग्य-रूप में प्रतिपादन करता है। गुलाब के प्रति उसका कथन है।

भावार्थ—दोहरा हो जाने पर मेरा रूप डमरू का हो जाता है। एक ही बगल रहने से मैं वीणा बन जाता हूँ। कभी तो मैं साजों से गम्भीर ध्वनि बन कर निकलता हूँ और कभी क्षीण ध्वनि बन कर गूँजता हूँ। इस प्रकार मैं

पुरुष भी हूँ तथा दुर्बल नारी भी हूँ। मृदंग और तबला भी मैं ही हूँ। सितार-वादक चुन्ने खाँ के हाथ की सितार भी मैं ही हूँ। संगीतज्ञ दिगम्बर का तानपूरा और सुन्दरियों का सुर बहार भी मैं ही हूँ। लायर नामक अंग्रेजी बाजा भी मैं ही हूँ और मुझसे ही लीरिक (गीतिकाव्य) की सृष्टि हुई है। संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, ग्रीक, लैटिन में मिलने वाले मन्त्र, गज़लें और सभी कुछ मैं ही हूँ। मुझ पर ही मस्त (न्यौछावर) होकर सभी जीते, मरते और फिर पैदा होते हैं। बायलिन, बैंजो आदि समस्त वाद्यों को बजाने वाला मैं ही हूँ। इसी प्रकार घण्टा, घंटी, ढोल, डफ़, घड़ियाल, शंख, तुरही, मंजीरे, करताल, कारनेट, क्लेरीअनेट, ड्रम, फ्लूट, गिटार, आदि वाद्य और इन्हें बजाने वाला हसनखाँ, बुद्धू, पीटर आदि भी मैं ही हूँ। मुझे ये सब लोग दायें-बाएँ दोनों तरह से जानते-मानते हैं।

नृत्य-संगीत के क्षेत्र में ताताधिन्ना आदि जितने भी प्रकार के तोड़ और जिरह आदि चलते हैं, सभी में मेरा ही अस्तित्व है। नाच में जो जीवन होता है, नर्तक के पैरों में जो ताल-लय सुशोभित होता है, उसमें मेरे ही जीवन की झलक है। कत्थक नृत्य हो, कथकली हो या बाल-डाँस हो, क्लियोपेट्रा, कमल-भँवर का या किसी भी प्रकार का रोमान्स क्यों न हो, बहेलिया, मोर, मणिपुरी, गरबा, पैर, माँझा, हाथ-पैर, गरदन, भवें आदि मटकाने वाला अफरीकन, यूरोपियन किसी भी प्रकार का नृत्य क्यों न हो, सब में मेरी ही गढ़न है। हर प्रकार के हाव-भाव में मेरा ही ताव (प्रेरणा) रहा करता है। संसार के जिस किसी भी कोने में जहाँ कहीं भी शासकों में युद्ध हुए हैं, वहाँ मैंने ही पैंतरे बदले हैं। जहाँ कहीं भी सर्वहारा (श्रमिक) वर्ग के संघर्ष हैं, पति-पत्नी के झगड़े हैं उनके बारे में कहना ही क्या है ? वे सब मेरे ही कारण हैं। जहाँ पर कोई सूदखोर बेचारे लोगों से नोंच-खसोट करता हुआ सूद लेकर नाचता हुआ दिखाई देता है, वहाँ मेरा ही भैरव-नृत्य चरम विकास पर पहुँच जाता है।

विशेष—(१) समस्त वर्णन भरती का है। कुकुरमुत्ता रूपी श्रमिक वर्ग को समस्त वैभव, विलास एवं शोषण का हेतु बताकर कवि ने वस्तुतः अपने आपको उपहास का पात्र बना दिया है।

(२) केवल एक ही बात सामने आती है। कवि को संगीत वाद्यों,

संगीतज्ञों, नृत्यों के नाम तथा वर्ग-संघर्ष की शब्दावली का अच्छा ज्ञान है। इस प्रकार के वर्णन उसके पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति को प्रकट करने वाले हैं।

(ज) नहीं मेरे हाड़ .... मैं ही बड़ा।

संदर्भ—पूर्व छन्द के समान।

भावार्थ—अबे ओ गुलाब ! तेरी तरह मेरे शरीर में हड्डियाँ, काँटे आदि कुछ भी नहीं हैं। और न मेरे शरीर में किसी प्रकार की गांठें ही हैं। मैं तो मात्र रस ही रस हूँ। मैं सफेदी को नरक भेज रहा हूँ। मुझ से ही रस चुराकर सारी दुनियाँ रस में डूबती-उतराती है। वाल्मीकि और व्यास जैसे ऋषियों ने मेरे ही रस में गोते लगाकर अपने काव्य रचे। माघ और कालिदास ने भी मुझसे ही प्रेरणा प्राप्त करके अपने वृहद् ग्रन्थों की रचना की। फ़ारसी के प्रसिद्ध दार्शनिक कवि हाफिज़, बंगला के विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर सदृश विश्व विख्यात कवियों ने मेरे ही किनारे खड़े होकर संसार को नजर भर देखा है। (कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़कर (अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक कवि) टी० एस० इलियट ने भी अपने सिद्धांतों के रूप में मेरा ही वर्णन किया है। और संसार ने भी उसके काव्य को पढ़कर तथा हृदय पर हाथ रखकर कहा—वाह ! कितने कमाल का लिखा है इलियट ने। यह कहते हुए उनकी स्थिति वैसी ही हो गई जैसे संध्या के समय तारा देखने वाले की आँख दब जाती है अथवा हाथ में क़लम लेते ही प्रगतिशील लेखक का उत्साह बढ़ जाता है। मेरा भी अस्तित्व कुछ इसी प्रकार का है। जन्म के साथ जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से अम्मा-बुआ के रिश्ते जुड़ जाते हैं, उसी प्रकार सब बातें मुझसे ही हुई हैं।/ यहाँ तक कि मिस्र के पिरामिड (भवन) भी मेरी ही शक्ल के नमूने हैं, प्रसिद्ध गणितज्ञ यूक्लिड भी मेरा ही शिष्य था। रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर, जगन्नाथ आदि के तीर्थ स्थानों के सुन्दर मन्दिर हैं, मैं उन सबको उत्पन्न करने वाला उसी प्रकार हूँ जैसे सुवर्ण सब प्रकार के गहनों को उत्पन्न करने वाला हुआ करता है। चाहे (दिल्ली स्थित) कुतुबमीनार की लाट हो, चाहे आगरा का ताजमहल और क़िला हो, चाहे चुनार का किला हो, या कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल, बगदाद की मसजिद हो या जामा मस्जिद, सैण्ट पीटर्स (इंगलैंड) का गिरिजाघर हो या घण्टाघर, सभी चेगुम्बजों की गढ़न पर मेरे अस्तित्व की मोहर लगी हुई है। आर्य, फ़ारसी, गाथिक, आर्च आदि किसी भी नस्ल का व्यक्ति क्यों न हो, सभी पर मेरे व्यक्तित्व का प्रकाश पड़

रहा है। प्राचीन, मध्यकाल के या आधुनिक काल के, किसी भी काल के लोग क्यों न हों, चेहरे से पिद्दी लगने वाले हों अथवा पक्षीराज बाज जैसे लगने वाले हों; चीनी, जापानी, फारस-निवासी, रूसी, अमेरिकन, इटेलियन, अंग्रेज कोई भी, कहीं के भी क्यों न हों, सभी में मेरा ही व्यक्तित्व प्रतिफलित है।

ईंट, पत्थर, लकड़ी या मकड़ी के जाले जैसे ताने-बाने वाले कहीं के मकान हों, सभी मेरे ही छापे के घेरे की नकल मात्र हैं। सभी के सिरों को फँसाने वाला फंदा भी मैं ही हूँ। टर्की टोपी, दुपलिया टोपी, किश्तीनुमा टोपी या अंग्रेजी टोपी सभी मेरी नकल पर बनी हैं। उन्हें भूसा, चटाई आदि जो कुछ भी लगा है, यहाँ तक कि अंग्रेजी टोप भी—सभी कुछ मेरी ही नकल पर बनाए गए हैं। इस प्रकार टोपियों के विभिन्न रूपों—आकारों में मैं सभी के सिरों पर चढ़कर घूमता हूँ। अतः अबे, ओ गुलाब। स्पष्ट है कि संसार में तू बड़ा नहीं है, बल्कि मैं ही बड़ा हूँ।

अलंकार—उल्लेख-सम्पूर्ण वर्णन।

विशेष—(१) पूर्व छन्दों के समान। अधिकांश वर्णन असंगत है। उपमानों में न रूप साम्य है, न धर्म साम्य। इस वर्णन में साम्यवादियों की वाचालता की झाँकी मिलती है। प्रकारान्तर से इस कविता में कवि निराला की हीनत्व भावना अभिव्यक्त हुई है।

(२) कुकुरमुत्ता को परमतत्व अथवा ब्रह्म की भाँति सर्वव्यापी बताना अकारण तत्त्व-चिन्तक बनने का स्वाँग करना है। हाँ, एक बात का संकेत अवश्य मिल जाता है। निराला जी का तत्व-चिन्तन अद्वैतवादी ब्रह्मवाद था।

तृतीय चरण (१९५०-१९६१)

(८३) वरद हुई शारदा जो हमारी

वरद हुई .... **निवारी।**

शब्दार्थ—वरद=वरदान देने वाली। शारदा=सरस्वती। विशोक=शोकरहित। मंजरी=बौर अथवा बौर आया। मयूर=मोर। मूठ से छूटे=वश में नहीं रहे। ललकी=प्रबल इच्छा हुई। निवारी=जुही की जाति का एक पौधा, एक पुष्प विशेष।

संदर्भ—कवि निराला रचित यह गीत उनके तीसरे चरण की काव्य-रचना **गीतगुंज** से लेकर **राग-विराग** में संकलित किया गया है। कवि वासन्ती शोभा के रंग में रंग कर सरस्वती की वन्दना करता है।

भावार्थ—वसंत की शोभा रूपी सजी-संवरी माला पहन कर सरस्वती हमें वरदान देने के लिए आगई हैं।

सरस्वती के आगमन के फलस्वरूप समस्त संसार शोक रहित हो गया है। सभी की आँखों रूपी लाखों पंखों में से आकाश की निर्मलता उमड़ पड़ी है अर्थात् सबकी आँखें आकाश की निर्मल शोभा को प्रसन्न होकर दीख रही हैं। बौर लगी हुई शाखाओं (आम्र मंजरी) के ऊपर बैठकर कोयलें गाती हुईं मानो यह कह रही हैं कि होली तुम्हारे लिए मंगलमय हो। प्रातःकाल के समय विकसित होने वाले पत्तों रूपी बादलों की छाया में मोर नाचते हैं और आनन्द लूटते हैं। इस वासन्ती शोभा को देखकर कामनी नारियों के मन वश में नहीं रहे हैं, और उनके मन में प्रिय-मिलन की इच्छा उत्पन्न हो गई है। उधर निवारी भी विकसित होने के लिए प्रस्तुत हो गई है।

अलंकार—(१) रूपक—वसंत की माला। पात के मेघ। (२) संभेद पद यमक—लोक विशोक। (३) पदमैत्री—मिलने-खिलने। (४) छेकानुप्रास........ मन मूठ।

विशेष—१. मुहावरा—मूठ से छूटे

२. अंतिम पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है। कामिनियों ने प्रिय-मिलन की इच्छा को अभी तक रोक रखा था। वह दमित इच्छा अब

जाग्रत हो उठी और उनके मन में प्रियतम के साथ मिलकर सुखोपभोग की प्रबल इच्छा जाग्रत हो गई है।

३. अन्तः-प्रकृति और वाह्य-प्रकृति का सुखद समन्वय है। प्रकृति पर मन के भावों की छाया है।

४. कवि के उल्लास की व्यंजना स्पष्ट है।

(८४) कूची तुम्हारी फिरी कानन में

कूची .... पंचानन में।

शब्दार्थ—कानन=वन। आनन=मुख। श्वेत=सफ़ेद। शतदल=कमल। पंचानन=शिव।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **गीत गुंज** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि वसन्त की शोभा का वर्णन करता है।

भावार्थ—हे प्रिय ! ऐसा लगता है कि तुम्हारा ही रंग किसी ने कूची द्वारा वन के प्रत्येक पुष्प के मुख पर फेर दिया है। वासन्ती और गुलाबी रंगों की बहार फूट रही है। लाल-लाल फूलों वाले पलास के वृक्ष अपने मन में सुख के स्वप्न लिए मानो रक्ताभ होकर खिल उठे हैं। तालाबों के जल में नीले और सफ़ेद कमल खिल उठे हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि शिव के मस्तक पर केशर का तिलक चमक रहा हो।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश—आनन-आनन। रूपक—सुख स्वामी।

विशेष—वासन्ती शोभा का सर्वव्यापी वर्णन है।

(८५) कुँज कुँज कोयल बोली है

कुँज कुँज .... कलिका डोली है।

शब्दार्थ—मादकता=मस्ती। पल्लव=पत्ता। कानन=वन। श्रवण=कान। उन्मादन=मस्त बनाना। छादन=पत्ते। जरा=बुढ़ापा। शीकर=कण, बूँदें। कर=किरणें। सित=श्वेत, सफ़ेद। मंजु=सुन्दर, मधुर।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला द्वारा रचित है। उनके कविता काल के तृतीय चरण के कविता-संग्रह **अर्चना** से लेकर इसको **राग-विराग** में संकलित किया गया है। वसन्तागमन के अवसर पर प्राकृतिक शोभा के परिप्रेक्ष्य में कवि कोयल की कूक के प्रभाव का वर्णन करता है।

भावार्थ—प्रत्येक कुँज (वृक्षों-लताओं के समूह) में कोयल बोल रही है। वह वातावरण में अपने मादक स्वर की मस्ती को मिला रही है, कोयल की

मादक ध्वनि को सुनकर घने पत्तों वाले वन को कम्प सात्विक हो आया है। कानों में मस्ती भरने वाली कोयल की ध्वनि गुफाओं में भी गूँज उठी है। पत्तों के छत्ते स्वाभाविक आवरण बन कर चारों ओर तन गए हैं। इस प्रकार नस-नस में नवीन रस और आनन्द की एक विशेष प्रकार की मस्ती छा गई है। घर और वन के निवासियों ने मानो बुढ़ापा और मृत्यु से त्राण पा लिया है और उन्होंने नवजीवन रूपी मादक द्रव्य को पी लिया है। चारों ओर फूलों की सुगंधित पराग और रस की बूँदों की वर्षा हो रही है। प्रकृति की पत्ते रूपी चोली आज सुगंधित हो गई है। अर्थात् प्रत्येक पत्ते के नीचे फूल खिले हुए हैं।

ताराओं के शरीरों ने सूर्य की किरणों को अपने भीतर एकत्र कर लिया है अर्थात् वे सूर्य की किरणों को अपने भीतर धारण करके निरन्तर चमक रहे हैं। उज्जवल प्रकृति मानों नियमित रूप से अभिसार करने लगी है, भ्रमरियों की मस्त बनाने वाली गूँज से युक्त होकर कलियों की दुनियाँ में आमूल परिवर्तन हो गया है।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—कुंज-कुंज। (२) अनुप्रास—कुंज-कुंज कोयल। (३) पदमैत्री—छादन आच्छादन। अलिका की कलिका। (४) मानवी-करण—कोयल। कानन। गृहवन। (५) रूपक—स्वर की मादकता। पल्लव कानन। प्राणों का आसव। पल्लव की चोली। तारकतनु।

विशेष—१. लक्षणा—गृह-वन।

२. प्रकृति का मधुर संगीतमय वातावरण मुखर हो उठा है।

३. अभिसारिका—वह नायिका जो प्रियतम से मिलने के लिए छिप कर जाती है। लताएँ वृक्षों के साथ अभिसरण करती हुई दिखाई देती हैं आदि। चारों ओर मस्ती का आलम है। इसी से लिखा है कि समस्त प्रकृति अभिसरण करने लगी है। विशेषण विपर्यय के परिप्रेक्ष्य में मद का अर्थ अधिक सारगर्भित एवं चमत्कार पूर्ण हो जाता है।

(८६) फूटे हैं आमों में बौर

फूटे हैं .... **फूटे हैं।**

संदर्भ—यह कविता कवि निराला कृत उनके तृतीय चरण की कविता **अर्चना से राग-विराग** में से संकलित की गई है। इसमें कवि होली का वर्णन करता है।

भावार्थ—आम के वृक्षों में बौर फूट पड़ा है अर्थात् आम के वृक्ष बौर से लद गए हैं। वन-वन में भौंरों के झुंड डोल रहे हैं। जगह-जगह होली खेली जा रही है। समस्त मर्यादाएँ समाप्त हो गई हैं। फागुन का राग और रंग छाया हुआ है अर्थात् सबके ऊपर वासन्ती वातावरण की मस्ती है तथा स्थान-स्थान पर फागुन के गीत (फाग-होली) गाए जा रहे हैं। प्रत्येक बगीचे में होली खेली जा रही है। चारों ओर ओस की बूँदों रूपी मोती बिखर रहे हैं। इस वातावरण ने लोगों के मन को अपने वश में कर लिया है। लोगों के माथे पर अबीर लगा है और वे लाल हैं। उनके गालों पर सिंदूर लगा हुआ है। आँखें भी मस्ती के कारण लाल हो गई हैं। सारी प्रकृति गुलाबी वातावरण में रंग गई है, मानो गेरू के ढेले फोड़ने के कारण उनकी धूल चारों ओर फैल गई है।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—वन-वन। ठौर-ठौर। (२) मानवीकरण—भौंर, टूटे हैं। (३) छेकानुप्रास—रंग राग, बाग-वन। (५) रूपकातिशयोक्ति—मोती के झाग। (५) उत्प्रेक्षा की व्यंजना—गेरू के ढेले फूटे हैं।

विशेष—१. वसंत एवं होली के मादक प्रभाव का उन्मुक्त वर्णन है।

२. समस्त प्रकृति ही होली के रंग में रंगी हुई दिखाई गई है।

३. आँखें गुलाब—होली पर गुलाल मलने से आँखें लाल हो जाती हैं। इस अवसर पर लोग नशा भी करते हैं। नशे के कारण भी आँखें लाल हो जाती हैं। कामोद्दीपन के कारण भी आँखों में लाल डोरे आ जाते हैं।

(८७) अट नहीं रही है

अट नहीं .... पट नहीं रही है।

शब्दार्थ—अटना = समाना। आभा = चमक, सौन्दर्य। पट = पंख। पाटना = भरना। श्री = वैभव।

सन्दर्भ—यह कविता कवि निराला की रचना है। उनके कविता काव्य के तृतीय चरण की रचना अर्चना में से लेकर इसे **राग-विराग** में संकलित किया गया है। इसमें वसन्त ऋतु में प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया गया है।

भावार्थ—प्रकृति के शरीर में फागुन की यह सुन्दरता समा नहीं पा रही है अर्थात् प्रकृति में सुन्दरता फूटी पड़ रही है। हे प्रिय, पता नहीं तुम कहाँ बैठे हुए अपनी श्वास के द्वारा प्रकृति के कोने-कोने को सुगंध से आपूरित कर रहे हो। तुम्हीं ऊँची कल्पना के आकाश में उड़ने के लिए मन को पंख प्रदान

कर देते हो अर्थात् तुम्हीं मन में अनेक कल्पनाओं को जन्म देते हो। चारों ओर तुम्हारा ही सौन्दर्य व्याप्त है। वह अत्यन्त आकर्षक है। मैं उसकी ओर से आँख हटाना चाहता हूँ, परन्तु हटा नहीं पाता हूँ। इस नैसर्गिक सौन्दर्य में मन बंधकर रह गया है।

वन के वृक्षों की समस्त डालियाँ पत्तों से लद गई हैं। वे पत्ते कहीं हरे हैं और कहीं केवल कोपल होने से लाल हैं। उनके बीच में सुगन्धित फूल खिल रहे हैं। ऐसा लगता है कि उनके कण्ठों में सुगंधित फूलों की मालाएँ पड़ी हुई हैं। तुम वन में शोभा के वैभव को कूट-कूट कर भर रहे हो, परन्तु वह अपनी पुष्पलता के कारण उसमें समा नहीं रही है और चारों ओर बिखरी पड़ रही है।

अलंकार—(१) विशेषोक्ति—अटकहीं रही है, आँख·······हट नहीं रही है तथा पट नहीं रही है। (२) **असंगति**—कहीं—देते हो। (३) **पुनरुक्ति प्रकाश**—घर-घर, पर-पर। (४) रूपक—पुष्प माल। (५) पदमैत्री—मंद-गंध। (६) स्वभावोक्ति—सम्पूर्ण छंद।

विशेष—१. रहस्य भावना दृष्टव्य है। प्रकृति में प्रिय का दर्शन है।

२. प्रकृति की शोभा मुखर हो उठी है।

३. भाषा संगीतात्मक है।

(८८) खेलूँगी कभी न होली

संदर्भ—कविता संख्या ८७ के समान। कवि गोपी रूप में प्रियतम कृष्ण के प्रति अपनी अनन्यता का वर्णन करता है।

भावार्थ—जो मेरा साथी नहीं है, मैं उससे कभी भी होली नहीं खेलूँगी। मेरी आँखें तो श्रीकृष्ण के प्रेम में तुल गई हैं, अतः उनके अन्यत्र लगने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। तुमने मजाक में यह भी कहा है कि मोटे रेशम की चोली को अपने आप धोलो तथा अपना घूँघट अपने आप खोलो क्योंकि मैं पराए मोहल्ले की रहने वाली हूँ यानी परकीया हूँ।

जिनके साथ हमारा कोई नाता-रिश्ता होगा, उन्हीं के साथ मिलकर हम यह खेल खेलेंगे। उन्हीं के साथ पति-पत्नी का सम्बन्ध भी हो सकता है। मैं तो किसी अन्य के प्रेम में बिकी हुई हूँ।

(८९) केशर की, कलि की पिचकारी

शब्दार्थ—कलि = कलिका, कली। गात = शरीर। राग = प्रेम लाल।

कपोल = गाल । पराग = केशर । अमोल = अमूल्य । धवारी = कलाई । उदोत = प्रकाश । खग-कुल = पक्षियों का समूह । रत = मग्न । अविरल = निरन्तर, लगातार । विकल = व्याकुल । कल = सुन्दर । गगन बिहारी = पक्षी । अंग = अनंग, कामदेव ।

संदर्भ—कवि निराला का यह गीत उनके कविता-काल के तृतीय चरण के कविता-संग्रह **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित किया गया है । कवि वासन्ती प्रकृति का वर्णन करता है ।

भावार्थ—केशर की क्यारियों में कलियों रूपी पिचकारी ने पत्ते-पत्ते रूपी शरीर को केशर के रंग में डुबो दिया है । अनुराग रूपी पराग ने सबके कपोलों को रक्तिम बना दिया है । प्रतीत होता है कि प्रत्येक पौधा अमूल्य गुलाब की लालिमा लेकर गुलाबी रंग में रंग गया है । इस गुलाल से होली खेलने के लिए प्रत्येक वृक्ष ने अपना वक्ष-स्थल खोल दिया है । प्रकृति प्रकाश रूपी दीपक तथा सुगंधित पवन रूपी धूप जलाकर (वसंत की) आरती कर रही है तथा पक्षियों के समूह अपने सैकड़ों कण्ठों की मधुर ध्वनि में गीत गा रहे हैं । उनके साथ प्रकृति के संगीत के रूप में मृदंग की स्वर-तरंगों के तीर चारों ओर चलाए जा रहे हैं अर्थात् प्रकृति के संगीत समस्त वातावरण को बेध रहा है । इस प्रकार समस्त प्रकृति अनन्त सत्ता के भजन में निरन्तर निमग्न होकर रह गई है । आकाश में उड़ने वाले पक्षी काम-पीड़ित होकर अपने भाँति-भाँति के संगीत द्वारा समस्त वातावरण को संगीतमय बना रहे हैं ।

अलंकार—(१) वृत्यानुप्रास—केसर की कलि, तरुतरु तन । (२) रूपक—कलि की पिचकारी, राग-पराग, पात-गात, आरती-जोत, गन्ध-पवन-धूप, तरंग तारे । (३) पुनरुक्ति प्रकाश—पात-पात, तरु-तरु । (४) सभंग पद यमक—राग-पराग, लाल गुलाब, रति अविरत । (५) छेकानुप्रास—धूप धवारी, कुल-कण्ठ, तरंग तीर । (६) पदमैत्री—संग मृदंग, तरंग । (७) वीप्सा—राग-राग । (८) मानवीकरण—सम्पूर्ण गीत ।

विशेष—१. प्रकृति की शोभा एवं सुन्दरता का भावपूर्ण वर्णन है । इस गीत में प्रकृति के संगीतमय रूप का गत्यात्मक चित्रण किया गया है, जो सर्वथा सहज-स्वाभाविक है ।

२. प्रकृति किसी अव्यक्त सत्ता की आरती उतारती हुई दिखाई गई है । रहस्यभाव की मार्मिक व्यंजना है ।

३. भाषा-शैली नादपूर्ण एवं संगीतात्मक है।

४. इस गीत में कवि निराला का प्रकृति-प्रेम सर्वथा मुखर हो उठा है।

(६०) गोरे अधर मुसकाई

गोरे .... सगाई।

शब्दार्थ—परिमल=पराग, सुगंध। निर्झर=झरने। घात=चोट। पावन=पवित्र।

संदर्भ—कवि निरालाकृत यह लघुगीत उनके कविता-काल के तृतीय चरण के कविता-संग्रह **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित किया गया है। कवि वसन्त ऋतु के समापन का वर्णन करता है। वह एक प्रकार से वसंत को विदाई देता है।

भावार्थ—प्रकृति ने श्वेत कलियों रूपी अपने गोरे होठों से कहा कि वसंत को हमारी विदाई है। प्रत्येक अंग को नचाकर उसने वसंत को विदाई दी।

अभी तक सुगंध के झरने चारों ओर बह रहे थे। उन्हें नेत्र बराबर देख रहे थे। वे झरने बन्द हो गए हैं। पुरुष रूप नेत्र खुले ही रह गये। वे मानो यह कह रहे हैं कि हमने परिमल की इस राशि की खातिर शिशिर के कसाले सहे थे। हम उसका सम्यक प्रकारेण आनन्द भी नहीं ले पाए और उसके समापन का अवसर आ गया। यह तो कुछ बात बनी नहीं। इस प्रकार बात कहाँ से कहाँ पहुँच गई? हम परिमल के भोग की योजना ही बनाते रहे और यहाँ उसके समापन का अवसर उपस्थित हो गया।

पूर्व दिशा के मस्तक पर उषा काल के लाल सूर्य का टीका लग गया। इसके रूप में प्रियतम का एक स्वाभाविक संदेश चमक उठा है। पति के पवित्र प्रेम में बंधे रहने का भय जाता रहा है। अरुणिमा के रूप में मानों जवानी फूट पड़ी है। फलतः समस्त सम्बन्ध रूपी बन्धन समाप्त हो गए हैं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—प्रकृति। (२) रूपक की व्यंजना—अधर। परिमल के निर्झर उषा को टीका। (३) छेकानुप्रास—वसंत बिदाई। (४) पुनरुक्तिप्रकाश—अंग-अंग। (५) रूपकातिशयोक्ति—भाल।

विशेष—१. प्रत्यावर्तन कालीन वसंत का स्वाभाविक वर्णन है।

२. संदेसा पीका—रहस्य भावना की व्यंजना है।

३. छुट गई और सगाई—कवि की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की छाप

स्पष्ट है। वह कदाचित अपनी दमित काम-भावना को भी व्यक्त करना चाहता है।

(६१) फिर उपवन में खिली चमेली

फिर उपवन .... **रँगरेली।**

शब्दार्थ—उपवन=उद्यान, बगीचा। दल=समूह। सुनियत=स्थिर। विव्रत=खुली हुई, नंगी।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ निरालाजी की कविता **फिर उपवन में खिली चमेली** से उद्धृत हैं। यह कविता उनके कविता-काल के तृतीय चरण की रचना है और उनके कविता-संग्रह **गीतगुंज** में से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि चमेली के विशेष रूप से खिलने का वर्णन करता है।

भावार्थ—इस समय मन्द और सुगंधित वायु बह रहा है। अन्य फूल भी खिले हैं, परन्तु चमेली का खिलना विशेष रूप से आकर्षित करने वाला है। ऐसा लगता है कि बगीचे में अकेली चमेली ही खिली है। इस चमेली की लता ने खिलकर अपने सौन्दर्य-विकास के द्वारा युवतियों के सौन्दर्य के मानो समस्त साधन छीन लिए हैं, अर्थात् इसके रूप के सम्मुख समस्त सुन्दरियाँ श्रीहीन सी हो गई हैं।

बादल के समूह के समूह छाए हुए हैं। चमेली के साथ-साथ कमल भी खिल उठे हैं।

चमेली का यह रूप और विलास अपराजेय है। इसके नयन स्थिर दिखाई देते हैं अर्थात् इसकी ओर जो देखता है वह देखता ही रह जाता है। यह अपने ही यौवन के उभार के कारण खिलकर खुल गई है। (खिलने पर कलियों का अंग-प्रत्यंग प्रकट दिखाई देने लगता है।) जुही, मालती आदि लताएँ भी इसके साथ सखियों के रूप में हँसती हैं, खेलती हैं और रंगरेलियाँ मनाती हैं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—चमेली, जुही, मालती। (२) पदमैत्री—साज आज, दल के दल बल। (३) छेकानुप्रास—कोमल कमल।

विशेष—१. विशेष्य विपर्यय—नयन की सुनियत।

२. यौवन से विव्रत, सखियाँ कहती हैं रंगरेली जैसे वाक्य कवि की काम-कुण्ठा के परिचायक हैं। विव्रत के स्थान पर **विकसित** शब्द सर्वथा पर्याप्त एवं सार्थक होता।

३. चमेली के विकास से विशेष रूप से तथा अन्य लताओं के विकास से सामान्य रूप से प्रकृति का समस्त वातावरण एकदम रंगीन एवं मधुर हो गया है।

(६२) फिर बेले में कलियाँ आईं

(क) फिर बेले में .... **लहराईं ।**

शब्दार्थ—अलियाँ=भ्रमरियाँ । स्फीत=फैलना, खिलना । नैहर=मायका। कलियाँ=सखियाँ, बच्चियाँ ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला द्वारा लिखित कविता **'फिर बेले में कलियाँ आईं'** से उद्धृत है। यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **'सांध्य काकली'** से **राग-विराग** में संकलित है। इसमें कवि बेला के विकास के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करता है।

भावार्थ--बेले की लता पर फिर से कलियाँ लग गई हैं। इन्हें देखकर भ्रमरियाँ प्रसन्न हो गई हैं। जो पेड़ पौधे बिना सींचे हुए भी आज तक सूखे नहीं थे, वे अब यकायक जल प्राप्त करके हरे-भरे हो गये हैं। आज इन पौधों की प्रत्येक नस हर्षित दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि लड़कियाँ अपने मायके में आकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं।

अलंकार—(१) मानवीकरण—अलियाँ, वृक्ष। (२) निदर्शना—नैहर—लहराईं। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—नस-नस।

विशेष— १. प्रकृति पर चैतन्यारोपण है।

२. नैहर की कलियाँ लहराईं—सर्वथा नवीन प्रयोग है। इससे कवि का वात्सल्य व्यंजित है, विशेषकर अपनी पुत्री सरोज के परिप्रेक्ष्य में।

(ख) सावन कजली .... **उतराईं ।**

शब्दार्थ—पूर्वा=पूर्व दिशा से आने वाली हवा। धासे=चमक उठे। वैदेशिक=परदेशी। बन्दनवार=स्वागत-द्वारा। सरिताएँ=नदियाँ। उतराईं=किनारे तोड़ कर बहने लगीं।

संदर्भ—पूर्व छंद (क) के समान।

भावार्थ—सावन का महीना है। कजली और बारहमासी नामक गीत पूर्वी हवा के साथ चारों दिशाओं में व्याप्त होकर वातावरण को चमकदार बना रहे हैं। समस्त वातावरण एकदम बदल गया है। पत्ते-पत्ते से संगीत प्रस्फुटित हो रहा है, आम्रबौर की उद्दीपक गंध ने परदेशी प्रियतमों के मन में प्रिया की स्मृति जगा दी है और वे अपने-अपने घर आ गए हैं। चारों ओर की हरियाली

स्वागत द्वारों पर बंधी हुई बन्दनवार की भाँति सुशोभित हो रही है तथा चारों ओर नदियाँ उमड़कर किनारे तोड़कर बह रही हैं ।

अलंकार—(१) मानवीकरण—पात-पात । (२) पुनरुक्ति प्रकाश—उड़-उड़, पात-पात ।

विशेष—१. पावस का सजीव वर्णन है । प्रकृति में एक प्रकार का उल्लास दिखाई देता है ।

२. आमों की सुगंध—आम्रमंजरी कामदेव के पंच वाण में एक वाण है ।

३. वियोगी, अब अपने आप को रोक नहीं सके हैं और वे अपनी-अपनी प्रियतमाओं के पास आ गए हैं । कालिदास के यक्ष को भी श्रावण के मेघ ने विचलित कर दिया था ।

(६३) मालती खिली, कृष्ण मेघ की

मालती खिली .... **पके आम की ।**

शब्दार्थ—छायाकुल=छाया से युक्त (पूर्ण) । धरा=पृथ्वी । कर=सूर्य की किरणे । पीड़न । पल्लवित=विकसित । निदाघ-दाह=ग्रीष्म का ताप ।

संदर्भ—**यह मालती खिली, कृष्ण मेघ की** शीर्षक कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **गीतगुंज** से संकलित है । इसमें कवि पावस की शीतलता का वर्णन करता है ।

भावार्थ—अब समस्त पृथ्वी पर छाया हो गई है । वह ग्रीष्म के सूर्य की किरणों के उत्पीड़न से मुक्त होकर अधिक मधुर प्रतीत हो रही है । चारों ओर खूब हरियाली है और आँखों को मनोहर प्रतीत हो रही है । इसके पहले गर्मियों का अत्यधिक ताप था । वर्षा के प्रभाव से ग्रीष्म का ताप अब सुखद हो गया है । चारों ओर मन्द सुगंध फैल रही है । वर्षा में भीगकर लोग उत्साह से भर गए हैं तथा पत्ता-पत्ता हिल रहा है ।

ज्वार, अरहर और सन के अंकुर उगकर नव जीवन का संचार कर रहे हैं अब फिर पके आमों की सुगंध वाली हवा बहने लगी है ।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश—मन्द-मन्द, गली-गली ।

विशेष—१. लक्षणा-स्निग्ध—निदाघ-दाह । गीला-उत्साह ।

२. संगीतमय पदावली दृष्टव्य है ।

३. प्रकृति का भावपूर्ण वर्णन है ।

४. घ्राण—बिम्बों के माध्यम से प्रकृति का संश्लिष्ट वर्णन किया गया है।

५. **गली-गली गीला उत्साह** में कवि की कोमल कल्पना देखते ही बनती है।

(६४) बांधो न नाव इस ठाँव बन्धु

शब्दार्थ—ठाँव = स्थान, जगह।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से उद्धृत है और उससे लेकर इसे **राग-विराग** में संकलित किया गया है। कवि किसी प्राचीन सुखद घटना का वर्णन करता है।

भावार्थ—हे बन्धु! इस स्थान पर अपनी नाव मत बांधो। अन्यथा पुरानी बातों को लेकर गाँव के सब लोग फिर उन्हीं बातों को पूछने लगेंगे। यह वही घाट है जहाँ पर हमारी प्रेयसी पानी में घुसकर हँस-हँस कर स्नान किया करती थी। उसके सौन्दर्य पर हमारी टकटकी लग जाती थी तथा हमारे दोनों पैर काँपने लगते थे।

वह हँसकर बहुत सी बातें कहा करती थी, परन्तु सदैव मर्यादा में बनी रहती थी। वह सबकी बात सुनती थी, दुर्जनों के व्यंग्य वचन सहन करती थी तथा सबका मन प्रसन्न करती थी।

विशेष—(१) स्मृति संचारी है। (२) कवि की काम कुण्ठा है। वर्णन में वैयक्तिक अनुभूति है। (३) गाँव में लक्षणा है। (४) आँखें·······पाँव = सात्त्विक की व्यंजना है। (५) वर्णन में अश्लीलता की छाया है।

(६५) फिर नभ घन घहराए

फिर नभ ···· ···· **दिखलाये।**

शब्दार्थ—नभ = आकाश। घन = बादल। कौंधी = चमकी। चपल = बिजली। अलक = बालक, केशपाश। दिवस = दिन। निशा = रात। ज्योति-छाया = प्रकाश की छाया। आतप = धूप, गर्मी। मुख-प्रसून = मुख रूपी पुष्प। घहराए = गहरे हो गए। परी = अप्सरा।

संदर्भ—कवि निराला विरचित यह गीत **फिर नभ घन घहराए** उनके कविता-काल के तृतीय चरण की रचना **गीतगुंज** से **राग-विराग** में संकलित है। इसमें पावस और प्रेयसी के सौन्दर्य का वर्णन है।

भावार्थ—आकाश पर बादल फिर से गहरे छा गए हैं। चारों ओर बादल छा गए हैं।

बादल रूपी केश-पाश में बँधी हुई उज्जवलता की बिजली चमकी। यह

शोभा अप्सरा सदृश प्रियतम के मुख की शोभा के समान है। बरसने वाली बूँदें प्रियतम की आँखों से ढुलक कर आने वाले आँसू हैं, जो मेरी प्रिया के उरोज रूपी भूमि तल पर पहुँच रहे हैं। बादलों के अनवरत रूप से छाये रहने के कारण दिन भी स्वप्न भरी रात्रि के समान सुखदायी प्रतीत हो रहा है—

समस्त भू मण्डल पर जैसे बादलों के प्रकाश की छाया हो रही है। ग्रीष्म के कारण जो फूल आदि कुम्हला गए थे, वे अब खिलकर सुशोभित हो रहे हैं अथवा मनभावन प्रतीत हो रहे हैं।

चारों ओर खूब हरी-हरी दूब (घास) उग आई है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने प्रत्येक गली में अपनी सुखद सेज बिछा ली है। प्रकृति सुन्दरी ने इस सम्पूर्ण शोभा में अपने हाथ रंग कर दिखा दिए हैं।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—घन घहराए, परीप्रिया, सुखद स्वप्न। (२) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—अलकबंध। (३) रूपक—परी-प्रिया, पृथ्वी के उर, मुख-प्रसून, प्रकृति-सुन्दरी। (४) उपमा—प्रिया-मुख छवि सी, शोभा के रंग। (५) विरोधाभास—सुखद स्वप्न, ज्योति, छाया। (६) पुनरुक्तिप्रकाश—गली-गली। (७) मानवीकरण—प्रकृति। (८) स्वभावोक्ति—सम्पूर्ण छंद। (९) अतिशयोक्ति की व्यंजना—दिवस निशा का स्वप्न।

विशेष—१. स्मृति संचारी की व्यंजना।

२. श्रावन भादों—ये दो महीने पावस ऋतु के माने जाते हैं।

३. वर्षा का भावपूर्ण वर्णन है। यह परम्परागत षट्ऋतु वर्णन की पद्धति पर है।

४. कवि प्रकृति में प्रेयसी का रूप देखता है। यह छायावादी काव्य की एक मान्य प्रवृत्ति है। इस प्रकार के कथन कवि की अभुक्त काम-भावना के द्योतक हैं।

(९६) प्यासे तुमसे भरकर हरसे

प्यासे .... **बहार से।**

शब्दार्थ—हरसे = हर्षित हुए, प्रसन्न हुए। उनगी = उग आई, उमड़ आई। श्याम = काली। अटा-अटा = प्रत्येक अटारी पर। परसे = स्पर्श किए (करे)। अविरत = लगातार। अविकृत्रिम = स्वाभाविक।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निरालाकृत हैं। ये उनके तृतीय चरण की

कविता **प्यासे तुमसे भरकर हरसे** से उद्धृत है। यह कविता उनके तृतीय चरण के कविता-संग्रह **गीतगुंज** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। इसमें पावस के बादलों का सौन्दर्य एवं सुखद प्रभाव का भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

भावार्थ—हे पावस के बादलो ! तृषित प्राणी एवं पदार्थ तुम्हारे बरसने से तृप्त होकर आनंदित हो गए हैं। श्रावण के बादलों ने सबके मन को प्रसन्न एवं हरा-भरा कर दिया है। आँखों में काली-काली घटाएँ छा गई हैं, तथा बिजली की चमक प्रकृति की नस-नस को कण-कण को सुशोभित कर रही है। प्रत्येक अटारी पर हरियाली फैल रही है। यह स्पर्श करके अंगों को रंगीला बना रही है।

बादलों की लगातार रिम-झिम प्रकृति की वीणा से निकलने वाली ट्रिम-ट्रिम की मधुर ध्वनि है। पश्चिमी पवन के रेले प्रतिक्षण आकर रिम-झिम को हिचकोले देने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार मन के भीतर और बाह्य प्रकृति से मृदंग के बजने जैसे ध्वनि प्रतिक्षण आती रहती है।

अलंकार—(१) स्वाभावोक्ति—सम्पूर्ण कविता। (२) मानवीकरण—बादल। (३) पदमैत्री—प्यासे हरसे, रंगों। (४) पुनरुक्तिप्रकाश—नस-नस, अटा-अटा। (५) रूपक—रिम झिम-वीणा। (६) छेकानुप्रास—पवन पश्चिम।

विशेष—१. पावस का स्वाभाविक एवं नाद-सौन्दर्य युक्त वर्णन है। इसमें प्राकृतिक स्वर-संगीत की मादकता दृष्टव्य है।

२. लक्षणा—नस-नस।

३. ध्वन्यात्मकता—ट्रिम ट्रिम, रिमझिम।

४. मृदंग वादन, रिमझिम, ट्रिमट्रिम, अविकृत्रिम आदि शब्दों के कारण पदावली अत्यन्त कोमलकांत बन गई है।

५. अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का सुखद सामंजस्य देखते ही बनता है।

६. स्पष्ट है कि कवि को पावस ऋतु से विशेष प्रेम है। श्रावण-भादों—ये दो महीने **पावस** ऋतु कहे जाते हैं।

७. **श्याम-घटा** में यदि श्याम पर श्लेष मान लिया जाय, तो यह वर्णन रीतिकालीन परम्परा के अंतर्गत आ जाता है, जहाँ ब्रज की गोपियाँ श्रीकृष्ण रूपी श्याम घन को अटारियों पर खड़ी होकर निहारती हैं और उनके आगमन

का संदेश पाकर फूली नहीं समाती हैं—**अंगों के रंगों के परसे** का लाक्षणिक अर्थ यही होता है।

इसका अर्थ एक अन्य प्रकार से भी किया जा सकता है। पावस की वर्षा के समय प्रत्येक अटारी पर गायन-वादन होता है तथा नायक-नायिका अथवा प्रियतम एवं प्रेयसी पारस्परिक दर्शन स्पर्श आदि द्वारा आनन्दित होते हैं—**फैली हरियाली अटा-अटा** का लाक्षणिक अर्थ यही हो सकता है। जो भी हो, कवि पावस में चारों ओर हर्षोल्लास का वातावरण देखता है। इस संदर्भ में सूक्ष्म निरीक्षण उसकी भावुकता देखते ही बनती है।

(६७) जिधर देखिए श्याम बिराजे

जिधर देखिए .... **सँवाजे।**

शब्दार्थ—श्याम=काले रंग के बादल, श्रीकृष्ण। वारिद=बादल। गुल्म=झाड़ियाँ। सुरभि=सुगंध। बलाका=बादल। शालि=अनाज, धान। मयूर=मोर। कूजन=कलरव, चहक। श्रुति=वेद, कान। निवाजे=कृपा करें। तामरस=लाल कमल। अनिल=हवा।

संदर्भ—कवि निराला विरचित **"जिधर देखिए श्याम बिराजे"** शीर्षक यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **गीतगुंज** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। इसमें कवि श्लेष के द्वारा एक ओर पावस की सुन्दरता तथा दूसरी ओर श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन करता है।

भावार्थ—जिधर भी देखो उधर ही साँवले श्याम का साँवलापन विराज रहा है। वनों के कुंज, यमुना का जल, आकाश और घने बादल सभी श्याम के रंग में रंग कर श्याम या साँवले हो उठे हैं।

धरती श्याम है, घास-घास, झाड़ियाँ, वृक्ष सुगंधित पत्तों के समूह आदि सभी श्याम वर्ण हो उठे हैं। बादल श्याम वर्ण हैं, धान्य (अनाज) श्याम वर्ण है। आकाश में जो बादलों का शोर है वह श्याम की विजय की खुशी में बजने वाले बाजे ही हैं।

मोर श्याम वर्ण हैं, कोयलें श्याम वर्ण हैं। कोयल के चहकने में, मोर के नाचने में मधुर श्यामलता का आभास दिखाई देता है। कामदेव भी श्याम हैं और मध्यान्ह का सूर्य भी श्याम वर्ण हो जाता है तथा काजल लगे हुए नेत्र भी श्याम वर्ण हैं।

वेद के अक्षर श्याम हैं तथा दीपक की लौ पर भी श्याम वर्ण धुआँ छाया रहता है। लाल-कमल श्याम वर्ण है, तालाब श्याम है, वायु श्याम है, इस प्रकार सर्वत्र श्याम की शोभा की सजा-सँवार रही है।

अलंकार—(१) रूपक—सुरभि अंचल। (२) छेकानुप्रास—सुरभि साजे। (प्रत्येक पंक्ति) (३) वृत्यानुप्रास—श्यामि शालि श्याम, विजय बाजे, बाजे। (४) श्लेष—श्याम, बाजे।

विशेष—१. श्याम की सर्वव्यापकता का भावपूर्ण वर्णन है। जो कुछ सुन्दर एवं आकर्षक है, सब श्याम है। इस प्रकार श्याम का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में किया गया है। श्याम वस्तु ब्रह्म का पर्यायवाची है।

२. लक्षणा—श्रुति के अक्षर श्याम लक्षणा के द्वारा इसका यह अर्थ होगा कि वेदों के अक्षरों में श्याम का ही गुणगान है, अर्थात् ब्रह्म का निरूपण करने वाले वेद श्याम अक्षरों में ही लिखे गये हैं।

(९८) पारस मदन हिलोर न दे तन

पारस ... . भावन।

शब्दार्थ—पारस = एक कल्पित पत्थर जो अपने स्पर्श से लोहे को सोना (सुवर्ण) बना देता है। लाक्षणिक अर्थ होगा सुजान-ज्ञानी व्यक्ति। मदन = कामदेव। हिलोर = लहर। द्रुमराजि = वृक्षों की पंक्तियाँ। वसन = वस्त्र। अलियों = भँवरों। नूपुर = पायजेब। बिछड़े = बिछुड़े हुए। मन-भावन = मन को प्रिय लगने वाले, प्रियतमा।

संदर्भ—यह पंक्तियाँ निरालाकृत **पारस, मदन हिलोर न दे तन** कविता की हैं। यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **गीतगुंज** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि श्रावण मास के कामोद्दीपक प्रभाव का वर्णन करता है।

भावार्थ—हे चतुर शिरोमणि, सावन के बादल झूम-झूमकर बरस रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि काम देवता तुम्हारे मन को झकझोर कर रख दे। वन में वृक्षों की पंक्तियों ने कामदेव के सब साज सजा रखे हैं। हवा में लहराते हुए पत्ते कामदेव के वस्त्र हैं। जुही की खिली कलियों से युक्त कुंजों में मधु के लोभी भौंरों की आवाज ही कामदेवता के नूपुरों की मधुर ध्वनि है। ऐसे अवसर पर विदेशी प्रियतम अपने-अपने घर आ गए हैं।

अलंकार—(१) पदमैत्री—मदन तन, उर उड़े, अलियों कलियों। (२)

पुनरुक्ति—झूम झूम, (३) सांगरूपक बन·······बाजे। (४) वृत्यानुप्रास—साज सब साजे।

विशेष—१. पावस का स्वाभाविक वर्णन है।

२. पावस के बादलों को देखकर ही कालिदास का यक्ष अपनी प्रिया के वियोग में उन्मत्त हो उठा था। कवि ने इन बादलों को मनरूपी गढ़ ढहा देने वाला हाथी कहा है—"चढ़ि कैं मनो गजराज बली गढ-ढावन खेल मचाय रह्यौ।" (मेघदूत)

(९९) केश के मेचक मेघ छूटे

केश के ···· ···· दुःख के पौर टूटे।

शब्दार्थ—केचक=श्याम। गदगद्=प्रसन्न, उमड़ती हुई। पौर=द्वार, बन्धन।

संदर्भ—कवि निराला रचित यह कविता '**केश के मेचक मेघ छूटे**' उनके तृतीय चरण की रचना **गीतगुंज** से लेकर **राग-विराग** में संकलित है। कवि पावस कालीन प्रकृति को एक नायिका के रूप में देखता है।

भावार्थ—इधर काले केश लहरा रहे हैं, उधर काले बादल आकाश से छँट गए हैं। प्रकृति का प्रत्येक पत्ता इसके तलवों पर न्यौछावर है अर्थात् नायिका के तलवे प्रत्येक पत्ते (कोपल से भी) की अपेक्षा अधिक कोमल हैं। सुख के कारण इतराने वाली आँखों में रति-भावना वृक्ष की डाली में लगे हुए फूलों के समान सुशोभित है। सुगन्ध रूपी रम्भा नामक अप्सरा चारों ओर मंडला कर ऊपर की ओर उठने लगी है। बादलों के हट जाने के बाद प्रकृति शोभा उस सुन्दरी के मुख के समान हो गई है जिसके सिर से साड़ी खिसक गई हो। वर्षा के बादलों के कारण जो सूर्य बहुत दिनों से कभी नहीं दिखाई दिया था, वह दिखाई देने लगा है। नदी की प्रत्येक भँवर गद्‌गद् होकर मस्त हो रही है। अब दुःख के समस्त बन्धन (कारण) समाप्त हो गए हैं।

अलंकार—(१) रूपक—मेचक केश के मेघ। (२) पुनरुक्तिप्रकाश—पल्लव-पल्लव। भँवर-भँवर। (३) अनुप्रास—पल्लव-पल्लव, पगतल। (४) प्रतीप—पल्लव-पल्लव लुटे। (५) उदाहरण—सुख की शाखों में। (६) छेकानुप्रास—रंभा के रग खिची खसी, (७) मानवीकरण—नद।

विशेष—१. नवीन पद्धति पर नख-शिख वर्णन का यह एक अच्छा उदाहरण है।

२. शरद के सुखद आगमन का वर्णन है। बिहारी ने ठीक ही लिखा है—
समै आइ सुन्दर सरह काहि न करत अनंद।

३. "**सुख की इतराई आँखों**"—यह व्यंजित होता है कि नायिका मध्यमा प्रेमगर्विता है।

४. वर्षा के प्रति रसिकतापूर्ण आकर्षण द्रष्टव्य है।

(१००) धिक मनस्सब, मान, गरजे बदरवा

शब्दार्थ—धिक्=धिक्कार है। मनस्सब=पदवी। वारि=पानी। कामद=कामोद्दीपक, काम उत्पन्न करने वाला, सुन्दर। शैल=पर्वत। बरजे=रोके।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **गीतगुंज** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। इसमें कवि शरद ऋतु के थोथे बादलों की गरज को धिक्कार रहा है।

भावार्थ—व्यर्थ ही गरजने वाले इन बादलों के बादल पद एवं ऐश्वर्य को धिक्कार है, जो गान पहले पावस ऋतु में गाए जा चुके हैं, उन्हीं को दुबारा उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील गरजने वाले बादलों को धिक्कार है।

अब ये बादल फटे हुए धनुष से छूटे हुए तीर के समान इधर-उधर छंटे और छूटे फिरते हैं। पानी की बूँदों के वस्त्र भी अब फटकर और बिखर बँट कर रह गए हैं। गले के गीत भी फटे हुए बाँस की आवाज के समान लग रहे हैं—अर्थात् पावस के बाद पावस के गीत गाना वेवक्त की शहनाई है। ऐसा लगता है कि ये बादल अब पेड़ों के गहरे तलों में ही गरज रहे हैं।

ये बादल सुन्दर पर्वत शिखरों में घुसकर फैलकर रह गए हैं। अब ये वायु के प्रबल प्रवाह के साथ एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमते फिरते हैं। अब गाँव-गाँव से हटकर इनका गायन नगरों के घरों में सुनाई दे रहा है अर्थात् इनके गर्जन में कृत्रिमता आ गई है। अब प्रत्येक चतुर नारी बादलों को गरजने से मना करती है।

अलंकार - १. छेकानुप्रास—मनस्सब मान, फूले फिले, छटे छटे।

२. **वृत्यानुप्रास**—बूँद वारि वसन छूटे बटे।

३. **पदमैत्री**—गायन चरायन, गले चले, घन वन।

४. **सभंग पद यमक**—तल अतल।

५. रूपक—चीर के धनुष तीर, बूँद के वारि।

६. पुनरुक्ति प्रकाश—ग्राम-ग्राम ।

विशेष—१. धिक-बदरवा—निराला अपने आपको विद्रोही एवं युग प्रवर्त्तक कवि मानते थे । इस पंक्ति का व्यंग्यार्थ यह है कि उन कवियों को धिक्कार है जो प्राचीन विषयों को लेकर परम्परावादी काव्य का सृजन करते हैं ।

२. **ग्राम-ग्राम से नगर-घर**—लक्ष्यार्थ यह है कि नगर निवासी बौद्धिकतावादी कवि परम्परावादी कृत्रिम काव्य की रचना करते हैं । वास्तविक कविता तो ग्रामीण वातावरण के समान सहज स्वाभाविक एवं अकृत्रिम होती है और वह सदैव नवीन अर्थात् परम्परा से हटकर होती है । द्दष्टव्य यह है कि इतना सब कुछ कहने पर भी निराला ने बहुत कुछ वही लिखा जो हिन्दी के रीतिकाल के आचार्य कवि लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व लिख चुके थे। इनका अधिकांश प्रकृति-वर्णन रीतिकालीन प्रकृति वर्णन की तरह उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आता है अथवा आलंकारिक रूप में किया गया है। पावस के कामोद्दीपक प्रभाव का वर्णन तो रीति कवियों ने जी खोलकर किया है। निराला की कविता की पदावली भी वैसी ही कोमलकान्त एवं नादयुक्त है । अन्तर केवल यह है कि उनकी कविता की भाषा ब्रज है इनकी भाषा खड़ी बोली है ।

(१०१) धिक मद् गरजे बदरवा

धिक मद् .... **कगरवा ।**

शब्दार्थ—झर=झड़ी । कगरवा=किनारे, टीले । नरवा=नर मनुष्य ।

संदर्भ—चार पाँच पंक्तियों का यह गीत कवि निराला के तृतीय चरण की कविता **सांध्य काकली** से संकलित है क्वार के थोथे बादलों का वर्णन है ।

भावार्थ—व्यर्थ के अहंकार में भरकर गरजने वाले बादलों को धिक्कार है । इनकी बिजली चमक कर लोगों के हृदय में भय उत्पन्न करती है । मनुष्यों एवं कगारों को वे ही बादल अच्छे लगते हैं जो गहरी झड़ी लगाकर बरसते हैं ।

विशेष—कवि व्यर्थ के अहंकारी लोगों को धिक्कार बता रहा है । क्वार के बादल गरजते बहुत हैं—'गग्-गग् गाजत गगन घन क्वार के', परन्तु वे केवल फुहार सी ही छोड़कर रह जाते हैं । कवि का संकेत ऐसे ही कवियों के प्रति है ।

(१०२) समझे मनोहारि वरण जो हो सके

(क) समझे मनोहारि .... **स्नेह से हँसे ।**

शब्दार्थ—वरण होना=अपनाया जाना । धूह=धुआँ मात्र । सरोरुह=

कमल । गेह = घर । दधि = दही । दुग्ध = दूध । मेह = वर्षा । रसना = जीभ । अरस = रसरहित, नीरस । परस = स्पर्श ।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **सांध्य काकली** से **राग-विराग** में संकलित हैं। कवि हरि की कृपा द्वारा धरती के सुखद बनने की कामना करता है।

भावार्थ—जो स्वयं अपनाए जाने योग्य होता है, वही सौन्दर्य के मूल्य को समझता है—कद्र के काबिल ही कद्रदान हो सकता है। पानी के बिना धुँआरे बादलों से तिनका भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। तालावों में कमल, शरीरों में जीवन, घरों में दूध-दही और बादलों में जल नहीं रह गया है। ऐसी विषम परिस्थिति में भगवान कृपा ही तुम्हें आनंदित करके हँसने योग्य बना सकती है।

अलंकार—१. निदर्शना—समझे·······धूह से।

विशेष—समसामयिक विषम परिस्थिति का परोक्ष वर्णन है।

(ख) **विश्व** ···· ···· **सधे**।

शब्दार्थ—अन्यथा = नहीं तो। जन्म-पाश = जन्म का जाल (बधन)। कलुष = पाप। काल-कवलित = काल का ग्रास। निराश्वास = आश्रय-रहित।

संदर्भ—उपर्युक्त छन्द के समान।

भावार्थ—यदि भगवान की कृपा नहीं हुई, तो यह संसार नाश की ओर ही बढ़ता जा रहा है। यदि नहीं होता है तो जन्म के जाल-बन्धनों में पड़ने की व्यथा दुबारा भोगनी पड़ती है। पाप करके काल का ग्रास बनना पड़ता है। पृथ्वी की यह उल्टी गति है। इसके निराश्रय प्राणी भगवान के हाथों द्वारा ही सजे हुए हैं।

अलंकार—वृत्यानुप्रास—कलुष काल कवलित।

विशेष—इस छन्द में भगवान की कृपा के प्रति कवि की आस्था अभिव्यक्त है। वह इस संसार को पाप कर्म का क्षेत्र मानता है।

(१०३) ताक कमसिन वारि

ताक कमसिन ···· ···· **ककात् सिनवारि**।

नोट—इस कविता में न संदर्भ है, न अर्थ है। यह शब्दों के साथ खिलवाड़ है। एक संगीतज्ञ की भाँति सरगम के पलटों की तरह एक ही पंक्ति को कई तरह से लिखने का प्रयत्न है। हम इसे **अकविता** के आन्दोलन का पूर्वरूप

कह सकते हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे इस कविता को पढ़कर ही संतोष कर लें। बहुत करें तो **राग-विराग** के सम्पादक डा० रामविलास शर्मा के इस वक्तव्य के अनुसार इसके अर्थ करके देख लें; यथा — 'और ताक कमसिनवारि' — यह क्या बला है ? यह भी निराला की क्लासिकी संगीत-रचना है। पंक्ति एक, शब्दों को उलट-पलट कर कहने की दस तरकीवें—'कमसिन' शब्द पर ध्यान देंगे तो 'ताक' क्रिया सार्थक हो जाएगी, 'क्लासिकी' संगीत रचना को संगीत की तरह ही आप समझ सकेंगे।

[ताक कमसिनवारि=कम उम्र वाली नायिका को ताको।]

(१०४) शरत की शुभ्र गंध फैली

शरत की .... है थैली।

शब्दार्थ—शरत=शरद ऋतु (क्वार-कार्तिक के महीने)। शुभ्र= उज्ज्वल। ज्योत्स्ना=चाँदनी। सित=श्वेत, उजली। शैली=शृंखला। पीरे=पियरे, प्रियतम। द्युति=चमक, शोभा। शीतावास=जाड़ों में रहने का स्थान। खगों=पक्षियों।

संदर्भ—कवि निराला कृत यह कविता उनके तृतीय चरण के कविता संग्रह **गीतगुंज** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। इसमें कवि शरद ऋतु का वर्णन करता है।

भावार्थ—शरद ऋतु में विकसित होने वाले श्वेत पुष्पों की सुगंध चारों ओर फैल रही है, चाँदनी के समान निर्मल काव्य-रचना का क्रम आरम्भ हो गया है। काले बादल गगन को चीरते हुए चले गये हैं और धीरे-धीरे करके नष्ट हो रहे हैं। विदेशी प्रियतम घर आ गए हैं और विरहिणियों की व्यथा का अंत हो गया है, अब पावस ऋतु की गंदगी दूर होकर चारों ओर चमक छा गई है। पक्षी अब शीतकाल के अपने आवासों को जाने लगे हैं। उनकी चहक के द्वारा पेड़ जकड़ गए हैं अर्थात् समस्त पेड़ पक्षियों की चहक से पूरित हैं। वन-उपवन में बहार आ जाने के कारण जवानी जैसी अकड़ आ गई है। ज्वार के पौधों पर उनके भरे हुए सिट्टे थैलियों की तरह लटकते हुए दिखाई दे रहे हैं।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—शरत शुभ्र, पीर पीरे। (२) पुनरुक्ति प्रकाश—धीरे-धीरे, चीरे-चीरे। (३) सभंग पद यमक—वन उपवन यौवन।

विशेष—१. शरद ऋतु का संश्लिष्ट वर्णन है। शरद के मनोहारी प्रभाव का वर्णन है। कवि का सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टव्य है।

२. विशेषण विपर्यय—शरत की शुभ्र गंध।

शरद ऋतु में खिलने वाले पुष्पों का रंग प्राय: श्वेत होता है—

फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई।

३. **पीर गई उर पीरे आए**—प्राचीन परम्परानुसार वर्षा के दिनों प्राय: आवागमन बन्द रहता था। शरद के आते ही परदेशी घर की राह लेते थे; यथा—

चले हरष तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि।
भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सद्‌गुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ।

(किष्किधाकांड, रामचरितमानस)

४. **शीतावास खगों ने पकड़े**—जाड़ा आते ही पक्षी उड़ना कम कर देते हैं और वे अपने-अपने कोटरों में चले जाते हैं। पेड़ों के कोटरों में चारों ओर से पक्षियों के चहचहाने की आवाजें आती हैं। इसे कवि पक्षियों की चहचहाहट के द्वारा पेड़ों का जकड़ना कहता है। कल्पना दृष्टव्य है।

(१०५) आँख लगाई

तुम से .... हुई सगाई।

शब्दार्थ—आँख लगाई=दर्शन के कारण प्रेम किया। सम्बल=सहारा। मंगल=शुभ। बूझा=समझा। सगाई=सम्बन्ध।

संदर्भ—कवि निराला कृत यह कविता शीर्षक **आँख लगाई** उनके तृतीय चरण के कविता—संग्रह **अर्चना** से लेकर **राग-विराग**—में संकलित की गई है। कवि प्रेम के प्रभाव का वर्णन करता है।

भावार्थ—जब से हमने तुम्हें देखा और प्रेम किया है, तब से हमको तुम्हारे बिना चैन नहीं पड़ता है। तुमने जो प्रेम के नाम पर हमसे छल किया—यानी तुमने तो झूठमूठ—दिखाने भर को प्रेम किया, परन्तु वही अब मेरे प्राणों का सहारा और मेरी साधना का विषय बन गया है। जंगलों में मारा-मारा फिरना ही अब हमारे लिए मंगलदायक हो गया है, पहले जहाँ प्रकाश था, अन्धकार घिर कर रह गया है। जहाँ पहले रास्ता था, वहाँ अब मुझे कोई भी समझ में

नहीं आता है। पहले जीवन में अनेक इच्छाएँ थीं; अब एक भी इच्छा नही रही है। प्रेम रूपी तलवार ने समस्त परिवार को भी नष्ट कर दिया। परिणाम यह निकला कि तुम सदृश दूरस्थ व्यक्ति के साथ सम्बन्ध हो गया। घर वाले छूट गए और तुम अजनवी के साथ मेरा नाता जुड़ गया।

अलंकार—विरोधाभास—जंगल रमने—मंगल हुआ। (२) विशेषोक्ति की व्यंजना—सम्बल निष्फल। (३) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—तलवार।

विशेष—१. उर्दू के कवियों की शैली पर मोहब्बत का अंजाम दिखाया गया है।

२. मुहावरा=आँखलगाई, बनआई।

(१०६) आँख बचाते हो

आँख .... **बचाते हो।**

संदर्भ—कवि निराला की यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **गीतगुंज** से लेकर **राग-विराग** में संकलित है। कवि अपने प्रियतम रूप भाग्य को उलाहना देता है।

भावार्थ—हे प्रियतम ! तुम मेरे पास क्यों आने लगे ? मेरे पास तुम्हारे आने की कोई भी सम्भावना नहीं है तुम तो मुझसे बच कर चले जाते हो ऐसे चले जाते हो कि मैं तुम्हें देख न लूँ। जब हम तुम्हारा नया रूप देखते हैं, तभी हमारा काम बिगड़ जाता है। तुम्हारी दया कहाँ गई ? तुम मुझे धैर्य रखने के लिये अनेक बार अनेक प्रकार से क्यों समझाते हो ? तुम तो मुझसे आँख बचाते हो ?

मैं इस संसार को छोड़ कर कहाँ चला जाऊँ ? निरन्तर अभावग्रस्त जीवन में किस प्रकार निर्वाह करूँ ? जब मेरे जीवन रूपी वृक्ष में फल ही नहीं हैं, तब वह फल कहाँ से दे सकेगा ? तुम मुझे सहारा क्यों देने लगे ? तुम तो मुझसे आँख चुराते हो।

अलंकार—(१) **वक्रोक्ति**—तो क्या आते हो। (२) **गूढ़ोत्तर**—कहाँ तुम्हारी महान दया। (३) वीप्सा—**क्या क्या**।

विशेष—१. मुहावरा—आँख बचाते हो। लीक छोड़ना, दाने के बिना तलना, हाथ बंटाना।

२. कवि ने अपने असफल जीवन के प्रति अपनी निराशा व्यक्त की है। दाने के बिना क्या तलूँ। पंक्तियों में अभावग्रस्त जीवन की निराशा स्पष्टतः व्यक्त है।

३. दाने के बिना क्या तलूँ। तुलना करें इस लोकोक्ति के साथ—घर में नहीं दाने। बीबी चलीं भुनाने।

४. भगवान के प्रति भी उपालम्भ है क्योंकि वह कवि की सुनवाई नहीं कर रहा है।

५. **रूप नया**—कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—"कोई भी अन्य नवीन रूप दिखाई दिया।" ये आलोचक भूल जाते हैं कि यदि प्रेमी प्रत्येक नवीन रूप के प्रति आकर्षित हो जाए तो उसका प्रेम कहाँ का रह जाए—वह दो कौड़ी का हो जाए। क्षणेक्षणे नवतामुपैति तदेव रूपम् रमणीयतायाम् के अनुसार प्रियतम का रूप सदैव नवीन दिखाई देता है। उसके रूप सदैव एक ही प्रकार की नवीनता अथवा ताज़गी रहती है। अतः प्रियतम का ही रूप प्रतिक्षण नया दिखाई देता है। इसी से उसको देखते हुए मन नहीं भरता है और उसके रूप को देखने की चाह बनी रहती है। तुलना करें—

लिखनि बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितरे कूर। —**बिहारी**

६. **काम बिगड़ गया**—प्रियतम का दर्शन करके सुधि-बुधि जाती रहती है, व्यक्ति आपे में नहीं रह जाता है। इसी कारण वह अपना कोई काम ठीक प्रकार नहीं कर पाता है।

(१०७) कौन गुमान करो जिंदगी का

कौन गुमान .... आन किसी का।

शब्दार्थ—गुमान = गर्व, घमण्ड। वारा-न्यारा = इधर-उधर।

संदर्भ—कवि निराला कृत यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि ईश्वरीय सत्ता में अपना विश्वास प्रकट करता है।

भावार्थ—तुम इस जीवन में किस बात के लिए गर्व करते हो। तुम्हारा यहाँ है ही क्या जो कुछ है, सब उसी परमात्मा का दिया हुआ है। तुम व्यर्थ ही घर-द्वार के बन्धनों में पड़े हुए हो। ये सब तुम्हारे माथे पर कलंक के समान हैं। अर्थात् पाप हेतुक हैं। जीवन का अंग-प्रत्यंग पाप के कारण कलुषित हो रहा है। जीवन का समस्त रंग फीका है अर्थात् समस्त भोग-विलास निस्सार हैं। तुम्हारे जीवन का साथी कोई भी नहीं है। इस जीवन का एकमात्र आसरा लेने योग्य एवं विश्वास करने योग्य केवल एकमात्र परमात्मा ही है। उसकी स्तुति करने से ही तुम्हारे दिन फिर सकते हैं। न तो तुम्हें कभी ज्ञान की

प्राप्ति ही हुई और न कभी सम्मान ही प्राप्त हुआ है। तुम्हें कभी भी परमात्मा का ध्यान नहीं आया और बिना परमात्मा का ध्यान किए कब किसका कोई काम बन सका है।

अलंकार—(१) **वक्रोक्ति**—पंक्ति संख्या १, ८, ४, (२) वीप्सा—दाग़ दाग़ (३) विरोधाभास—रंग फीका।

विशेष—१. मुहावरों की लड़ी सी पिरोही है—माथे पर नील का टीका, स्याह, फीका रंग, जीका होना, वारा-न्यारा, किसी का आन बनना।

२. मनुष्य पाप का पुतला है। उसका कल्याण केवल भगवद् भजन द्वारा ही सम्भव है।

३. कवि ने कबीर आदि संत कवियों की भाँति वैराग्य-भावना की अभि-व्यक्ति की है।

(१०८)

कठिन यह संसार .... भरा संसार।

शब्दार्थ—**विनिस्तार**=छुटकारा। ऊर्मि=लहर। पाथार=रास्ता। अयुत=निरन्तर। भंगुर=नश्वर। तुमुल=अधिक, गहरा। तट-विटप=किनारे का वृक्ष। सलिल संहार=प्रलयंकर पानी। वलय=चक्कर, कड़ा (हाथ में पहने जाने वाला एक गहना)। आँचते=पीते।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से **राग-विराग** में संकलित है। इसमें संसार की नश्वरता का वर्णन है।

भावार्थ—यह संसार बहुत ही कठिन है। इसमें निर्वाह किस प्रकार सम्भव है? इसका मार्ग नश्वर लहरों के ऊपर होकर जाता है। इस मार्ग पर चल कर संसार रूपी सागर को किस प्रकार पार किया जा सकता है? निरन्तर उठती और नश्वर लहरों का सागर नाशवान है। भयंकर शोर करते हुए पानी के बोझ में यह दबा रहता है, इसके समस्त जल बिंदु खारी हैं। इनके किनारे के वृक्ष नष्ट हो गए हैं। यह केवल प्रलयंकारी जलराशि मात्र है।

षट्ऋतुओं का चक्र तथा अन्य समस्त वस्तुएँ यहाँ निरन्तर नाचती हैं या चक्कर लगाती रहती हैं। यहाँ किसी को किनारा नहीं दिखाई पड़ता है। परन्तु सब इसी खारे सागर का पानी पीते रहते हैं। यहाँ जिसे सत्य समझा जाता है, वह वास्तव में मिथ्या है। जीवन को लोग सदैव रहने वाला समझते हैं, परन्तु वह नाशवान है, यह संसार कोहरा रूपी भ्रम से युक्त है। समस्त जीवन अज्ञान की धुंध से भरा हुआ है। इसको पार करना बहुत कठिन है।

अलंकार—(१) **वक्रोक्ति**—कठिन·······पार। (प्रथम दो पंक्तियाँ)। (२) पदमैत्री—जल बल तल कुल, तट विटप। (३) विरोधाभास—सत्य में झूठ।

विशेष—१. संसार के मिथ्यात्व, जीवन की निस्सारता का प्रतिपादन है। इस कविता में कवि निराला का दार्शनिक रूप दिखाई देता है।

२. कुहरा भरा=सब कुछ अस्पष्ट है। जगत को सत्य और झूंठ दोनों ही प्रकार निरूपित किया जाता है। अतः इसके बारे में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

३. ऋतु वलय=छः ऋतुएँ—(i) वसंत (चैत्र वैशाख), (ii) ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ़), (iii) पावस (श्रावण भादों), (iv) शरद (क्वार कार्तिक) (v) हेमन्त (अगहन पौष) तथा (vi) शिशिर (माघ फाल्गुन)।

४. चक्कर लगाना अथवा नाचना=आना-जाना।

(१०६) कैसे हुई हार तेरी निराकार

कैसे .... **निर्वार।**

शब्दार्थ—दुर्घर्ष=कठिन। इंगित=संकेत। सलिल=पानी। ऊर्मियाँ=लहरें। क्षिति=पृथ्वी। विनत=झुका हुआ, प्रार्थना करता हुआ। विपन्नाव=विपत्तियों से बोझिल। निर्वार=हटाया गया, निकाला हुआ।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि अपनी निराशा व्यक्त करते हुए कहता है कि सांसारिक विपत्तियों से छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है।

भावार्थ—हे निराकार—बिना आकार-प्रकार वाले, तुम्हारी हार क्योंकर हो गई? इसका यह कारण तो नहीं है कि आकाश के तारों तक पहुँचने के लिए तुम्हारे लिए समस्त रास्ते बन्द हो गए हैं अर्थात् निराकार होने के कारण तुम्हारे लिए आकांक्षाओं की पूर्ति का कोई साधन नहीं रह गया है। सांसारिक कठिनाइयों का यह किला तोड़ना बहुत ही कठिन काम है। भला इसे कौन तोड़ पाता है? हमारे जीवन में प्रश्नों के से पृष्ठ के पृष्ठ भरे हैं अर्थात् जीवन के सामने अनेकानेक प्रश्न खड़े हैं, परन्तु उनके समाधान के लिए प्रकृति एकदम चुप है। केवल हवा ही अपने पार निकल जाने का संकेत करती है।

पानी की लहरों रूपी हथेलियाँ झटक-झटक कर नदी तुझसे यह कह रही है कि काम में आने वाला सफलता दिलाने वाला उपाय यही है कि विपत्तियों से जूझकर पार उतरने के लिए स्वयं पतवार पकड़ ले। ठंडक रहने के कारण

अन्न के उपजाने में कठिनाई होती है। इसी से वह विनयपूर्ण रुख से कहती है कि अन्न के अभाव में जीवन में विपन्नता के अतिरिक्त कुछ रह ही नहीं जाता है। इस कठिन द्वार से किस प्रकार छुटकारा हो। अथवा संसार रूपी कठिन द्वार के पार जाना सर्वथा कठिन है।

अलंकार—(१) **गूढ़ोत्तर**—कैसे हुई........निराकार ? तथा कैसे प्रसह.... निर्वार। (२) रूपक—गगन के तारक, सलिल ऊर्मियों हथेली। (३) विभावना की व्यंजना—निराकार की हार। (४) मानवीकरण—सरिता।

विशेष—कवि के मन की पराजय और निराशा व्यक्त है।

(११०) गीत गाने दो मुझे

गीत गाने दो मुझे .... **फिर सींचने को।**

शब्दार्थ—वेदना=पीड़ा। पाथेय=पथ का सहारा, रास्ते का भोजन। प्रथा=पृथ्वी। लौ=ज्योति।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से **राग-विराग** में संकलित है। कवि संसार में मची हुई गहरी लूट-पाट के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति करता है।

भावार्थ—अपने कष्टों के कुप्रभाव को रोकने के लिए मुझे गीत गाने दो।

जीवन के इस कठिन मार्ग पर चलते हुए चोट पर चोट खाते रहने से मेरी सुधि-बुधि जाती रही है। पास में जो मार्ग का सम्बन्ध था—जो थोड़े बहुत साधन पास में थे भी, उन्हें ठगों के सरदारों ने लूट लिया। अब तो गला भी रुकता जा रहा है और वह देखो, मेरी मृत्यु आ रही है।

यह पराजित संसार विषमता के ज़हर से भर उठा है। लोग परस्पर परिचय प्राप्त नहीं करते हैं और एक दूसरे को अजनबी की तरह देखते हैं। पृथ्वी की जो सहिष्णुता की ज्योति थी, वह अब झुक गई है। उस झुकी हुई सद्वृत्ति को सिंचित-पल्लवित करने के लिए हे कवि ! तुम पुनः जल उठो अपने तेज को उद्दीप्त करो।

अलंकार—(१) अतिशयोक्ति—होश के भी होश छूटे। (२) छेकानुप्रास—ठग ठाकुर। (३) उत्प्रेक्षा—जैसे हार खाकर। (४) विरोधाभास—जल उठो—सींचने को।

विशेष—१. गीत गाने—रोकने को—कवि का कहना है कि काव्य का

उद्देश्य लोकमंगल है। संसार की वेदना मिटाने के लिए वह गीतों की रचना करना चाहता है।

२. लक्षणा—पाथेय, ज़हर।

३. लौ पृथा की—पृथ्वी का गुण सहनशीलता है।

४. कवि का मन्तव्य यह है कि संसार में सद्भावना एवं सहनशीलता समाप्तप्राय: हो गई है। लोग मिलते हैं, साथ रहते हैं और फिर भी अपरिचित-अजनबी बने रहते हैं। कवि को चाहिए कि अतिशय बौद्धिकता के इस युग में वह अपने सुबुद्ध कवित्व को जाग्रत करे और लोक में मानवीय गुणों का प्रसार करे।

(१११) ये दु:ख के दिन

शब्दार्थ—अमलिन=निर्मल, जो मैला न हो।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला कृत है। उनके कविता काल के तृतीय चरण की रचना **अर्चना से राग-विराग** में संकलित है। कवि प्रिय-मिलन की आशा लेकर दु:ख के दिन काट रहा है।

भावार्थ—जीवन के ये दु:ख के दिन मैंने एक-एक पल, क्षण गिन-गिन कर काटे हैं। मैंने आँसू रूपी मोतियों को पिरोकर हार इसलिए बनाए हैं जिससे जब मैं दु:खों की इस रात्रि के उपरान्त प्रियतम का उज्जवल एवं निर्मल चन्द्रमुख देखूँ तो उन्हें वे हार पहना सकूँ।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—गिन गिन, तिन तिन। (२) रूपक—आँसू के मोती। शशिमुख।

विशेष—रात्रि के बाद प्रातः होगा—इसी आशा में यह दुनियाँ रातें काट देती है।

(११२) दु:खता रहता है अब जीवन

(क) दु:खता रहता है .... था कानन।

शब्दार्थ—पत्र नवल=नये पत्ते। रिक्त=खाली। तरुदल=वृक्ष समूह। सम्बल=सहारा। कानन=वन।

संदर्भ—कवि निराला कृत "दुखता रहता है अब जीवन" शीर्षक यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **आराधना से लेकर राग-विराग** में संकलित है। कवि पतझड़ के परिप्रेक्ष्य में अपने जीवन की विपन्नता का वर्णन करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार पतझड़ में वन-उपवन रूखे-सूखे और उजड़े-उजड़े से हो जाते हैं, उसी प्रकार मेरा यह जीवन सब प्रकार साधन रहित होकर दु:ख का—वितृष्णा का हेतु बन गया है।

समस्त नवीन कल्पना रूपी पत्ते झड़कर मेरे शरीर-रूपी वृक्ष समूह को खाली, अभावग्रस्त बना गए हैं। अब तो केवल उन साधनों के चिह्न रह गए हैं जिनके द्वारा मेरे जीवन का वन कभी हरा-भरा भरा पूरा था।

अलंकार—(१) उपमा—पतझड़ जैसा। (२) सभंग पद यमक—वन उपवन। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—झर-झर। (४) रूपक—तनु का तरुदल।

विशेष—१. ध्वन्यात्मकता—झर झर।

२. मूल साधन नष्ट हो चुके हैं। जिस प्रकार पेड़ों के तने यह बताने को रह जाते हैं कि इन्हीं पर कभी पत्ते लहराया करते थे, उसी प्रकार कवि का लम्बा-चौड़ा शरीर यह बताता है कि वह भी कभी भरपेट खाता-पीता था। "खण्डहर बता रहे हैं इमारत मज़ी भली" वाली बात की ओर संकेत है।

(ख) **डालियाँ** .... **उन्मन।**

शब्दार्थ—विटप=वृक्ष। उन्मन=उदास।

संदर्भ—पूर्व छंद (क) के समान।

भावार्थ—मेरे जीवन रूपी उपवन की अनेक डालियाँ रूपी शक्तियाँ क्षीण हो गई हैं। उन पर फिर दुबारा पत्ते नहीं आए अर्थात् मेरा खाली घड़ा फिर दुबारा नहीं भरा मैं दुबारा सम्पन्न नहीं हुआ। यह मेरा जीवन रूपी वृक्ष आधे से अधिक कम रह गया है और अब यह क्षण-क्षण क्षीण होकर अपने बीज रूप मृत्यु को प्राप्त हो रहा है।

क्षण भर के लिए इस जीवन रूपी उपवन में वासन्ती-वायु रूपी स्वतन्त्रता का संस्पर्श प्राप्त हुआ है। कुछ क्षणों के लिए कोयल भी गाने लगी है। परन्तु लगता ऐसा है कि अब इस कोयल के स्वरों में बुढ़ापा भर गया है, अर्थात् पहले जैसी मस्ती नहीं रही है। अत: अब उदास होकर हम दोनों—(मेरा जीवन और यह उपवन) ढलते जा रहे हैं।

अलंकार—पूरे छन्द में रूपक की योजना द्रष्टव्य है।

विशेष—कवि की निराशा, विवशता और मृत्यु भय के स्वर स्पष्टत: मुखरित हैं।

(११३) धीरे-धीरे हँस कर आई

धीरे-धीरे .... **घबराई ।**

शब्दार्थ—जर्जर=क्षीण, दुर्बल । पंक=कीचड़ । अलख=जो दिखाई न दे अथवा जिसे देखा न जा सके ।

संदर्भ—निराला कवि कृत यह कविता उनके कविता-काल के तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है । कवि आत्मालोचन द्वारा अपनी दुर्बलता को व्यक्त करता है ।

भावार्थ—मेरे प्राणों की क्षीण हो रही परछाईं अर्थात् मेरी अन्तः चेतना हँस कर धीरे-धीरे मेरे सामने आकर साकार हो उठी । मेरा जीवन पथ अधिकाधिक गहरे अन्धकार से भरता गया । उस पर बुराइयों की गंदगी (कीचड़) रास्ते में एकत्र होती रही । उधर सूर्य ने भी समस्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ तत्त्वों को ढक लिया । इस प्रकार मृत्यु की पहली झलक आँखों में चमक गई।

कवि अपनी चेतना को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि अब शेष ही क्या रह गया है जिसे गले लगाया जाए । ऐसी स्थिति में अलख शक्ति अथवा अदृश्य परमात्मा को भी जगाने-मनाने से क्या होन-हुवाने वाला है बार-बार पत्तों की तरह बार-बार झड़ने और फिर लहराने से अथवा बार-बार मरने और नया जन्म धारण करने से क्या लाभ है ? इस कथन के उपरान्त अन्तर चेतना मुस्करा उठी ।

पिछली समस्त बातें समाप्त हुईं, जो श्रेष्ठ वस्तुएँ अभी तक प्राप्त नहीं हुई थीं, वे प्राप्त हो गईं । जीवन में अनेकों विषमताएँ समा गईं, परन्तु हे चेतना ! तुम नहीं 'घबराईं ।

अलंकार—(१) पुनरुक्तिप्रकाश—धीरे धीरे, अड़ अड़कर, झड़ झड़ कर । (२) **वक्रोक्ति**—क्या गले·······मुसकाईं । (३) विशेषोक्ति की व्यंजना—फिर भी तुम न घबराईं ।

विशेष—विकास चेतना का स्वभाव है । उस पर कितना ही कर्दम क्यों न चढ़े, उसे विकसित होना ही है । यह बात दूसरी है कि विलम्ब हो जाए । इसी कारण कवि कहता है कि "फिर भी न कहीं तुम घबराईं ।"

यद्यपि कवि का प्रस्तुत जीवन निराशापूर्ण है तथापि वह भविष्य के प्रति अगले जन्म के प्रति-निराश नहीं है ।

(११४) निविड़ विपिन, पथ अराल

निविड़ .... **मरण-ताल ।**

शब्दार्थ- निविड़=गहरा, घना । विपिन=वन, जंगल । अराल=टेढ़ा । हिंस्र=हिंसक, हत्या करने वाले । व्याल=साँप । अनिर्वार=बेरोकटोक । द्रुम वितान=वृक्षों के द्वारा बन जाने वाले चँदोबे । सुजलाशय=सुन्दर जलाशय । जर्जर=क्षीण । उन्मीलन=खिलना । निरस्वर=मौन । मन्द्र= गम्भीर । मरण-ताल=मृत्यु द्वारा दी जाने वाली ताल ।

संदर्भ—कवि निराला कृत यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है । कवि के अनुसार मृत्यु के अतिरिक्त कोई उपाय शेष नहीं रह गया है, क्योंकि जीवन दुःख, विषाद आदि के अंधकार से पूर्ण है ।

भावार्थ—जीवन एक अत्यन्त घने जंगल के समान है जिसका रास्ता बहुत ही टेढ़ा-मेढ़ा और कठिन है । इस रास्ते में कदम-कदम पर दुःखों एवं कष्टों रूपी हिंसक साँप तथा अन्यान्य जीव-जन्तु भरे पड़े हैं । अन्धकार के कारण हाथ बेरोकटोक बढ़ते हैं—देख ही नहीं पाते कि वे किसी के लग रहे हैं । वृक्षों के चन्दोबों के कारण भी अंधकार बढ़ गया है । उनका कोई आर पार नहीं है । रास्ते में कहीं भी स्वच्छ जल वाले सुन्दर तालाब नहीं हैं । मार्ग में न रहने योग्य घर हैं और न मंदिर ही हैं जहाँ मन को शांति मिल सके । उस मार्ग में मन में केवल भय ही उत्पन्न होता है—उस मार्ग पर चलते हुए भय लगता है । निराशा की एक गहरी और विशाल छाया उस मार्ग को घेरे हुए है अर्थात् जीवन में केवल निराशा ही निराशा दिखाई देती है ।

अंधेरे के कठोर हाथों में यह जर्जर जीवन निरंतर बँधता जा रहा है । अब यह शरीर भी विकास की दिशा में मौन हो गया है अर्थात् इसका विकास रुक गया है । अब मंद मृत्यु की ताल का अनुगमन करते हुए यह जीवन गम्भी-रता पूर्वक अपने चरण बढ़ा रहा है अर्थात् अब उसे सामने मृत्यु दिखाई दे रही है ।

अलंकार—(१) गूढ़ोत्तर—कैसा है जटिल जाल । (२) छेकानुप्रास—जटिल जाल । (३) रूपक—अन्धकार के कर ।

विशेष—१. नाद-सौन्दर्य द्रष्टव्य है ।

२. जीवन की निराशा आदि पर अस्तित्ववाद का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। अन्यथा निराला सदृश दार्शनिक प्रवृत्ति के व्यक्ति के लिए इस प्रकार से जीवन को निराशापूर्ण सर्वथा अस्वाभाविक प्रतीत होता है।

(११५) शिशिर की शर्वरी

शिशिर की शर्वरी .... थल की तरी।

शब्दार्थ—शिशिर=जाड़ा (माघ-फाल्गुन के महीने शिशिर ऋतु के कहे जाते हैं।) शर्वरी=रात्रि। हिंस्र=जो हिंसा करें। लोचन=आँख। त्रास=भय। दिगम्बरी=नंगी। अपल=नश्वर। तरी=नाव।

संदर्भ—कवि निराला की यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि शिशिर ऋतु के माध्यम से जीवन की भयावहता एवं निराशा की अभिव्यक्ति करता है।

भावार्थ—जाड़े की यह रात अनेक प्रकार के जंगली माँसाहारी पशुओं से भरी हुई है—शिशिर की रात में पूरा सन्नाटा होता है और उसमें अनेकों जंगली जानवर चारों ओर घूमते रहते हैं। मैंने अपनी निर्मल आँखों से संसार की ऐसी ही दशा—(जंगली जानवरों से युक्त) देखी कि मेरे मन में भय उत्पन्न हो गया है, हृदय संकोच के कारण ऐसा काँप उठा है कि मेरी आँखों के सामने निराशा नंगी होकर नाचने लगी है।

हे माता, मैंने प्रातः काल के समय किरणों की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि हृदय में एक भय का भाव भर गया और उसने किरण की ओर से हाथ हटा दिया। मुझे तो इस चपल जीवन में नश्वरता के थल पर चलने वाली नाव ही मिली अर्थात् संसार में केवल नश्वरता ही मिली।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—शिशिर की शर्वरी। विश्व विमल। (२) मानवीकरण—निराशा। (३) पदमैत्री—मातः प्रातः, अपल थल।

विशेष—अपल थल की तरी हो ही नहीं सकती। अतएव कवि का जीवन दर्शन यह है कि यह संसार सर्वथा निस्सार एवं मिथ्या है।

(११६)

(क) घन तम से .... भरणी है।

शब्दार्थ—घन=गहरा। तम=अंधकार। आकृत=घिरी या ढकी हुई। धरणी=पृथ्वी। तुमुल=ऊँची एवं भयोत्पादक। तरणी=नाव। चिघर=

चिघाड़। वारण=हाथी। निष्कारण=बिना कारण। सरण=सरकना, बहना।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला विरचित कविता **'घन तम से आवृत्त धरणी'** से उद्धृत हैं। यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है।

भावार्थ—यह समस्त पृथ्वी गहरे अंधकार से घिर रही है। इस जीवन-सागर की ऊँची-ऊँची उठती हुई भयावह लहरों में मेरी नाव फँस कर रह गई है। जागृति का संदेश देने वाले कविगण तो मंदिरों में बन्दी होकर रह गये हैं अर्थात् कविगण समाज से दूर रह कर केवल भक्ति के गीत गा रहे हैं। जंगलों में हाथी चिघाड़ रहे हैं। बालक अकारण रो रहे हैं। इस जीवन नैया में भराव है, प्रगति और आगे को बढ़ना नहीं।

अलंकार—अनुप्रास एवं रूपक—तुमुल तरंगों की तरणी।

विशेष—परिस्थितियों की विषमता एवं जीवन के प्रति निराशा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

(ख) **शत संहत** .... **सरणी है।**

शब्दार्थ—संहत=संगठित। आवर्त-विवर्त=भँवरें। गर्त=गढ़ा, गड्ढा। मारण-रजनी=मौत की रात। सरणी=परम्परा, जीवन की राह।

संदर्भ—उपर्युक्त छन्द (क) के समान।

भावार्थ—सैकड़ों भँवरों से भरे जल की पर्तें लगातार चारों तरफ़ पछाड़ खा रही हैं। लगता है जैसे पानी के पहाड़ उठ-उठ कर कहीं गड्ढों में समाए जा रहे हैं। प्रतीत होता है कि प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित करती हुई कालरात्रि आकर उपस्थित हो गई है।

जीवन की यह परम्परा निरुद्देश्य होकर कुछ इस प्रकार जीती है कि यहाँ ज़िदगी जीर्ण-शीर्ण होकर भी जीवन जिये जा रही है। जीवन की पवित्रता समाप्त हो गई है। जीवन की यह परम्परा ऐसी व्यर्थ है।

अलंकार—**विशेष**—जीवन की निस्सारता का प्रतिपादन है। जीवन के वैषम्य का चित्रण है। अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन का प्रभाव है।

(११७) नील जलधि जल

नील जलधि जल .... **नील कराभय।**

शब्दार्थ—जलधि=समुद्र। द्वय=दोनों। मृत्ति=मिट्टी। शर=वाण।

अनिल कर=हवा का झौंका। निलय=घर, घोंसला। कृत्य=कार्य। शवाशय=श्मशान। नग्न नग=नंगे पर्वत।

संदर्भ—कवि निराला की यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि नील वर्ण की व्यापकता का वर्णन करता है। वैसे यह कविता केवल शब्द-जाल है।

भावार्थ—समुद्र का पानी, आकाश का रंग, कमल की पंखुड़ियाँ और प्रिय के दोनों नयन—सभी नीले हैं। नीली मिट्टी पर मौत के नीले वाण, हवा के नीले हाथों से नीले घरों पर निराशा के नीले वाण लगातार बरसते हैं। नीले रंग वाले मोर के नृत्य भी नीले हैं। नीले काम हैं, नीले श्मशान हैं।

फूलों की क्यारियाँ नीलिमा से पूर्ण हैं, नंगे पर्वत नीले नीले हैं, संसार का शील भी नीला अर्थात् कलंकित है। मृत्यु के नीले हाथों में व्यक्ति अभय होता है।

अलंकार—अनुप्रास।

विशेष—मृत्यु की नीलिमा ही संसार की नीलिमा से (बन्धनों से) छुटकारा दिला सकती है।

(११८) नील नयन नील पलक

नील नयन .... **अलक।**

शब्दार्थ—वदन=मुख। अमल=निर्मल, स्वच्छ। रजत=चाँदी जैसा उजला। वारिद=बादल। अविरत=निरन्तर, लगातार। आनत=झुके हुए। तिर्यक=तिरछा। अलक=केश।

संदर्भ—यह कविता कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि नीलेपन की सुन्दरता और व्यापकता का वर्णन करता है।

भावार्थ—नीले नयनों पर नीली पलकें शोभा देती हैं। नीले मुख की झलक में भी नीलिमा का विस्तार रहा करता है। नील कमल की हँसी एकदम निर्मल हुआ करती है। संसार में केवल सूर्य की चमक ही चाँदी के समान उजली है। जब हम अपने आसपास दूर दराज़ देखते हैं तो नीलिमा का आभास ही हमें मिलता है। बादलों में भी नवीन नीलिमा की झलक अति सुन्दर लगती है।

संसार के समस्त प्राणी नील जल को ही बराबर पीते रहते हैं। नीली

नाव के समान झुकी अत्यन्त घुँघराली अलकें (केश) बहुत ही शोभायमान होती हैं।

विशेष—(१) छेकानुप्रास है। (२) कोमलकांत पदावली एवं नाद सौंदर्य द्रष्टव्य है। (३) नीले रंग नीलिमा के सर्वव्यापी रूप का भावपूर्ण वर्णन है।

(११९) हारता है मेरा मन

(क) **हारता है मेरा मन .... निशा की।**

शब्दार्थ—समर=युद्ध, संघर्ष। कलरव=चहक, पक्षियों की मधुर ध्वनि। विभूति=ऐश्वर्य।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला विरचित "हारता है मेरा मन" शीर्षक कविता से उद्धृत हैं। यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि को अपनी पराजय में अपने प्रिय के सामीप्य की अनुभूति होती है।

भावार्थ—मेरा मन इस संसार के संघर्षों में जब हार जाता है, शांति के लिए जब अपनी चहक में मौन होने की चेष्टा करता है, तभी हे प्रिय ! मेरा जीवन तुम्हारे गले का हार बनता हुआ प्रतीत होने लगता है। तुम्हारी विभूति भाव, गंध और निशा ही मेरा आश्रय बन जाती है।

(ख) **जानती .... देने को।**

शब्दार्थ—अस्तित्व=सत्ता। शोभन=शोभनीय।

संदर्भ—पूर्व छंद (क) के समान।

भावार्थ—मैं यह जानती हूँ कि तुमको ही मेरे समस्त अस्तित्व का दान देना शेष है, उसके उपरान्त संसार में जब तक नवीन सृष्टि होगी तब तक देने के लिए मेरे पास कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा। परन्तु जन्म भर तुम एक तत्त्व को तो समझ ही लोगे कि संसार में आत्म समर्पण से अधिक न तो कुछ शोभनीय है, न कुछ जीवन के निकट है, न कुछ अधिक आनन्दमय है, न कुछ समझाने के लिए है और न कुछ प्रगति का ही उपयोग इससे अधिक अन्य कुछ है।

विशेष—सर्वस्व समर्पण जीवन का सर्वोपरि तत्त्व एवं प्रगति का लक्षण है।

(१२०) भग्न तन रुग्ण मन

भग्न तन .... दोषरण।

शब्दार्थ—भग्न=टूटा हुआ। विषण्ण=दुःखी। गेह=घर। मेह=वर्षा।

प्रवर्षण=घोर वर्षा। विनत=विनम्र, नम्रता के कारण झुका हुआ। **दोषरण**= दोषभरे युद्ध में।

संदर्भ—निराला कवि की यह कविता भग्न तन, रुग्ण मन उनके तृतीय चरण की रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि अपने आपको सर्वथा अयोग्य बताकर भगवान से शरण की याचना करता है।

भावार्थ—थकान के कारण मेरा शरीर टूट गया है, बुरे विचारों के निरन्तर रहने के कारण मन रोगी हो गया है, जीवन दुःखों का वन (संघात) बन गया है। मेरा शरीर प्रतिक्षण क्षीण हो रहा है। सजा-सँवारा घर द्वार भी अब पुराना हो गया है टूट-फूट गया है। विपत्तियों के बादल प्रलयंकारी वर्षा कर रहे हैं। इनको रोकने में मेरा हाथ सर्वथा असमर्थ है तथा मुझे सहायता देने वाला भी कोई नहीं है। इन सब कारणोंवश मेरा उन्नत रहने वाला मस्तक आज झुक गया है। नाना प्रकार के दोषों भरे इस संघर्षपूर्ग जीवन से उद्धार करने के लिए हे प्रभु ! मुझे अपनी शरण प्रदान कीजिए।

अलंकार—(१) **पदमैत्री**—भग्न तन, रुग्ण मन, जीवन विषण्ण वन। (२) वीप्सा—क्षण क्षण। (३) **विरोधाभास**—जीर्ण सज्जित गेह, उन्नत विनत माथ। (४) **छेकानुप्रास**—प्रलय के प्रवर्षण। (५) सभंग पद यमक—शरण दोषरण। (६) असम्बन्धातिशयोक्ति—चलता नहीं हाथ।

विशेष—१. नाद सौंदर्य युक्त कोमलकांत पदावली द्दष्टव्य है।

२. लघुत्व के प्रदर्शन द्वारा शरणागति की याचना भक्ति काल के कवियों की याद दिलाने वाली है।

(१२१) मरा हूँ हज़ार मरण

मरा हूँ हज़ार मरण .... **करण सरण।**

शब्दार्थ—तव=तुम्हारे। तिमिर-जाल=अंधकार का समूह। अंशुमाल=किरणें। अमित=असीम, अनेक। सिताभरण=सफ़ेद गहने। चारु=सुन्दर।

सन्दर्भ—कवि निराला की यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि पराजय एवं दुःखों को अपने जीवन का शृंगार बताता है।

भावार्थ—मैं हज़ारों बार मर चुका हूँ। मुझे आपके चरणों में शरण प्राप्त हुई है। मैं अज्ञान रूपी अंधकार के जाल से घिरा हुआ हूँ। काल मुझे

धीरे-धीरे काट कर खा रहा है। अब आँसुओं की किरणें मेरे उज्जवल आभूषण बन गई हैं। चारों ओर प्रलय का जल कल-कल नाद के साथ बढ़ रहा है। मेरे मन की प्रसन्नता निकल गई है—अर्थात् समाप्त हो गई है। संसार उसी की ओर उमड़ता है अर्थात् संसार उसी को आदर प्रदान करता है जो आपकी शरण को ही अपने श्रेष्ठ साधन बना लेता है (जो आपको ही सर्वस्व समर्पण कर देता है।)

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—मरा मरण, आँसुओं के अंसुमाल। (२) पदमैत्री—चरण-शरण, करण-सरण। (३) पुनरुक्ति प्रकाश—कट-कट कर। (४) रूपक—आँसुओं के अंसुमाल।

विशेष—१. लक्षणा—तिमिर, उमड़ा।

२. जल कलकल नाद—ध्वन्यात्मकता।

३. कवि के जीवन में हर्षोल्लास नाम मात्र को भी नहीं रह गया है। उसका जीवन निराशा की कहानी मात्र है।

४. कवि भगवान की शरण में जाना चाहता है—परन्तु लोकेष्णा के वशीभूत होकर। "विश्व उसी को उमड़ा, हुए चारुकरव सरणं।"

(१२२) मधुर स्वर तुमने बुलाया

मधुर स्वर .... **गाया।**

शब्दार्थ—छद्म = छल, कपट। अवसान = अंत, समाप्ति। विरत = विरक्त। क्षय = नाशा। निश्शरण = आश्रयहीन।

संदर्भ—कवि निराला कृत यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि अपनी निराशा की करुण अभिव्यक्ति करता है।

भावार्थ—हे प्रिय ! तुमने अपने मधुर स्वर में मुझको बुलाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मधुर स्वर के द्वारा कपट करके तुमने मुझे मृत्यु की सूचना दी है अर्थात् आपका मधुर स्वर मृत्यु का कपटपूर्ण आह्वान है। पश्चिम से बहने वाली वायु (पाश्चात्य सभ्यता) मेरे जीवन में विनाशक विष के बीज बो गई है। बादलों की अहंकार पूर्ण रिमझिम मुझ पर हुई है। मधुर रागिनी के रूप में मुझे मृत्यु के चरण-चाप की गम्भीर ध्वनि सुनाई देती है। बाहर जो संगीत दिखाई देता है, वह वस्तुतः मेरे अवसान का वातावरण है। मेरे चरणों की गति में लय नहीं रही है अर्थात् पाँव कहीं के कहीं पड़ने लगे हैं।

श्वास लेने तक की फुरसत नष्ट होती जा रही है अर्थात् दम घुटने लगा है। सौंदर्य में भी विषमता का संचय होने लगा है। इस प्रकार मेरे वरण में भी निराश्रयता का ही स्वर मुखर है।

अलंकार—(१) अपह्नुति की व्यंजना—मधुर स्वर—मख आया। (२) **अनुप्रास**—बो, विष वायु। (३) विरोधाभास—रागिनी मृत्यु द्रिमद्रिक तान में अवसान। वरण में निश्शरण गाथा। सुषमता में असम संचय। (४) पदमैत्री—वरण में निश्शरण।

विशेष—१. लक्षण—मधुर स्वर।

२. नाद सौन्दर्य एवं ध्वन्यात्मकता=रिमझिम, द्रिमद्रिम।

३. कवि को चारों ओर मृत्यु दिखाई देती है।

(१२३) हे जननि, तुम तपश्चरिता

हे जननि .... मरण सरिता।

शब्दार्थ—तपश्चरिता=तप पूर्ण आचरण करने वाली। सुमति भरिता= सुबुद्धि से भरी हुई अथवा सुबुद्धि से भरने वाली। निःस्व=मौन। तमस्तरिता =अंधकार को तैर जाने वाली।

संदर्भ—कवि निरालाकृत यह कविता उनके कविता-काल के तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है।

भावार्थ—हे माता ! तुम तपस्विनी का आचरण करने वाली हो। तुम्हीं संसार को सुमति प्रदान करने वाली हो। मेरी महत्वाकांक्षाएँ समाप्त हो गई हैं तथा मुख उल्टी सीधी बातें बकने के बाद चुप हो गए हैं। तुम ही संसार के हृदय में मौन स्वरों को भरती हो और सबको अंधकार से तारने वाली हो।

तुम्हारी तपस्या से विवश होकर शंकर भगवान तुमसे मिले। तुम्हारे हाथों में विजय प्रदान करने की शक्ति है। इसी कारण मैं तुम्हारे चरणों में अपना मस्तक झुकाकर तुम्हारी शरण में आया हूँ। अब तुम मुझे मृत्यु की सरिता (नदी) से पार उतारो।

अलंकार—(१) उल्लेख—माता पार्वती का स्मरण विविध रूपों में—सम्पूर्ण पद में। (२) पदमैत्री—गति-सुमति, उर-सुर। (३) रूपक—कामना के हाथ। (४) सभंग पद यमक—मुख-विमुख। (५) निःस्व के उर विश्व के सुर।

विशेष—कवि के दैन्य की अभिव्यक्ति दृष्टव्य है। वह देवी पार्वती के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करता है।

(१२४) माँ अपने आलोक निखारो

माँ अपने .... **तुम धारो।**

शब्दार्थ—आलोक=प्रकाश। त्रास=डर। वारो=उद्धार करो। दिशावधि=दिशा और समय—देश-काल। व्याधि-शयन=विपत्तियों में सोए हुए। निर्जर=निः+जर, अमर, जो कभी पुराना न पड़ा। पल्लव=पत्ते। सुरभि=सुगंध। सुमन=फूल। चारु=सुन्दर, श्रेष्ठ। चयन=चुनाव, छाँटना।

सन्दर्भ—निरालाकृत यह कविता उनके कविता-काल के तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि देवी माता से प्रार्थना करता है कि वह धरती के जीवों को दुःख से मुक्ति प्रदान करे।

भावार्थ—हे देवी माँ! अपने प्रकाश को निखार प्रदान करो, अर्थात् अधिक प्रभाव एवं विस्तार प्रदान करो, तथा नरक के भय से मनुष्यों का उद्धार करो। देश और काल की सीमाएँ अत्यन्त विस्तृत हैं और मनुष्य प्रायः किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं। मानव का मन दुर्बल और रोगी बनकर विपत्तियों की गोद में पड़ा हुआ है। हे मातेश्वरी! ज्ञान रूपी उच्च आकाश से पृथ्वी पर अमरत्व उतारने की कृपा करो और अपने करुणापूर्ण हाथों द्वारा सबका उद्धार करो।

हे माँ, कुछ ऐसी कृपा करो कि पत्तों में रस रूप हरियाली आ जाए, फूलों में सुगंध भर जाए, फलों के ढेर लग जाएँ, वनों में पक्षी चहचहाने लगें। हे माँ, अपनी सुन्दर कृपा-दृष्टि से स्वर्ग के सुखों को पृथ्वी पर अवतरित करके इस धराधाम को ही स्वर्ग बना दो।

अलंकार—(१) सभंग पद यमक—नर-नरक, तारो-तारो। (२) छेकानुप्रास—विपुल वर्ग। (३) पदमैत्री—शयन मन, गगन जीवन, फल-दल। (४) रूपक—ज्ञान-गगन। (५) वृत्यानुप्रास—चारु-चयन चितवन।

विशेष—कवि स्पष्टतः शक्ति का उपासक है। वह आदि शक्ति जगदम्बा से प्रार्थना करता है कि वह इस जगत के दुःख-संतप्त प्राणियों को सुखी बनाने की कृपा करे।

(१२५) दुरित, दूर करो नाथ

दुरित .... **विश्वगाथ ।**

शब्दार्थ—दुरित=पाप, बुराइयाँ । अशरण=निराश्रय । गहो=पकड़ो, सहारा दो । नैश=रात । क्षण=समय । विगतपाथ=रास्ते से भटका हुआ अथवा साधन हीनता । कराल=भयानक । विपुल=बहुत सोर । व्याल=सर्प । विश्वगाथ=दुनियां की कहानी ।

संदर्भ—कवि निराला की यह कविता शीर्षक **दुरित दूर करो नाथ** उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि भगवान से मुक्ति की याचना करता है ।

भावार्थ—हे नाथ, मेरे अवगुण दूर करो, मैं सर्वथा बिना सहारे का व्यक्ति हूँ, आप मुझे सहारा देने की कृपा करें । मैं जीवन के युद्ध में हार चुका हूँ। सभी साथियों ने मेरा साथ छोड़ दिया है। मैं एकदम अकेला हूँ, सर्वथा अंधकार एवं निराशा में डूबा हुआ हूँ, मेरा मार्ग काँटों से भरा हुआ है तथा मैं अपने मार्ग से भटक गया हूँ । (अथवा मैं सर्वथा साधनहीन हूँ ।

प्रातःकाल की सुखदायी किरणें आपकी कृपा से ही फूटती हैं । वे मन को बहुत भली लगती हैं । इस कारण तुम्हें अशरण को शरण देने वाला मानकर मैंने तुम्हीं से शरण देने के लिए प्रार्थना की है। अब एकमात्र तुम्हीं मेरे साथी हो ।

जब तक सैकड़ों भयानक मोह-जाल घेरे रहते हैं, तब तक जीवन के दुःखों एवं कष्ट रूपी अनेक साँपों से छुटकारा सम्भव नहीं होता है । अतः हे विश्व को धारण करने वाले । जीवन के अनेकों कष्टों रूपी सर्पों से मेरा उद्धार कर दो ।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—दुरित दूर । (२) सभंग पद यमक—अशरण शरण । (३) रूपक—मोह-जाल, जीवन के व्याल । (४) परिकरांकुर—विश्वनाथ ।

विशेष—१. संस्कृतनिष्ठ कोमलकांत पदावली द्रष्टव्य है ।

२. कवि की पराजय मुखर है । साथ ही भगवान के प्रति उसका समर्पण भाव भी अभिव्यक्त है ।

(१२६) भजन करि हरि के चरण, मन

भजन करि .... **तरण, मन।**

शब्दार्थ—मायावरण=माया के बन्धन। कलुष=पाप। विपथ=कुमार्ग। उपकरण=साधन। वन्यकारा=जंगली जेल। प्रबल=तीव्र, जबरदस्त। पावस=वर्षाऋतु (श्रावण-भादों के दो महीनों को 'पावस' नाम दिया गया है।) तरण=तारना, मुक्ति।

संदर्भ—कवि निराला की "**भजन कर हरि के चरण, मन।**" शीर्षक यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **अर्चना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। माया-मोह से छुटकारा पाने के लिए कवि मन को हरि-भजन की प्रेरणा प्रदान करता है।

भावार्थ—हे मन, तू हरि के चरणों का भजन कर। इस प्रकार तू माया के बन्धनों से छूटकारा प्राप्त कर सकेगा। तू निरन्तर पापों के हाथों में पड़ता रहा है। इसी कारण तेरे शरीर का ढंग भी बदल गया है अथवा तेरे शरीर का व्यवहार जो होना चाहिए था वह नहीं रहा है। कुमार्ग को छोड़कर अपने आपको ऐसा पात्र बनाले कि तुझे भगवान की शरण प्राप्त हो जाए।

हे मन ! यदि भगवान की शरण में जाने का मार्ग नहीं अपनाएगा, तो तुझे फिर जंगली जेल के बन्धन में पड़ना पड़ेगा। दुःखों की बरसात की तेज धारा में तुझे पछाड़ें खानी पड़ेंगी और तब तेरा शरीर एकदम टूट जाएगा। हे मन; तब तू उद्धार के मार्ग से सदा-सर्वदा के लिए उखड़ जाएगा।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—कलुष के कर। प्रबल पावस। (२) रूपक—कलुष के कर, विपल के रथ। (३) पदमैत्री—शरण उपकरण।

विशेष—१. पावस में प्रतीकात्मकता है।

२. **भय-दर्शन**—कायक **भक्ति** शरणागति के नियम की सफल अभिव्यक्ति है।

(१२७) अशरण शरण राम

अशरण .... **श्याम।**

शब्दार्थ—छवि-धाम=शोभा के घर। अकतेस=सिरमौर, मुकुट। निश्शंस=संशय से रहित। मनस्काम=मनोकामना।

सन्दर्भ—निराला कवि कृत यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि भगवान राम से मुक्ति की प्रार्थना करता है।

भावार्थ—भगवान राम अशरण को भी शरण देने वाले हैं। वह कामदेव के समान शोभा के घर हैं। वह ऋषियों एवं मुनियों के मन रूपी मान सरोवर में निवास करने वाले हंस हैं, वह सूर्यवंश के सिरमौर हैं, वह सदैव संशय रहित होकर (एकनिष्ठ होकर) कर्त्तव्य का पालन करने वाले हैं। ऐसे राम मेरे मन की इच्छा पूरी करें और अपनी शरण प्रदान करें।

राम जानकी के मन में रमण करने वाले हैं, वह जननायक एवं सुन्दरतम हैं, वह श्यामल रूप हैं तथा धर्म को धारण करने में पूर्णतः सक्षम हैं।

अलंकार—१. विरोधाभास—अशरण शरण।

२. सभंग पद यमक—अशरण-शरण।

३. पदमैत्री—वंश अवतंस।

विशेष—मध्यकालीन राम भक्तों की भाँति कवि भगवान राम की स्तुति करता हुआ दिखाई देता है।

(१२८) सुख का दिन डूबे-डूबे जाय

सुख के दिन .... तो खूब जाय।

शब्दार्थ—कवि निराला के तृतीय चरण की रचना **अर्चना से राग-विराग** में संकलित है। कवि भगवान के साथ अपना सम्बन्ध सदैव बनाए रखने की कामना करता है।

भावार्थ—मेरे सुख के दिन डूबते हों तो भले ही डूब जाएँ, परन्तु हे भगवान! ऐसी कृपा करना कि मेरा मन आपके सहज स्वाभाविक प्रेम के प्रति न ऊबे। मेरे मन का जो बन्धन तुम्हारे साथ हो गया है, वह कभी न खुले, यह प्रेम सम्बन्ध रूपी धन की राशि कभी लुट न सके। भले ही सारी दुनियाँ मुझसे नाराज हो जाए, परन्तु आपकी सुन्दर मुख छवि की रेखा मेरे हृदय से कभी न धुले—मिट सके।

मेरे जीवन में जो प्रतिकूल समय आ गया है, वह भले ही कभी भी अनुकूल न बने, विपक्षियों की दाल मेरे विरुद्ध गले या न गले, परन्तु मैंने जिस मर्यादा का पालन किया है, उसका निर्वाह सदैव किसी भी मूल्य पर होता रहे। उसकी रक्षा में यदि मेरी जान जाती हो, तो शौक से चली जाए।

विशेष—१. मुहावरा—दाल गलना।

२. निराला जी जीवन के प्रति अत्यन्त निराश थे—यह मनोभाव इस कविता में भली प्रकार अभिव्यक्त है। निराला की भगवद्‌भक्ति सम्भवतः

बौद्धिक ही रहे। उनके मन से विपक्षी की भावना एक क्षण को भी नहीं हटती है। पता नहीं विपक्षीभाव की कुंठा ने उन्हें क्यों इतना जकड़ रखा था।

(१२९) दुःख भी सुख का बन्धु बना

दुःख भी सुख का बन्धु .... **मन अपना।**

शब्दार्थ—प्रेयसी=प्रेमिका। श्रेयसी=कल्याण करने वाली। भीत=डर, भय। हेय=त्याज्य। उपादेय=उपयोगी।

सन्दर्भ—निराला की कविता है। तृतीय चरण की उनकी रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि दुःख का भी स्वागत करने लगा है।

भावार्थ—जीवन में पहले का क्रम बदल गया है। दुःख भी सुख का भाई बन गया है अर्थात् दुःख भी मुझे स्वागत योग्य लगने लगा है। प्रेयसी आज कल्याण करने वाली बन गई है। जिन लौकिक प्रेरणाओं को लेकर मैं गीत लिखता था, उनकी चर्चा करते हुए अब भय लगता है। कल तक जो बातें और वस्तुएँ मेरे लिए उपयोगी थीं, वे आज त्याज्य बन गई हैं, कमल सदृश कोमल वचन अब कठोर प्रतीत होने लगे हैं।

जीवन का ऊँचा स्तर नीचे आ गया है, अर्थात् मेरे खर्चे कम हो गए हैं। अब मेरा व्यक्तित्व रूपी वृक्ष क्लान्त जन के लिए आश्रय स्थल बन गया है। मेरा मन सब प्रकार के छल-कपट से मुक्त हो गया है और मेरे जीवन रूपी उपवन में ऊर्ध्वगामी प्रवृत्तियों का विकास दिखाई देने लगा है।

अलंकार—(१) विरोधाभास—दुःख सुख का बन्धु बना। (२) पदमैत्री—प्रेयसी श्रेयसी, गीति गीति, हेय उपादेय, कठिन कमल वचना। (३) वृत्यानुप्रास—कठिन कमल कोमल। (४) रूपकातिशयोक्ति की **व्यंजना—तरु**। (५) छेकानुप्रास – तरु के तल, ऊपर उपवन, छल छुट।

विशेष—१. प्रतीक विधान दृष्टव्य है।

२. कवि की चेतना विकासोन्मुख दिखाई देती है। वह सुख-दुख के अन्तर को भूलकर लौकिक साधन सम्पन्नता की निरर्थकता समझ कर आत्मिक-विकास की ओर अग्रसर है।

(१३०) ऊर्ध्व चन्द्र अधर चन्द्र

ऊर्ध्व चन्द्र .... **एक रन्ध्र।**

शब्दार्थ—ऊर्ध्व=ऊपर। अधर=नीचे। माझ=बीच में। मन्द्र=

गम्भीर स्वर। कुज्झटिका = गहन अंधकार। विनिस्तन्द्र = नींद—आलस्य से रहित। यतिहीन = विराम चिह्न से रहित, तुकहीन। रन्ध्र = छेद।

संदर्भ—कवि निराला की यह कविता उनके तृतीय चरण की रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित है। कवि अपने जीवन-संघर्ष का वर्णन करता है।

भावार्थ—ऊपर चाँद का प्रकाश है, नीचे चाँद का प्रकाश है। दोनों के बीच में मेघों की गर्जना का स्वर भी सुनाई देता है, प्रत्येक क्षण चमकती हुई बिजली की भयानक गर्जना एक मधुरता का आभास करा जाती है। फिर गहरा अंधकार अट्टहास करने लगता है। इस पर भी मेरा मन नींद और आलस्य होकर अपने ज्ञान की आँखें खोले रहता है अर्थात् मेरे मन में दुःख एवं निराशा का संचार नहीं होता है।

यह समूचा संसार कलिका के समान एक प्रकार के घेरे में बँधा हुआ है। उसकी स्थिति विराम एवं तुक से रहित मुक्त छंद के समान है, अर्थात् उस पर किसी प्रकार का बंधन नहीं है। सुख की गति दिन पर दिन मंद होती जा रही है और मेरे रोम-रोम में दुःख समाता जा रहा है।

अलंकार—(१) छेकानुप्रास—चन्द्र-चन्द्र, गुरु गर्जन। (२) वृत्यानुप्रास—माझ, मान मेघ मन्द्र। (३) पुनरुक्तिप्रकाश—क्षण क्षण, एक एक। (४) मानवीकरण—सम्पूर्ण छंद। (५) उदाहरण—जैसे यतिहीन छन्द।

विशेष--१. स्वच्छन्दता को कवि संसार का नियम मानता है। इसी कारण वह कविता को छंद के बन्धन से मुक्त रखना चाहता है। इस कविता में कवि निराला की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति मुखर दिखाई देती है।

२. समाज की स्वेच्छाचारिता के कारण ही निराला के जीवन में दुःखों की भरमार हुई थी।

३. कवि मन समझाने को तथा पाठकों के समाधान के लिए कुछ भी कहे, वस्तुस्थिति यही है कि जीवन-व्यापी दुःखों के कारण कवि की मानसिक शांति भंग हो गई थी।

(१३१) हे मानस के सकाल

हे मानस .... **तमोजाल।**

शब्दार्थ—सकाल = प्रातःकाल। अन्तराल = हृदय। अम्बर = आकाश।

भास=आभास, झलक। शारद घन=शरद ऋतु के बादल। गहन हास= गहरी हँसी। अंशुमाल=सूर्य। सुधर=सुंदर। निःस्व=स्वररहित, मौन।

सन्दर्भ—कवि निराला की यह कविता उनके कविता-काल के तृतीय चरण की रचना **आराधना** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि अपने मन के प्रकाश के प्रति आश्वस्त दिखाई देता है।

भावार्थ—ओ मेरे मन के प्रातःकाल। मेरे हृदय में सदैव प्रातःकालीन सूर्य का प्रकाश भरा रहता है, ओ मेरे मन के प्रातःकाल। तुम ही सूर्य एवं चन्द्र के प्रकाश हो। प्रकाश में दिखाई देने वाली नीलिमा का आभास भी तुम्हारा ही आभास है शरदकालीन बादलों की गहरी हँसी भी तुम्हारी ही हँसी है। तुम्हीं संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य हो।

तुम मेरी मानवता के सुन्दर रूप हो; तुम ही मेरे मन के अमर अतिरेक हो। तुम ही मौन रूप से संसार को सुन्दर बनाने वाले हो। तुम ही माया के अंधेरे को मिटाकर संसार को जगमगा देते हो। इस प्रकार तुम्हारा ही प्रकाश चारों ओर व्याप्त है।

अलंकार—(१) उल्लेख—सम्पूर्ण कविता। (२) रूपक—तमोजाल

विशेष—कवि का दार्शनिक रूप मुखर है। वह अन्तर्निहित आत्मरूप को वाह्य जगत में व्याप्त देखता है। यह विचारधारा अद्वैतवाद के अतिबिम्ब-वाद के एकदम निकट पहुँच जाती है। तुलना करें—

उन बानन अस को नहिं मारा, बेध रहा सिगरा संसारा। **(जायसी)**
तथा—एकै रूप अपार अतिबिम्बित लखियतु जहाँ। **(बिहारी)**

(१३२) जय तुम्हारी देख भी ली

जय तुम्हारी .... चलीं ढीली।

शब्दार्थ—रसीली=मधुर। सिद्धि=पूर्णता, सफलता।

संदर्भ—निराला कवि की यह कविता **जय तुम्हारी देख भी ली** उनके तृतीय चरण की रचना **सांध्य काकली** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि अपनी पराजय पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगाता है।

भावार्थ—मैंने तुम्हारे रूप गुण की मधुर देखली है, मैंने समझ लिया है कि तुम्हारी यह जय कितनी अस्थायी है अब मुझे न तो अपनी वृद्धि की चिंता रह गई है और न जीवन में सफलता की चिंता रह गई है। मेरे जीवन का

फूल पूर्णतः फूल चुका है, और अब तो उसकी पंखुड़ियाँ मुरझा कर ढीली पड़ती जा रही हैं।

विशेष—कवि का कहना है कि वह अब मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा है। उसके शरीर एवं जीवन की स्थिति यह है कि वे विकास के चरम शिखर यह पहुँच कर विनाश की ओर अग्रसर हैं।

(ख) **चढ़ी थी** .... **नीली**।

शब्दार्थ—आँख चढ़ना=क्रोध और गर्व होना। भेरी=नगाड़ा। रेख नीली=धुंधली रेखा।

संदर्भ—उपर्युक्त छंद (क) के समान।

भावार्थ—मेरी आँखें कभी अपने गर्व और दूसरों के प्रति क्रोध के कारण चढ़ी रहती थीं तथा जहाँ मैं जाता था, वहाँ प्रशंसा के नगाड़े बजा करते थे। अब वहाँ सर्वथा शिथिलता आगई है। समस्त अंग तीली के समान काले और कमजोर पड़ चुके हैं, अर्थात् प्रतिकूल समय और परिस्थितियों ने मेरा सारा गर्व तोड़ दिया है।

मेरा जीवन में जो उत्साह रूप अग्नि थी वह अब ठण्डी पड़ चुकी है। जीवन अब पहले जैसी मधुर रागिनी नहीं रह गई है—वह न मालूम कहाँ रुक कर विलीन हो गई है? अब तो बस इतना ही समझ में आता है कि मेरा जीवन अब मृत्यु की नीली रेखा मात्र बन कर रह गया है, अर्थात् मेरा अंत होने में तनिक भी देर नहीं रह गई है।

अलंकार—(१) उपमा—तीली (२) रूपकातिशयोक्ति—की व्यंजना —आग।

विशेष—१. पूर्व छंद के समान। पराजय और निराशा का स्वर क्रमशः तीव्रतर होता गया है।

२. प्रतीकात्मकता द्रष्टव्य है।

(१३३) पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष

(क) **पत्रोत्कण्ठित** .... **नक्षत्र पुंज में**।

शब्दार्थ—पत्रोत्कण्ठित=पत्र पाने के लिए उत्सुक। रश्मि=किरण। दिङ् निर्णय=दिशाओं का ज्ञान।

संदर्भ—ये पंक्तियाँ कवि निराला द्वारा रचित "**पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष**" शीर्षक कविता से उद्धृत हैं। यह कविता उनके कविता काल के तृतीय

चरण की रचना **सांध्य काकली** से लेकर **राग-विराग** में संकलित की गई है। कवि अन्तिम रूप से अपने मन का विश्लेषण करता है।

भावार्थ—अब जीवन का विष अन्तिम पत्र यानी मृत्यु का संदेश पाने के लिए बुझ चुका है। अब तो मेरे हृदय रूपी कुन्ज में प्रभु की अन्तिम आज्ञा पाने के लिये अन्तिम श्वासों रूपी दीपक जल रहा है। जैसे नक्षत्रों के समूह में ध्रुव तारे का देखकर ही दिशा का निर्णय किया जाता है, उसी प्रकार जीवन के इस अन्धकारमय मार्ग में अन्तिम श्वास की रश्मि ही उजागर रह कर जीवन—दिशा का निर्देश दे रही है।

विशेष—१. रूपक—जीवन का विष, आज्ञा का प्रदीप, हृदय कुन्ज।

२. उदाहरण—अन्धकारमय—पुन्ज में।

विशेष—१. कवि को जीवन का अन्तिम क्षण स्पष्टत: दिखाई दे रहा है।

२. कवि का बुझा मन जीवन की समाप्ति का परवाना पाने लिए प्रतीक्षा कर रहा है।

(ख) लीला का सम्वरण .... कठिन सेज पर।

शब्दार्थ—संवरण समय = अंतिम समय। शर = वाण।

संदर्भ—उपर्युक्त छंद (क) के समान।

भावार्थ—समय आने पर जैसे फूलों की समाप्ति हो जाती है, वे सिद्ध योगियों या साधारण मानवों की भाँति पत्तों पर झाँकते रह जाते हैं, उसी प्रकार मेरे जीवन का भीष्म पितामह भी आज दु:ख—कष्टों की शरशैया पर बैठा हुआ अंतिम क्षण की ओर देख रहा है।

अलंकार—(१) उदाहरण—प्रथम दो पंक्तियाँ (२) उपमा—सिद्ध योगियों जैसे। (३) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—भीष्म।

विशेष—उपर्युक्त छंद (क) के समान।

(ग) स्निग्ध हो चुका .... फेरा ही जी का।

शब्दार्थ—निदाघ = ग्रीष्मऋतु। कर्षित = खिंची हुई। कल्प = सुन्दरता। हेमलोकों = सुनहरी किरणों। भिद्य = भेदने वाला। आमोदित = आनन्दित। दिक्चुम्बित = दिशाओं को स्पर्श करने वाला। व्रीणा = लज्जा। मल्ल = पहलवान।

संदर्भ—उपर्युक्त छन्दों के समान।

भावार्थ—मेरे जीवन का ग्रीष्म-काल आज स्निग्ध हो चुका है अर्थात् गर्मी

(उत्साह) ठण्डी पड़ चुकी है, वर्षा ऋतु मेरे जीवन से खिच चुकी है। जीवन को सुनहरी किरणों से युक्त बना देने वाली शरदऋतु, मर्मभेदी शिशिर की सर्दी, आमों को बौर से लाद देने वाली बासन्ती मादकता आदि दशों दिशाओं को आकर्षित करने वाली आनंद की चतुरंगिणी सेना अब विदा हो चुकी है। गति, यति, ध्वनि, अलंकार, रस राग के बन्धनों में बंधे स्वर आदि काव्य के उपकरण, स्वर वाद्य छन्द तथा स्वर-सन्धान आदि सब मुझसे विलग हो चुके हैं। जीवन की समस्त क्रीड़ाएँ आज लज्जा भाव में परिणत हो चुकी हैं। (मैंने युवावस्था में जो क्रीड़ाएँ कीं, उन पर विचार करने से आज लज्जा का अनुभव होता है)। पहलवानों के साथ मार-पछाड़ की बातें मृतप्रायः हो चुकी हैं। समस्त निशाने आज व्यर्थ हो चुके हैं। वे दिन भी भूले जा चुके हैं जब शरीर की खाल ढाल की तरह तनी रहती थी। अब तो जीवन में मृत्यु के बाद फिर सबेरा (जन्म) होगा। इस संसार में इस जीव का एक बार फिर फेरा लगेगा।

अलंकार—उपमा—ढाल की तरह।

विशेष—१. उपर्युक्त छन्दों के समान।

२. कवि अगले जन्म के प्रति आश्वस्त है। वह सम्भवतः चिता पर आरोहित पार्थ की भाँति यह कहना चाहता है—

हे इष्ट मुझको भी यदि पुण्य हों मैंने किए।
तो जन्म पाहूँ दूसरा मैं वैर शोधन के लिए।

(जयद्रथवध, मैथिलीशरण गुप्त)